

प्रज्ञास्ति-संग्रह



सपादक

प० के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण



प्रकाशक :

निर्मलकुमार जैन, मंत्री

जैन-सिद्धान्त-भवन

आराण

प्रथम संस्करण ५००

सूचक

श्री सरस्वती प्रिण्टिङ्ग-वक्स लि०, आरा

सुलाह १९४२

Introductory note on Prasastisangraha

The work entitled "Prasastisangraha" is a good Descriptive Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts bearing Nos from 196 to 263 and 54 to 78—about 54 mss in all—in the Jaina Siddhāntabhavana, Arrah. I have no information as to the total number of manuscripts in the Library, the number that have already been catalogued and that remain yet to be examined. From the Prasastisangraha in hand, however, I find that the method of cataloguing follows the plan usually adopted in such works and furnishes information on the name of the works and the authors, the subject matter, the bulk, kind, and condition of the manuscripts, the language and the scripts and the chronology of the authors, besides giving quotations from the beginning, the middle and end of the works.

The Prasastis found in almost all the works noticed in this Catalogue are fully taken advantage of in determining the dates of the authors. The dates range from Simhasuri's Lokatatvavibhāga A D 458 to works composed in the 18th century A D. The following are some of the important works deserving study -

Nidānamuktavali Serial No 5, Kalyānakāraka of Ugrādityāchārya Ser No 17 and Sārasangraha Ser No 39, all medical works.

Reference to Kākatiya Pratāparudra in Vidyānuvādānga No 204, to Manvagandagopāla a feudatory of the Kākatiyas in 1299 A D, to Virapāndya (A D 1457) in Bhavyānanda, No 216, attributed the Pandya king himself, and to the Ganga-king Devarāja in Gitavitarāga No 227, a lyrical poetical work of the type of the well known Gita-govinda of Jayadeva A D 1180, are of great importance to Indian historians.

The work is well done and the authors deserve credit for it. It is hoped that Pandit K Bhujabali Shāstri to whom the credit of bringing out the above work is mainly due will continue the work and complete the work of cataloguing all the manuscripts contained in the Library of the Digambara Jainas in Arrah.

A Shamasastri.

संस्कृत की ओर से

भूतकाल से वर्तमानकाल का घनिष्ठ सवध है। अतएव भूतकाल का यथोचित ज्ञान हुए विना वर्तमान अवस्था का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। खासकर वर्तमान रीति-रिवाज, रहन-सहन, धर्म-कर्म, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान आदि प्रतिदिन के कार्यों पर प्राचीनता की ऐसी छाप लगी हुई है कि भूतकाल से पृथक् वर्तमान का कोई मतलब ही नहीं होता। वर्तमान समय में भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास क्रमबद्ध उपलब्ध नहीं होता। प्रो० मैक्समूलर,^१ डॉ० क्लोट^२ आदि इतिहास-विशारदों का मत है कि प्राचीन भारतीय सदा पारलौकिक विषयों के ही चिन्तन में लगे रहते थे, उनका ऐहिक सुख तथा उससे सवध रखनेवाली विद्याओं के साथ कोई सवध नहीं था, इसीलिये उन्होंने इतिहास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उपर्युक्त विद्वानों का यह कथन सर्वथा निर्मूल नहीं है। फिर भी प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारतवासी इतिहास-विज्ञान से भले प्रकार परिचित थे। वे अपनी घटनाओं को उल्लिखित एव क्रमबद्ध करते थे। इतिहास को वे इतना महत्त्व देते थे कि उसे पाँचवाँ वेद समझते थे।^३ राजा लोग अपनी दैनिक दिनचर्या में इतिहास-श्रवण को भी महत्त्वपूर्ण ध्यान देते थे।^४ प्राचीन विद्याओं में इतिहास की भी गिनती थी।^५ इन सब प्रमाणों का अवलोकन कर ही प्रो० विल्सन,^६ कर्नल टॉड^७ और श्रीयुत स्टाइन^८ आदि अनेक यूरोपीय ऐतिहासिक विद्वानों ने प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक विवेचना एव प्राचीन साहित्य में इतिहास की सत्ता को स्वीकार किया है।

अस्तु, प्राचीन साहित्य, विदेशियों के यात्रा-विवरण, शिलालेख और ताम्रपत्र, सिक्के, मूर्ति और मंदिर आदि सामग्रियों के समान प्रतिमालेख एव ग्रन्थप्रशस्तियाँ भी इतिहास-निर्माण के बहुमूल्य साधन हैं। खासकर जैन ग्रन्थों के मगलाचरण और प्रशस्तियों से इतिहास का कितना घनिष्ठ सवध है, इस बात को एक जैनेतर विद्वान् के मुँह से ही सुन लेना अधिक अच्छा होगा।

१—The History of Ancient Sanskrit Literature, P, 9

२—Imperial Gazetteer of India, vol II, P 3

३—कौटिलीय-अर्थशास्त्र ११३, छन्दोग्योपनिषद्, सप्तम प्रपाठक।

४—कौटिलीय-अर्थशास्त्र, ११५।

५—छन्दोग्योपनिषद्, सप्तम प्रपाठक।

६—Vishnu Purana Introduction ७—Annual of Rajasthan Introduction

८—Rajatarangini, Introduction

“जैन ग्रन्थों के मगलाचरण और प्रशस्तियाँ ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े काम की चीजें हैं। कुछ ही ग्रन्थ ऐसे होंगे, जिनके मगलाचरण में अपने पूर्व कवियों के नाम अथवा कृतियों का उल्लेख नहीं किया गया हो तथा प्रशस्तियों में अपनी गुरुपरपरा और तत्कालीन राजवश का परिचय नहीं दिये गये हों। यही तर्क नहीं, बल्कि प्रशस्तियों के नीचे जो धर्मप्राण जैनी स्त्री पुरुष उस ग्रन्थ की प्रतिलिपि करवाकर किसी मन्दिर में भ्रदान किये रहते हैं, उनकी वश-परपरा का भी उल्लेख बहुत मिलता है। ऐसी दशा में इतिहास-प्रणेत अन्वेषकों के लिए जैन ग्रन्थों के मगलाचरण और प्रशस्तियाँ कितने काम की चीजें हैं, इस बात का पता सहज ही में लग सकता है। बड़ दुःख की बात है कि भारत के इतिहास-लेखकों ने पारसी, अरबी आदि अन्यान्य संप्रदाय के साहित्य एवं इतिहास का अनुशीलन करने का कष्ट तो उठाया, किन्तु भारतीय साहित्य तथा इतिहास के सर्वश्रेष्ठ साधन जो जैन ग्रन्थ हैं, उनकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। इसका मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि जैन ग्रन्थों के प्रकाश में नहीं आने एवं जैन शास्त्र माद्वाराधिपतियों की लापरवाही के कारण अन्यान्य ऐतिहासिक विद्वान् जैन ग्रन्थों में भरे पड़े ऐतिहासिक साधनों से लाभ नहीं उठा सके।”

‘जैन सिद्धान्त-भवन’ में संगृहीत अप्रकाशित जैन संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थों में उपलब्ध मगलाचरण एवं प्रशस्तियों के प्रकाशन-द्वारा यावच्छक्य ऐतिहासिक साधन संचित कर देना ही इस ‘प्रशस्ति-संग्रह’ के प्रकाशन का एकमात्र उद्देश्य है। क्योंकि एकाएक सभी जैन ग्रन्थों को प्रकाशित कर देना शक्य नहीं है। हाँ एक बात है कि ‘प्रशस्ति-संग्रह’-गत प्रशस्तियों में दिगम्बर-शाखा की प्रशस्तियाँ ही सम्मिलित हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि ‘जैन सिद्धान्त-भवन’ एक दिगम्बरीय संस्था है और यहाँ के संगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों में दिगम्बर-शाखा के ग्रन्थ ही अत्यधिक मात्रा में हैं।

प्रस्तुत ‘प्रशस्ति-संग्रह’ सर्वप्रथम यहाँ से प्रकाशित होनेवाले ‘जैन-सिद्धान्त भास्कर’ नामक अनुसंधान-संस्था त्रैमासिक पत्र में प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशित होते ही स्वर्गीय महामहोपाध्याय रायबहादुर, प्राक्तन-विमर्श-विचक्षण श्रीमान् आर० नरसिंहाचार्य, एम ए., मूलपूर्व डाइरेक्टर ऑफ आर्किआलॉजी मैसूर श्रीमान् प्रो० बी० रोप गिरिराव, एम ए., पी-एच डी महाराज कॉलेज, विजयनगर, सरस्वती, विद्याभूषण, काव्यतीर्थ श्रीमान्

१—‘जैन सिद्धान्त-भास्कर’ भाग २ पृष्ठ १२।

२—“‘प्रशस्ति-संग्रह’ अत्यन्त उपयोगी है। इस संग्रह से अप्रकाशित ग्रन्थों का विषय-परिमाण बहुत कुछ हो जाता है। पाठक इसके द्विय आरके उपकृत है।”

३— जैन अप्रकाशित ग्रन्थों का पूरा परिचय दे पूर्व उनपर विस्तृत लिपिही प्रकाशित कर आप जैन-संस्कृति की सही सेवा कर रहे हैं।”

शरच्चन्द्र घोषाल, एम ए, बी एल, कूचबिहार^१ एवं काव्यतीर्थ श्रीमान् चिन्ताहरण चक्रवर्ती, एम ए, कलकत्ता^२ आदि सुविख्यात जैनेतर विद्वानों ने इस कार्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर मेरे उत्साह को बढ़ाया। फलस्वरूप 'प्रशस्ति-संग्रह' का यह प्रथम भाग पुस्तकाकार में आप पाठकों के समक्ष उपस्थित है। मैं मानता हूँ कि इसमें एक-दो त्रुटियाँ रह गयी हैं। एक तो अल्पज्ञों से त्रुटियों का होना सर्वथा स्वाभाविक है, दूसरा यह प्रथम प्रयास है। इसके द्वितीय भाग को सर्वाङ्गसुन्दर बनाने के सवध में मैं अभी से चिन्तित हूँ।

अस्तु, श्वेताम्बर-समाज में प्रशस्तियों का एक संग्रह अहमदाबाद से पहले ही प्रकाशित हो चुका है। सुना है कि दूसरा संग्रह श्रीजिनविजयजी-द्वारा सम्पादित होकर 'सिंधी ग्रन्थमाला' की श्रौर से दो भागों में शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। दिगम्बर-समाज में तो यही एक संग्रह पहलेपहल प्रकाश में आ रहा है। जिस प्रकार 'जैन-सिद्धान्त-भवन' दिगम्बर-समाज में एक उच्चकोटि की आदर्श सस्था है, उसी प्रकार उसका यह पुनीत कार्य भी श्रौरों के लिए मार्गदर्शक बना रहेगा। अब विज्ञ पाठकों का ध्यान मैं 'प्रशस्ति-संग्रह' की एक-दो आवश्यक बातों की श्रौर आकर्षित करता हूँ।

इसमें शुरू से कुछ दूर तक (पृष्ठ १ मे २४ तक) 'प्रारम्भिक भाग' के स्थान पर 'मंगलाचरण' ही लिखा जाता रहा, परन्तु जब आगे चलकर कुछ रचनाओं में 'मंगलाचरण' का सर्वथा अभाव पाया गया, तब इस 'मंगलाचरण' के स्थान पर 'प्रारम्भिक भाग' ही लिखना उचित समझा गया जो कि अन्त तक जारी रहा। इसी प्रकार आगे चलकर (पृष्ठ १ से २४ तक) विवश हो 'प्रशस्ति' के स्थान पर 'अन्तिम भाग' लिखना पडा, क्योंकि सब प्रतियों में प्रशस्तियों उपलब्ध नहीं हुईं। दूसरी बात है कि जहाँ जैसा उचित समझा गया है—कहीं-कहीं ग्रंथ का परिचय और कहीं-कहीं ग्रन्थकर्त्ता का परिचय विस्तृत कर दिया गया है, क्योंकि जहाँ ग्रन्थ का विषय अधिक गम्भीर था, वहाँ उसे स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा गया।

श्रुतकीर्त्ति-रचित 'हरिवंशपुराण' की प्रशस्तियों में उसका रचना-स्थान जेरहट कहा गया है। उस जेरहट को मैंने मेवाड़ प्रान्तान्तर्गत माण्डलगढ अनुमान किया था। परन्तु श्रीयुत दशरथ शर्मा, एम ए, बीकानेर की राय से वह जेरहट उक्त मेवाड़ प्रान्तान्तर्गत माण्डलगढ न होकर मालवे की पुरानी राजधानी माडू है, जो किसी समय धारा नगरी से कुछ दूरी पर स्थित था और इस समय प्राय निर्जन पडा हुआ है।^३ इसी प्रकार

१—“विरोधत” मुझे आपका 'प्रशस्ति-संग्रह' बहुत पसन्द आया। वह अबतक के अज्ञात हस्तलिखित ग्रन्थों का विशद परिचय दे रहा है।”

२—“प्राचीन ग्रन्थों को सविस्तर सूची पूरी संपादित हो जाने पर बहुत काम की चीज होगी।”

३—देने 'जैन-सिद्धान्त-भाम्बर' भाग ७, किरण १।

पहले मैंने समझा था कि 'श्रीपुराण' मद्धारक सकलकीर्त्तिजी की रचना है। इस समझ के दो कारण थे—पहला जनश्रुति, दूसरा सकलकीर्त्ति की कृतियों में भी 'आदिपुराण' नामक ग्रंथ का पाया जाना। फिर भी 'श्रीपुराण' के मगलाचरण आदि को देखकर मुझे अवश्य संदेह हुआ था। इसीलिये 'प्रशस्ति-संग्रह' के अन्तर्गत उक्त ग्रंथ के परिचय में मैंने स्पष्ट लिख दिया था कि इस ग्रंथ के रचयिता का प्रकृत पता लगाने के लिये भगव जिनसेन एवं सकलकीर्त्ति के आदिपुराणों को तुलनात्मक दृष्टि से अवश्य देखना चाहिये। सकलकीर्त्ति का 'आदिपुराण' मेरे सामने नहीं था, इसलिये उस समय मैं उससे इस 'श्रीपुराण' का मिलान करने में असमर्थ रहा। साथ ही साथ प्रशस्ति-संग्रहान्तगत सभी ग्रंथों को आमूलाग्र देखने का अवकाश मिलता भी नहीं था। खैर, पीछे प० नेमिराजजी शास्त्री, मैसूर के एक पत्र से ज्ञात हुआ कि 'श्रीपुराण' में जिनसेन-कृत 'आदिपुराण' के श्लोक ही सगृहीत हैं, जिनके द्वारा श्रीशृषभदेव की सन्निहित जीवनीमात्र सकलित है। फिर भी पता नहीं लगा कि इसके संग्रहकर्त्ता कौन है।

अतः मैंने अर्थशास्त्रविशारद, विद्यालकार, महामहोपाध्याय डॉ० आर० रामशास्त्रीजी, बी ए., पी-एच डी, विश्रांत मैसूर प्राच्यकोषागाराध्यक्ष एवं शासनविमरशास्त्राध्यक्ष को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मेरी प्रार्थना को सहृदय स्वीकार कर शीघ्र ही इसके लिये एक पाण्डित्यपूर्ण प्रस्तावना लिख भेजने की कृपा की।

बहुभाग प्रशस्तियों के संग्रह एवं सशोधन में मेरे भूतपूर्व सहकारी काव्यपुराणतीर्थ श्रीमान् प हरनाथजी द्विवेदी एवं अनुक्रमणिका तैयार करने में न्याय-ज्योतिषतीर्थ श्रीयुक्त प० नेमिचन्द्रजी से मुझे पर्याप्त सहायता मिली है। अतः उन्हें भी मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आपाठ शु० १५ वीर स २४६८

—के० शुजबली शास्त्री

इस 'प्रशस्ति-संग्रह' में सम्मिलित ग्रन्थों की वर्णानुक्रम सूची

नाम	पृष्ठ सं०	नाम	पृष्ठ सं०
१ अर्थप्रकाशिका	६६	२८ प्रमेयकण्ठिका	७२
२ अलंकारसंग्रह	२२	२९ प्रमेयरत्नमालालंकार	६८
३ कलिकुण्डलाराधनाविधान	९५	३० प्रवचनपरीक्षा	९८
४ कल्याणलंकार	५०	३१ प्राकृतव्याकरण	१७३
५ कल्याणमन्दिर	१०८	३२ बीजकोश	३९
६ कपायजयभावना या कपायजय- चत्वारिंशत्	१७१	३३ भव्यकण्ठाभरणपञ्चिका	३०
७ क्रातव्यिन्तर	१९८	३४ भव्यानन्दशाम्भ	३४
८ केवलज्ञानहोग	२५	३५ मदनकामरत्न	१४
९ गणधरवल्लकल्प	९६	३६ मृत्युजयाराधनाविधान	९०
१० गीतवीतराग	६१	३७ रत्नत्रयोद्यापनपूजा	१५९
११ चन्द्रप्रभचरितव्याख्यान	३	३८ रत्नमञ्जुषा	८२
१२ जिनयज्ञफलौदय	१६	३९ रामपुराण	१५५
१३ जिनमहस्रनामटीका	१८८	४० लोकतत्त्वविभाग	११२
१४ जिनसहिता	५८	४१ वज्रपजराधनाविधान	८८
१५ तत्त्वार्थवृत्ति	१७६	४२ वर्द्धमानकाव्य	८६
१६ दशभक्त्यादिमहाशाम्भ	१२०	४३ विद्यानुवादाग	८
१७ दानशाम्भ	२८	४४ श्रीपुराण	११७
१८ निदानमुक्तावली	१३	४५ शृङ्गारवचन्द्रिका	७३
१९ नेमिपुराण	१८२	४६ पट्टदर्शनप्रमाणप्रमेयानुप्रवेश	२०
२० न्यायप्रमाणटीपिका	१	४७ मरम्बतीकल्प	८५
२१ पञ्चनमस्कारचक्र	५८	४८ सहस्रनामाराधना	९२
२२ परसमयग्रन्थ	१६८	४९ सारसंग्रह	१४९
२३ पार्श्वपुराण	१९४	५० सिद्धचक्र	१०९
२४ प्रतिष्ठाकल्प	१६५	५१ हनुमच्चरित्र	५
२५ प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण	५३	५२ हरिवंशपुराण	१५१
२६ प्रतिष्ठातिलक	१६१	५३ हरिवंशपुराण	१७९
२७ प्रतिष्ठाविधान	१०३	५४ त्रैविणिकाचार	७८

इस 'प्रशस्ति-संग्रह' में सम्मिलित ग्रंथरचयिताओं की वर्षानुक्रम सूची

नाम	पृष्ठ सं.	नाम	पृष्ठ सं.
१ अमृतानन्दयोगी	२२	२१ भास्करनन्दी	१७६
२ अहदास	३०	२२ मलयकीर्ति	८५
३ उग्रदित्य	५०	२३ यश कीर्ति	१७६
४ एकसन्धि	५८	२४ ललितकीर्ति	१०६
५ कनककीर्ति	१७१	२५ वर्द्धमान	१२०
६ कल्याणकीर्ति	१६	२६ वर्द्धमान	१६८
७ कुसुदचन्द्र	४३	२७ वासुपूज्य	२८
८ कुसुदचन्द्र	१०८	२८ विजयपण्य	१४६
९ चन्द्रसेन	२५	२९ विजयवर्णी	७३
१० चारुकीर्ति	६१	३० विश्वभूषण	१५६
११ चारुकीर्ति	६६	३१ शान्तिवर्णी	७२
१२ चारुकीर्ति	६८	३२ शुभचन्द्र	२०
१३ जयमित्र	१८६	३३ श्रुतकीर्ति	१५१
१४ नेमिचन्द्र	६८	३४ श्रुतसागर	१७३, १८८
१५ नेमिदत्त	१८२	३५ सकलकीर्ति	११७
१६ पाण्ड्यदमापति	३४	३६ सकलकीर्ति	१६४
१७ पूज्यपाद	१३, १४	३७ सिंहसूरि	११२
१८ ब्रह्मगूरि	७८ १६७	३८ सोमसेन	१५५
१९ द्रष्टाजिन या अजित ब्रह्मचारी	५	३९ हस्तिमल्ल	१०३
२० महाकलक	१६५		

प्रशस्ति-संग्रह

(१) ग्रन्थ नं० १९६
ख

न्याय-मणिदीपिका

कर्ता—

विषय-- न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ३ इञ्च

चौडाई ७ इञ्च

पलसंख्या १९६

मंगलाचरण

धीवद्धं मानमकलङ्कमनन्तवीर्यं मार्गिभ्यनन्धियतिभापितशास्त्रवृत्तिम् ।

भक्त्या प्रभेन्दुरचितालघुवृत्तिद्वष्ट्या नत्वा यथाविधि वृणोमि लघुप्रपञ्चम् ॥

मद्विज्ञानमरुञ्जीत मलमत्र यदि स्थितम् ।

तन्निष्काशयोर्मिषत्सन्त प्रवर्त्तन्तामिहाग्धिवत् ॥२॥

इह हि खलु सकलकलङ्कविकलकेवलावलोकनविमललोचनावलोकितलोकालोकपरम-
गुरुजीरजिनेश्वरचिरमुखसरसीरहसमुत्पन्नसरस्वतीसरसानवरतस्मरणावलोकनसल्लापदत्त-
चित्तवृत्तिः सकलराजाधिराजपरमेश्वरस्य हिमशीतलस्य महाराजस्य महास्थानमध्ये
निष्पुष्पकण्ठसौष्ठवदुष्टसंगतान् चटुलघटवाद्यान्निपटिष्ठतया तारादेवताधिष्ठितदुर्घटघट-
घात्रिजनेन राणा सभ्ये सभासद्भिश्च परिप्राप्तजयप्रशस्ति सकलतार्किकचूडामणिमरीचिमे-
चकितकचिरकचिकचकायमानचरणनररो भगवान् भट्टाकलकदेवो विश्वविद्वन्मण्डलहृदया-
द्यान्त्रियुक्तिशास्त्रेण जगत्सद्धर्मप्रभावमवबुधत्तमाम् । तदनु बालाननुजिघृक्षुरक्षयगुणोऽनुगण-
मोक्षलक्ष्मीकटाक्षरिच्छेपनिगानपरोक्षात्तो गुणमणिवृन्देन भव्यवृन्दमानन्दयन्माणिभ्यनन्धि-
मुनिगुन्दारकस्तत्प्रकाशितशास्त्रमहोदधेरुद्भृत्य तदवगाहनाय पौतोपमं परोक्षामुखनामधेय-
मन्थंमुहूर्त्परणमारचयन्मुवा तदनु तत्परणस्य विशिष्टतमोऽतिस्पष्ट मृष्टेष्टगी
प्रभाचन्द्रभट्टारक प्रमेयकमलमार्त्तगाडनामहृद्भृत्ति चरीरुगीतिस्म । - तद्भृत्तिप्रन्यस्य,

मार्चण्डमण्डलायितत्वेन सकलविद्वद्विप्रप्रकाशकत्वेऽपि बालान्त-करणागुहाभ्यन्तरप्रकाशन
सामर्थ्याभावात्सकलस्य तत्प्रकाशनाय दीपिकायितां सकलश्लोकालङ्कारपौभ्यत्वसौ
रक्षायितप्रमेयैरपरचितत्वेन प्रमेयरत्नमालैर्यथार्थनामोद्धरन्तीं स्वालोकनप्रवृत्तिमतां पुसां
श्लोके हस्तघन्पदाद्विषस्तुप्रतिविम्बितरत्नकण्ठिकायितत्वेन वा स्यामिधेयानि प्रमेयाधि
प्रकाशयन्तीं लक्ष्मीं वृत्तिं लभ्यन्तर्षीर्याचार्यवर्यो भव्यानुग्रहकार्यसौकर्यसुकिसोऽङ्गुमार्यो गुण-
गाम्भोयशालो वैजेषप्रियसूनुना हीरपाख्यवैश्योऽसमेन वद्रीपालवशद्युमयिना शान्तिवेणा
भ्यापनामिच्छाविणा प्रेरितः सन् प्रारिपुः तदाहौ चिकीर्षितवृत्तेरविप्रत परिसमास्तव्य
शिष्टाचारपरिपालनार्थं पुत्रायावाप्त्यर्थञ्च विशिष्टेष्टदेवतामभिष्टौति ।

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ६४ पक्ष १) —

इत्यभिधाषादिति प्रकाश्य प्रकाशयन्तु तदुत्तजायोग दर्शयितुं तावदभावप्रमाणा
प्रतिपादककारिकामाह 'शुद्धीत्वेति' अस्तुसद्भाव शुद्धीत्वेत्यादिसामप्रथा सर्वज्ञाभावप्राहक
मभावप्रमाणासर्वज्ञस्य नोदेति इत्याह । तथाचेत्यपरथा प्रतिनियतकालप्रतिनियतक्षेत्र
लक्षणवस्तुसद्भावप्रथयोऽन्यन्नान्यथा शुद्धीतसवज्ञस्युत्तिष्ठेति रीत्यसद्वहनास्तिताज्ञानमभाव
प्रमाण न युक्तमन्यन्नान्यथा शुद्धीतसवज्ञसत्त्वप्रसङ्गात् ।

अन्तिम भाग —

अकलं करजनन्दिप्रमेयसुसद्वन्तगुणिसकत्या ।
पतद्वृत्तिकां बालो निरुद्धयाति ते (१) व किल युक्तमकत्या ॥
स्याद्वादनोतिकान्तामुखलोकनमुख्यसौख्यमिच्छन्त ।
न्यायमणिदीपिका ह्यग्रासागरे प्रवर्षयन्तु बुधा ॥

इति परीक्षामुखलघुवृत्ते प्रमेयरत्नमालानामधेयप्रसिद्धाया न्यायमणिदीपिकासहाय्यां
टीकायां षष्ठं परिच्छेदः ।

शास्त्र के प्रतिलिपि कर्ता के नामादि—

श्रीमत्स्वर्गीयबाबूदेवकुमारस्यात्मजदानवीरबाबूनिर्मलकुमारस्यादेशमादाय आगरा-
प्रान्तगतसकरौलीनिवासिनः रवतीलालस्यात्मबराजकुमारविद्यार्थिना लिखितमिदं शास्त्रम् ।

इदं लक्ष्मणमण्डेन विलिखितं प्रथमं शास्त्रं लक्ष्मीकृत्य लिखितम् । सशोधयितव्या
विद्वज्जनैः । प्रतिलिपिकाल—स० १९८० भाषण-शुक्र-त्रयोदशी ।

इसमें तो प्रथमकर्ता के नाम का उल्लेख नहीं है । किन्तु मिलावर पं० सुबबय जी शास्त्री
का कथन है कि ताडपत्र की किसी प्रति में इस न्यायमणिदीपिका के रचयिता अज्ञितमेना

चार्य स्पष्ट लिखा हुआ है। वल्कि प० सुवर्च्य जी का यह कथन—'Catalogue of Sanskrit and Prakrita Manuscripts in the Central Provinces and Berar by R B Hira Lal B A (Appendix B)' से भी प्रमाणित हो जाता है। फिर भी जैनइतिहासान्वेषी इस ओर अवश्य ध्यान देंगे। जैन-सिद्धान्त-भवन की इस प्रति के अत्यन्त अशुद्ध होने के कारण इसके साहित्यिक विवेचन पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सकता। तो भी यह कहना ही पड़ेगा कि इसकी संस्कृत सरल एवं प्रशस्त है।

न० ६० की एक दूसरी प्रति भी 'भवन' में है जिसकी वर्तमान ग्रन्थ प्रतिलिपिमात्र है। वस्तुतः दोनों प्रतियाँ अशुद्ध हैं। पहली प्रति की नकल कन्नडप्रति से उल्लिखित मूडविद्धि-निवासी वामन भट्ट के पुत्र लक्ष्मण भट्ट ने की है।

(२) ग्रन्थ नं० १९५-
ख

चन्द्रप्रभचरित-व्याख्यान अपर नाम—विद्वन्मनोवल्लभ

कर्ता—

विषय—काव्य

भाषा—संस्कृत

संख्या १३॥ इञ्च

चौड़ाई ८॥ इञ्च

पत्रसंख्या ३०६

मङ्गलाचरण

वन्देऽहं सहजानन्दकन्दलीकन्दवन्दुरम् ।

चन्द्राङ्क चन्द्रसकाश चन्द्रनार्थं स्मराम्यहम् ॥१॥

चन्द्रप्रभार्हधीरस्य काव्य व्याख्यायते मया ।

विश्वमन्वयरूपेण स्पष्टसंस्कृतभाषया ॥२॥

x x x

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ६६, ज्लोकटीका १२)—

गुरुशमिति। अथ प्रस्थानानन्तरे। गजेन्द्रगामो गजेन्द्र इव गच्छतीत्येव शील मन्त्र-गामीत्यर्थ। स कुमारः। गुरुवशम् गुरुव महन्तः वंशा वंशव यस्मिन् त पत्ने गुरुर्महान्

वश कुल यस्य तम् । अप्रमाणासत्वम् अप्रमाणा प्रमाणाहिता सत्त्वा प्राणिन यस्मिन् ते
पत्ने बहुलसामर्थ्यम् । अत्युन्नतशालिनीम् अत्युन्नत्या शालिनीम् । सम्पूर्णास्थिति ध्वजस्थिति
पत्ने मर्यादा । दधान धरन्त । रुचिराकृतिं रुचिरा भाकृतियस्य ते । एक । स्वसमानं स्वस्य
समानं । नगं पवतं । आलुलौके दश लोकुम् दश ने लिट । श्लेषोपमा ।

x

x

x

x

x

अन्तिम भाग—

इति धीरजन्दिंकृतसुब्याङ्गे चन्द्रप्रभविरिते महाकाव्ये तद्व्याख्याने च विद्वन्मनोवल्लभाख्ये
अष्टादश सग समाप्त ।

चन्द्रप्रभविरित की दो टीकायें उपलब्ध हैं । एक चारुकीर्तिकृत और दूसरी
महारक प्रभाचन्द्रकृत । महारक प्रभाचन्द्र का समय वि० स० १३१६ और
चारुकीर्ति का समय शकाब्द १३२१ के बाद का अनुमित होता है । चारुकीर्ति जी का यह
समय तमो सम्भवपरक कहा जा सकता है, जब कि यही पार्श्वाम्युदय के भी टीकाकार हैं ।
चारुकीर्तिकृत चन्द्रप्रमकाण की टीका की श्लोकसख्या छ हजार मानी गयी है । 'भवन
की इस प्रति में भी लगभग छ हजार श्लोकसख्या अनुमित होती है । अत यह कहा जा
सकता है कि चारुकीर्ति जी की ही यह टीका है ।

हात हाता है कि टाकाकार ने इस टीका में ध्याकरण, अलंकार वष कोपादि की धोर
विशेष ध्यान नहीं दिया है ।

पार्श्वाम्युदय के टीकाकार चारुकीर्ति जी की निम्नलिखित छतियों का पता लगता है —

- (१) चन्द्रप्रमकाण्य की टीका श्लोक सख्या—६०००
- (२) भाविपुराण , ३०००
- (३) यशोधरचरित
- (४) नैमिनिर्वाणकाव्य की टीका
- (५) पार्श्वाम्युदयकाव्य की टीका
- (६) गीतवीतराम

(३) ग्रन्थ नं० १९८
ख

हनुमच्चरित्र

कर्ता—अजित ब्रह्मचारी

विषय—चरित्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ११ इञ्च

चौडाई ७ इञ्च

पत्रसंख्या ६७

मंगलाचरण

सद्बोधसिन्धुचन्द्राय सुवताय जिनेशिने ।
सुवताय नमो नित्यं धर्मशुद्धार्थसिद्धये ॥१॥
वृषभाय जिनेन्द्राय वृषाय परमेष्ठिने ।
नित्यं स्नान्यप्रकाशाय नमो नाभिलुताय ते ॥२॥
नम श्रीचन्द्रनाथाय सर्वज्ञाय शिवात्मये ।
अमन्दशर्मकन्दाय कन्दाय परमात्मने ॥३॥
शान्तिं कुर्यादनेकान्तबुद्धिं सिद्धार्थद्वयिनीम् ।
अमातक्षीरजलधिमन्थनं मन्दराचलः ॥४॥
श्रीमते वर्द्धमानाय नमः श्रेयोविधायिने ।
अघात्परातिघाताय मुक्तिमार्गप्रदायिने ॥५॥
दुर्बारापारमसारपारावारैकतारकान् ।
॥ ८ ॥ प्रणामि परितो नित्यमपरान् जिननाथकान् ॥६॥
साद्धैर्यमिते द्वीपे सर्वान्तकविवर्जिते ।
सीमन्धरादिदेवानां पादपद्मान् प्रणौम्यहम् ॥७॥
वर्त्तन्ते भाविनोऽतीता विदुषालिप्रपजिता ।
॥ नौमि सर्वान् जिनान् जैनमतसिन्धुविधून् सदा ॥८॥
आचाराङ्गादिभेदेन पूर्वान्तांश्च प्रकीर्णकान् ।
निर्गतां जिनसङ्घश्चात् सारदां नौमि शारदाम् ॥९॥
यस्याः प्रसादत सर्वो वितौर्यं श्रुतसागरम् ।

परमाप्नोति भावानां तां प्रणोमि जिनास्यजाम् ॥१०॥
 निहोन्ननवकोटीनां मुनीनां पादपकजान् ।
 स्मरामि स्मरजेतृणां त्रातृणां भवधारिणे ॥११॥
 नमामि धृपसेनादिगौतमान्तान् गणेश्वरान् ।
 सान्द्राश्चतुर्दशशतान् अ्यधिकान् श्रीसुखप्रदान् ॥१२॥
 गौतमं श्रीसुधर्मां च जम्बाख्यमुनिकेषली ।
 त्र्यं केवलिनं प्रज्या नो नित्यं सन्तु सिद्धये ॥१३॥
 श्रीविष्णुनन्दिमित्राख्योऽपराजितमहातपा ।
 गोवद्ध नो भद्रबाहु पञ्चैतान् ध्रुवसागरान् ॥१४॥
 द्वादशांगभ्रताभ्यासनीरिणां स्नातिर्तं न कान् ।
 प्रणोम्यहं निशुद्रुष्या तान् पञ्चपाण्डित्यदेतवे ॥१५॥
 सृष्टेः समयसारस्य कर्ता सूरिपदेश्वरः ।
 श्रीमच्छ्रीकुन्दकुन्दाख्यस्तनोतु मतिमेदुराम् ॥१६॥
 पुराणपद्धतियस्य हृदये प्रस्फुटं गता ।
 प्रणोमि जिनेसेनस्य चरणौ शरणां सताम् ॥१७॥
 जीयात्समन्तमद्रोऽसौ भव्यकैरवचन्द्रमा ।
 दुर्वादिवाक्कण्डूनां शमनैकमहौपधि ॥१८॥
 अकलङ्कगुरुजीयात्कलंकपदेश्वरः ।
 बौद्धानां बुद्धिधैर्यधमदीप्तागुरुदाहृत ॥१९॥
 शुद्धसिद्धान्तपायोधिपारिणां परमेश्वरः ।
 नेमिचन्द्रश्चिदानन्दपदवीमुख्यतां गतः ॥२०॥
 प्रभा गुणवती यस्य प्रभाचन्द्रस्य सूरियः ।
 सोऽस्तु मे बुद्धिसिद्धयर्थं कादरयादिरस्तालयः ॥२१॥
 पञ्चाचाररता येऽन्ये सूरयः सस्तुता सूरः ।
 ते मे विशन्तु सन्मैर्धां पञ्चनन्दीश्वरावय ॥२२॥
 महूलादिप्रसिद्धत्रयं मया माधेन सस्तुता ।
 श्रीहनुमत्कुमारस्य कथायाः सिद्धये पुनः ॥२३॥
 × × ×

पथ्य भाग — (पृष्ठ ३१ श्लोक १३)

इत्युक्तं केनचित्सावत्कुमाराय जितद्विषे ।

अज्ञानाप्रमथं धृष्टं सव कालविषयोपमम् ॥१६॥

मित्रागच्छ वयं यामो महेन्द्रपुरभेदने ।
 अजना मे स्थिता तत्र चित्तचोरणतस्करी ॥१७॥
 स्वमित्रेण सम वायुरचलत् श्वासुर पुरम् ।
 स्वात्मीय गजमारुह्य बञ्चित. स्वजनंस्तदा ॥१८॥
 संप्राप्तो नगरीबाह्यं हर्षसभृतमानस ।
 मियाङ्कमिव संप्राप्तो दृष्ट्वा पुरवर तदा ॥१९॥
 प्रभञ्जनकुमारस्यागमन श्रुत्वा महीपति ।
 पुरश्रद्धारमकरोत् वंजयन्त्यादितोरणौ ॥२०॥

अन्तिम भाग—

जेनेन्द्रशासनसुधारसपानपुष्टो देवेन्द्रकीर्तियतिनायकनैष्ठिकात्मा ।
 तच्छिष्यसंयमधरेण चरित्वमेतत् सृष्ट समीरणसुतस्य महर्दिकस्य ॥११॥
 विशदशीलस्वर्धुनोशिलातलैकराजहससोत्सवाय क्रोडनप्रिय
 स्वमतसिन्धुवर्द्धने प्रकृष्ट्यामिनोतपनतेजसाद्भुतप्रभामित ।
 सुरेन्द्रकीर्तिविद्ययादिनन्धनगमर्दनेकपरिडित कलाधर
 तदोयदेशनामवाप्य शुद्धबोधमाश्रितो जितेन्द्रियस्य भक्तित. ॥२॥
 गोलाष्ट गारवंशे नभसि दिनमणिर्वीरसिंहो विपश्चित्
 भार्या धीधा प्रतीतातनुहविदितो ब्रह्मदीक्षाश्रितोऽभूद् ।
 तेनोच्चैरेष प्रन्य कृत इति सुतरां शैलराजस्य सुरे
 श्रीविद्यानन्दिदेशात् सुरुतविधिवशात्सर्वसिद्धिप्रसिद्धयै ॥९३॥
 इव धीशैलराजस्य चरित दुरितापहम् ।
 रचितं भृगुकच्छे च श्रीनेमिजिनमन्दिरे ॥९४॥
 धर्मार्थी लभते वृष धनयुतो वृद्धिञ्च नि स्वो धनम्
 पुत्रार्थी स्वकुलोचित च तनय कामांश्च कामो लभेत्
 मोक्षार्थी वरमोक्षमाशु लभते प्रोक्तेन सान्द्रेण किम्
 ह्येतत् शैलमुनीन्द्रराजचरितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥९५॥
 पठिता पाठकश्चैव वक्ता श्रोता च भावुक ।
 चिरं नन्द्याद्यं प्रन्यस्तेन सार्द्धं युगावधि. ॥९६॥
 प्रमाणमस्य प्रन्यस्य द्विसहस्रमित बुधै ।
 श्लोकानामिह मन्तव्यं हनुमच्चरिते शुभे ॥९७॥

इतिभगेहनुमच्चरित्रे प्रसिद्धजितविपचिते पकाद्दश सर्गं ।

इसके लिपिकर्त्ता काशीनिवासी यदुक प्रसाद नाम के एक-कायस्थ हैं। लिपिकाल स० १९७८ है।

इस प्रति के अतिरिक्त 'मयन' में बहुत प्राचीन १६०-^ख नम्बर वाली दूसरी प्रति भी है। खेड़ के साथ यह कहना पड़ता है कि ये दोनों प्रतियाँ भृगुदियों से बरी हुई हैं। चल्कि इसी प्राचीन प्रति से प्रस्तुत प्रति उतारी गयी है।

इसकी प्रशस्ति से धात होता है कि इसके कर्त्ता अजित ब्रह्मचारी देवेन्द्रकीर्त्ति जी के शिष्य थे। इनके पिता का नाम धीरसिंह और माता का धीमा था। इनके वंश का नाम गोलभट्टार है। विद्यामन्दजी की आज्ञानुसार ही इन्होंने भृगुकच्छ (भरोव) नगर में इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। ग्रन्थ-रचनाकाल प्रशस्ति में नहीं दिया गया। प० सुगल-किशोर जी की राय है कि यह अजित ब्रह्मचारी १६वीं शताब्दी में हुए हैं।

(४) ग्रन्थ न० $\frac{२०४}{ख}$

विद्यानुवादांग (जिनेन्द्रकल्याणाम्बुदय)

कर्त्ता—

विषय—प्रतिष्ठापाठ

भाषा—संस्कृत

पौढाई १॥ इन्च

लम्बाई १४ इन्च

पत्रसंख्या १३१

मंगलाचरण

लक्ष्मीं विशतु धो यस्य ज्ञानादर्शो जगन्त्रयम् ।

दयवीपि स जिने धीमाश्रामेयो नौरिवाम्बुधौ ॥१॥

माङ्गल्यमुत्तम जीयाच्छरयथ यद्रजोहरम् ।

निरहस्यमरिर्ज्जित तत्पञ्चव्यात्क मह ॥२॥

दोषसन्तापशमनीर्वाग्योत्कृता जितवन्द्रजाः ।

वधयन्ती भ्रताम्भोधि स्वान्तं चान्तं धुनोतु न ॥३॥

भोजलक्ष्म्या कृत कण्ठहारनायकरक्षताम् ।

रत्नत्रय मम सम्यगद्रुग्ज्ञानाचारलक्षणात् ॥४॥

स्याद्वादाकाशपूर्णन्दुर्भयाग्भेकभानुमान ।
 दयागुणसुधाग्भेधिर्धर्मः पात्यादिहार्हताम् ॥५॥
 अहिंसासन्नृतास्नेयत्राम्बयोंपरिग्रहा ।
 सर्वपापप्रशमन वर्द्धता जिनशासनम् ॥६॥
 पञ्चकल्याणसम्पूर्णा पञ्चमदानभानुराः ।
 न पञ्च गुरव पान्तु पञ्चमंगतिमाधकाः ॥७॥
 वृषभादीनह वर्द्धमानान्तान जिनपुद्गवान् ।
 चतुर्विंशतितीर्थंशान स्तुये त्रं लोभ्यप्रजितान ॥८॥
 घन्दे वृषभमेताद्विगणिता गानमान्तिमान् ।
 श्रुतकैवलिनः सूरीन मल्लोत्तरगुणान्वितान ॥९॥
 अनुयोगत्रतुष्काद्विजिनागमप्रिगारदान ।
 जातरूपधरास्नोप्ये क्विन्नुन्दारकान गुरून् ॥१०॥
 अर्हवादीनभीष्टार्थमिद्वर्चं शुद्धिवयान्वितं ।
 इत्यनन्तगुणोपेतान ध्यान्वा स्तुन्वा प्रणम्य च ॥११॥
 श्रीमन्समन्तभद्राद्विगुणपर्यङ्गमागत ।
 शास्त्रावितारसम्बन्ध प्रथम प्रतिपाद्यने ॥१२॥
 पुरा वृषभमेनेन गणिना वृषभार्हत ।
 अनगार्योभ्यधायैतन् भरनेश्वरञ्चक्रिणे ॥१३॥
 ततोऽजितजिनेन्द्रादितीर्थकृद्भ्योऽवधार्यताम् ।
 तत्तद्गणवरास्तत्र धार्मिकाणामिशत्रवन् ॥१४॥
 तत श्रीवर्द्धमानार्हद्गिरमाकर्ण्यं गीतम् ।
 राज्ञे लोकोपकारार्थं श्रेणिक्वाप्यात्रर्वाद् गमी ॥१५॥
 तस्माद्गुणभृद्वाचार्यादनुक्रमसमागतः ।
 नाम्ना जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयोऽयमिहोच्यते ॥१६॥
 सेनर्चं रसुवीर्यभद्रसमाख्यया मुनिपुद्गवा
 नन्दिचन्द्रसुकीर्त्तिभूषणसद्वया ऋषिसत्तमा ।
 सिंहसागरकुम्भ(?)आख्यवनामभिर्यतिनायकाः ।
 देवनागसुदत्ततुगसमाहयेर्मुनयोऽभवन् ॥१७॥
 तेभ्यो नमस्कृत्य मया मुनिभ्य
 शास्त्रोदधे सूक्तिमर्षीश्च लब्ध्वा ।

हारं विरच्यायज्जोपयोम्यं

जिनेन्द्रकल्याणधिधिव्यघायि ॥१८॥

धीराचार्यसुपूज्यपाद्मजिनसेनाचार्यसंभाषितो

यः पूर्वं गुणमद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्युजित ।

यश्चाशाघरहस्तिमहुरुधितो यश्चैकसधीरित

तेभ्यस्स्थाहृतसारमा (१) रचित स्याज्जैनपूजाक्रम ॥१९॥

तर्कव्याकरणागमादिलहरीपूणधुताम्भोनिधे ।

स्थाद्वावाम्बरभास्करस्य धरसेनावायवर्यस्य च

शिवेणाथपकोविदेन रचित कौमारसेनेमुने (१) ।

ग्रन्थोऽय जयताजगत्त्रयगुरोर्बिम्बप्रतिष्ठाविधि ॥२०॥

पूर्वस्मात् परमागमात्समुचितान्यादाय पद्यान्वहम् ।

सम्भे प्रस्तुतसिद्धयेऽत्र विलिखान्येतन्मरोपायतत् (१)

कल्याणेषु विभूषणानि धनिकादानीय निष्किञ्चन ।

शोभार्थं स्वतन्त्रं भूयति किं सा राजते नास्य तै ॥२१॥

जिनेन्द्रवाणोमुनिसधमस्या जिनेन्द्रकल्याणलुति प्रणोय

जिनेन्द्रपूजा रचयन्ति येऽमी जिनेन्द्रसिद्धधियमाश्रयन्ति ॥२२॥

मध्यभाग (४६ पृष्ठ ७ पक्ति)

अतिनुतजलगधैरत्ततेरत्ततागैर्धरकुसुमनिवेद्यैर्वापधुपै फलैश्च ।

जिनपतिपद्मस्र योऽच्येद्भक्तोयम् स भवति मुचनेशो मोक्षलक्ष्मीनिवास ॥

ॐ ह्रीं नमो ध्यातुमिरमीप्सितेभ्य स्वाहा

नमः पुरुजिनेन्द्राय नमोऽजितजिनेशिले ।

नमः संभवनाथाय नमोऽभिनन्दनाहते ॥

नमः सुमतये तुभ्य नमः पद्मप्रभाय च ।

नमः सुपार्यदेवाय नमश्चन्द्रप्रभाय ते ॥

अन्तिम पद्य —

तिथिरकशुणा प्रोक्ता नक्षत्रं द्विगुणं भवेत् ।

लघ्नन्तु त्रिशुणं तेषां शुभाशुभफलं भवेत्

ग्रन्थकर्त्ता के मंगलाचरणगत १६वें श्लोक में यह ज्ञात होता है कि वीराचार्य, पूज्यपाद, जिनसेन, गुणभद्र, वसुनन्दी, इन्द्रनन्दी, आजाधर और हस्तिमल्ल इन आठ साहित्यिकरत्नों ने प्रतिष्ठा-ग्रन्थ लिखे हैं। और इन्हीं के आधार पर आर्गप या अप्यार्य ने इस विद्यानुवादाङ्ग प्रतिष्ठा-ग्रन्थ की रचना की है। किन्तु इस समय उल्लिखित इन प्रतिष्ठाग्रन्थ प्रणेतार्यों के सभी ग्रन्थ प्रायः उपलब्ध नहीं होते। इसके २०वें श्लोक में यह भी विदित होता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता धरमेनाचार्य और कुमारमेन मुनि को अपना गुरु मानते थे। इन्होंने इन्हें तर्क व्याकरण एवं सभी आगमों का मर्मज्ञ भी लिखा है। इसी श्लोक में “कौमारसेनेमुने” यह पद जो मिलता है, वह व्याकरण की दृष्टि से चिन्तनीय है। क्योंकि नियमानुसार “कौमारसेनस्य” होना चाहिये था। किन्तु इस शुद्धरूप की प्रयुक्ति से ऊदोभग हो जाता है। यह प्रति बहुत अशुद्ध है, अतः जिन महाशयों के पास इसकी दूसरी कोई प्रति हो वे उसमें इसका मिलान कर इस सन्दिग्ध बात पर प्रकाश डालें। संभव है कि दूसरी प्रति शुद्ध हो।

अबन की इस प्रति में तो प्रशस्ति नहीं है। किन्तु “Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the Central Provinces & Bihar” में— जिसका सम्पादन राय बहादुर हीरालालजी ने किया है उसमें आर्यप या अप्यार्य का संक्षिप्त परिवय प्रदर्शन-पूर्वक कारजा शास्त्रभाण्डार से प्राप्त प्रति से निम्न लिखित प्रशस्ति उद्धृत की है—

शाकादे विद्युवेदनेबहिमगे (?) सिद्धार्थसवत्सर
माघे मासि विशुद्धपक्षदशमीपुण्यार्कवारेऽहनि ।
ग्रन्थो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभाक्
सम्पूर्णोऽभवदेकशैलनगरे श्रीपालवन्धुर्जितः ॥

इति श्रीसकलतार्किकचक्रवर्त्तिश्रीसमन्तभद्रमुनीश्वरप्रभृतिकविवृ-दारकवन्द्यमानसरो-
चरराजहसायमानभगवद्वर्हत्प्रतिमाभिषेकविशेषविशिष्टगन्धोदकपवित्रीकृतोत्तमाङ्गेनाप्यया-
येंग श्रीपुण्यसेनाचार्योपदेशक्रमेण सम्यग्विचचार्य पूर्वशास्त्रभ्यः सारमुद्बृहत् चिरचित्त-
श्रीजिनेन्द्रकल्याणभ्युदयापरनामधेयस्त्रिदशभ्युदयोऽर्हत्प्रतिष्ठाग्रन्थ समाप्तः ॥

इस प्रशस्ति से यही बात ज्ञात होती है कि अप्यार्य ने सिद्धार्थ नामक संवत्सर १२४१ माघ शुक्ल दशमी रविवार एव पुष्य नक्षत्र में पुण्यसेनाचार्य के आदेश से रुद्रकुमार के राज्य में एकशैलनामक नगर में यह ग्रन्थ लिखकर समाप्त किया है। उल्लिखित समय ख्रिष्ट शक २०वीं जनवरी १३२० A. D. होता है। न मालूम किस आधार पर हीरालालजी ने अपने सम्पादित कैटलग में अप्यार्य को पुण्यसेन का शिष्य लिखा है। ज्ञात होता है कि

मंगलाधरण का १६वाँ श्लोक आपकी नज़रों से नहीं गुज़रा है। क्योंकि पुष्पसेन तो प्रेरक ही मालूम होते हैं।

उक्त यह एकत्रैल वर्तमान धरगल का प्राचीन नाम है। धरगल के और भी कई नाम हैं। यह प्राचीन तैलंग की राजधानी थी। काकतीयों ने इस पर ईस्वी सन् १११० से १३२३ ईस्वी तक राज्य किया है। इसी वंश में राजा रुद्रदेव हुए हैं। इनकी यहीं राजधानी थी। मालूम होता है राजा रुद्रदेव इस वंश के अन्तिम राजा थे, क्योंकि इस प्रशस्ति से पता चलता है कि इस ग्रन्थ की रचना ईस्वी सन् १३२० में हुई है और उस समय रुद्रदेव ही शासन कर रहे थे।

प्रशस्तिगत धरसेन कुमारसेन पुष्पसेन थीपाल। इन विद्वानों के सम्बन्ध में मेरा इस समय कुछ भी विशेष बक्तव्य नहीं है। क्योंकि अय्याबेल्लोळ के कतिपय शिलालेखों में धरसेन जी को छोड़कर शेष तीन नाम उपलब्ध होते हैं अत्रय, परतु इनमें से कुछ शिलालेखों में तो इनका समय ही नहीं दिया गया है। जिन लेखों में समय दिया गया है, वह भी 'अप्ययाय' के समय से मेल नहीं खाता। विगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ में आये हुए इन उल्लिखित नामवाले ग्रन्थकर्ताओं की कृतियों को देखने से संभवतः इनका विशेष परिचय मिल सकता है।

१ हिन्दी विश्वकोष भाग ३ पृष्ठ ९६३ और List of the Antiquarian Remains in the Nizam's Territories By consens Another name of Warrangal * * * is Akshalingar which in the opinion of Mr consens is the same yekshilangara "

—The Geographical Dictionary of Ancient & Medisaval India By Nandoo Lal Dey P 8

२ अनुमङ्गदपुर, अनुमङ्गदपट्टन कोडकोल (of Ptolemy) वेयाङ्कटक, एकशलिङगर आदि।
(The Geographical Dictionary P 263.)

३ रुद्रदेव का शिलालेख JASB 1838 P 903 साथ ही Prof Wilson's Mackenzie collection P 76

४ The Geographical Dictionary P 8

५ 'धरगल के क्राकतीय वंशी एक राजा * * * * * हिन्दी विश्वकोष भाग १२, पृष्ठ ९२७

नोट—विश्वकोषकार ने सरथा ३ देकर इनके सिवा एक और का भी उल्लेख किया है। "एक हिन्दू राजा ये तैलंगाधिपति थे" सम्भवतः यह विश्वकोष-कार के तैलंग और धरगल इन दोनों को ही भिन्न स्थान समझने की भूल है।

(५) ग्रन्थ नं० ३०५
ख

निदान-मुक्तावली

कर्ता—पूज्यपाद (?)

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१३। इञ्च

चौड़ाई—८। इञ्च

पत्रसंख्या—६

मङ्गलाचरणा

(अभाव)

प्रथम श्लोक—

रिष्टं दोषं प्रवक्ष्यामि सर्वशास्त्रेषु समतम् ।

सर्वप्राणहितं दृष्ट कालारिष्टञ्च निर्णयम् ॥१॥

मध्य भाग (पृष्ठ ४ पंक्ति ११)

पीत्वा जल यस्य न याति तृष्णा भुक्त्या भृशं न क्षुद्रपैति यस्य ।

शक्तिक्षये घाथ सुवर्णनासा मासेऽष्टमे तस्य हि कालमृत्युः ॥

खण्डं भवेद्यस्य पदं कषाचित् पङ्काङ्किते वा भुवि पांसुलेपात् ।

ते सप्तकं (१) मासि विहाय सर्वं प्रयाति याम्यं सवर्गं मनुष्यः ॥

अन्तिम भाग—

शुरौ मीत्रे देवेऽप्यगदनिकरैर्नास्ति भजनम् तथाप्येवं विद्या अतिनिगदिता शास्त्रनिषुणैः ।

अरिष्टं प्रत्यक्तं सुभवमनुमारूढसुभगम् विचार्यन्तच्छब्दवन्निपुणमतिभिः कर्मणि सदा ॥

विज्ञाय यो नरः काललक्षणैरेवमादिभिः । न भूयो मृत्यवे यस्माच्छिष्टान्कर्म समाचरेत् ॥

इति पूज्यपादविरचितायां स्वस्थारिष्टनिदानं समाप्तम् ।

×

×

×

इसमें दो ही निदान हैं—(१) कालारिष्ट और (२) स्वस्थारिष्ट ।

इस ग्रन्थ की प्रति मद्रास राजकीय पुस्तकालय में सगृहीत ग्रन्थ की प्रति से करायी गयी है ।

इस ग्रन्थ के पद्यों में पूज्यपादजी का नाम कहीं नहीं मिलता। किन्तु मूल प्रति में प्रकरणसमाप्ति सूचक वाक्य पूज्यपादकृत लिखा रहने के कारण प्रतिलिपि-कर्त्ता लेखक को भी 'पूज्यपादकृत' ज्यों का त्यों लिख देना अनिवार्य था। अस्तु इस ग्रन्थ के विषय और संस्कृत रचना की ओर ध्यान देने से सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थों के निर्माता प्रातः स्मरणीय हमारे प्रख्यात पूज्यपादजी को इस ग्रन्थ के रचयिता मानने में मन द्विच किंचित्त है। सम्भव है कि यह कृति किसी दूसरे पूज्यपाद जी की हो। इस सन्देहास्पद विषय को हल करने के लिये और और प्रतियों की जरूरत है। आशा है कि अन्यान्य पण्डित मण्डली भी इसकी ओर ध्यान देगी।

(६) ग्रन्थ न० २०६
ब

मदनकामरत्नम्

— १११५

कर्त्ता—पूज्यपाद (?)

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इंच

चौड़ाई ८। इंच

पत्रसंख्या ६४

मङ्गलाचरणा

(अभाव)

प्रारम्भिक भाग—

महापूर्वचन्द्रोदय

मृतं सूतलोहाभ्ररोम्य समाशम्

मृतस्वर्णगन्ध (?)

ससर्वं (?) विनिर्दिश्य खञ्जे विमर्शस्त रणतैलोद्भवेन त्रिवारम् ॥१॥

ततः शाब्मलोसारनिर्यासगुञ्जां प्रयुञ्जीत तज्ज सुदधानुपानैः ।

त्रिदोषहर्त्रं चापि हन्यात्परेयाम् (?) धयस्तग्मकारी गद्गोग्मादहारी ॥२॥

धधुगर्बहारी रत्नौ बुद्धिकारी कृशत्यापहारी कलापूर्णधारी

समन्तेषु योगेषु भूमौ विशेषान् प्रसिद्धो महापूर्वचन्द्रोदयोऽयम् ॥३॥

मध्यभाग—(पृष्ठ ३० पुष्पवाणरस)—

रसमस्म त्रिभाग स्यादष्टभागं च गन्धकम् । चतुर्थं मौक्तिकं वाट द्विभागा मौक्तिकी शिला ॥
तारमन्त्रकलोहानां बङ्गमात्तिकनागयो । अयस्कोम प्रवालाद्यौ तुल्यभाग प्रकल्पयेत् ॥

अन्तिम भाग—(पञ्चवाणरस)

सुवर्णं रजतं कान्तं वैकान्तं तीक्ष्णमन्त्रकम् । प्रवालं मुकमसितं नागबङ्गञ्च भास्करम् ॥
एकैकसमभागं च सर्वतुल्यं रसेन्द्रियम् । तत्समं शुद्धगन्धञ्च हसपादीरसेन च ॥
कौमारीरससंप्रोक्तं मर्दितञ्च दिनत्रयम् । काचकुप्यन्तरे त्रिप्त्वा विलेप्य वल्गुमृत्तिकाम् ॥
वालुकायन्त्रके पक्त्वा पठ्यामान्ते समुद्धरेत् । चूर्णीकृतं ततः खल्वे शतपत्रसेन च ॥
दिनत्रयञ्च यत्नेन चाधिकं सहभावनात् । कस्तूरीकां च कर्पूरं भावयेत् यथाविधि ॥
शाल्मलीकानि लाक्षाश्च गान्धारी सममर्दयेत् । वराचन्दनरुयुक्तं कण्ठाद्रं सिताज्यकम् ॥
विंशतिञ्च प्रमेहाणां राजयक्ष्माननेकशः । शुक्रवृद्धिकरञ्चैव वन्ध्या च लभते सुतम् ॥
वन्धनष्टं पुष्पनष्टं मसृग्दरम् । रक्तपित्तं चाम्लपित्तं अस्थिस्रावहलीमकम् ॥
अहर्न्येव रजः स्त्रीणां भवन्ति प्रियदर्शनात् । वीर्यवृद्धिकरञ्चैव नारीणां रमते शतम् ॥
पञ्चवाणरसो नाम पूज्यपादेन निर्मितः ॥

×

×

×

पूर्वोद्धृत 'निदानमुकावली' और यह वर्तमान 'मदनकामरत्नम्' दोनों ग्रन्थ प्रशस्ति नहीं रहने पर विषयविच्छेद नहीं होने से ज्ञात होता है कि अपूर्ण हैं। साथ ही साथ इन दोनों के रचयिता भी एकही पूज्यपाद मालूम होते हैं।

इस प्रस्तुत ग्रन्थ मदनकामरत्न को कामशास्त्र कहना अनुचित नहीं होगा। क्योंकि ६४ पृष्ठों में से केवल १२ पृष्ठ तक तो महापूर्ण चन्द्रोदय, लोह, अग्निकुमार, ज्वरबलफणिगरुड, कालकूट, रत्नाकर उदयमार्त्तण्ड, सुवर्णमाल्य, प्रतापलकेश्वर राजेश्वर, बालसूर्योदय (दो प्रकार का) इन अन्यान्य ज्वरादि रोगों के विनाशक रसों का विवरण और कर्पूरगुण, मृगहार भेद, कस्तूरी मेद, कस्तूरी गुण, कस्तूर्यनुपान और कस्तूरीपरीक्षा आदि हैं। बाकी जो ५२ पृष्ठ हैं वे कामदेव के जो पर्यायवाची शब्द हैं उन्हीं भिन्न भिन्न नामों से अङ्कित ३५ प्रकार के कामेश्वररसमय हैं। साथ ही बाजीकरण औषध, तैल, लिङ्ग-द्वन्द्वनलेप पुरुषवन्ध्याकारि औषध स्त्रीवन्ध्यामैत्रज मधुरस्वरकारि औषध और गुटिका-निर्माण-विधि भी हैं। कामसिद्धि के लिये मन्त्र भी आये हैं। उक्त दिग्दर्शन से स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ के सभी पृष्ठ कामविषयक विधिविधानों से ही भरे पड़े हैं।

यों तो यह सारा ग्रन्थ पद्यबद्ध है किन्तु एक जगह पञ्चवाण रस के पद्याङ्कित पद्य की सस्तरत गद्य में व्याख्या कर ली गयी है।

(७) ग्रन्थ नं० ३०७

जिनयज्ञफलोदयः

कथां—मुनि कल्याणकीर्त्ति

विषय—पूजाफलविषय

भाषा—संस्कृत

सम्बन्ध १२। इन्द्र

चौदाई ७॥ इन्द्र

पत्रसंख्या ८६

मङ्गलान्वरण

सर्वज्ञं सर्वविद्यानां विधातारं जिनाधिपम् ।
 हिरण्यगर्भं मामेयं धन्देऽहं विदुधार्षितम् ॥१॥
 भन्यामपि जिनान्नत्वा तयागणधरादिकान् ।
 कस्यते मुक्तिसम्प्राप्त्यै जिनयज्ञफलोदय ॥२॥
 जीयाल्ललितकीर्त्तिशो मद्गुर्भुनिपुङ्गव ।
 देवचन्द्रमुनीन्द्राचर्यो वयापाल प्रसन्नधी ॥३॥
 माहुरोऽपि च यच्छक्तिजिनयज्ञफलोदय ॥४॥
 न तच्चिह्नं क्रमायातगुरुपर्वाधलम्बनात् ॥५॥
 कल्याणकीर्त्तिदेवस्य भारतीकविवेधस ।
 सतां चेतसि पीयूषघातं घत्ते निरन्तरम् ॥६॥
 धृद्धिं प्रव्रति विज्ञानं कीर्त्तिधरति निर्मला ।
 प्रयाति दुरितं दूरं जिनयज्ञफलस्तुते ॥६॥

मध्यभाग—(पृष्ठ ४१ श्लोक १६)

जिनशासनमासाद्य ये सम्यक्त्वसमन्वितम् ।
 सद्भवतं नहि कुवन्ति श्लेच्छास्ते पशुमि समा ॥१॥
 दुर्गन्धविग्रहा क्रूरा सधलोकतिरस्कृता ।
 काणपद्मविचर्याङ्गा मलिनच्छिद्रवासस ॥२॥
 विरूपा विगतच्छया धनबन्धुविचर्जिता ।
 लभन्ते यन्नरा दुःखं तत्फलं पापकमया ॥२॥

अन्तिम भाग—

श्रीमूलसधे मुनिशीलतुंगे श्रीकौन्दकुन्दे वरसुरिबुन्दे ।
 वशे च देशीयगणे गुणाढ्ये महामतुच्छे धनपुस्तगच्छे ॥४११॥
 ध्यासीदसीमापनसेगेपूर्वोऽवल्यम्बुराशिर्गुणारत्नराशिः ।
 तस्माद्भूञ्चन्द्र इव व्रतीन्द्र' श्रीदेवकीर्त्तिर्जितमारभूत्ति' ॥४१२॥
 सद्गोत्रजस्तदनुवृत्तरथाधिरूढ' सच्छीलवाजिरखिलात्मसुखप्रवृत्ति' ।
 दौपाकराक्रमणाचारकरप्रचारो हसोऽप्यसौ ललितकीर्त्तिरभूद्दहसः ॥४१३॥
 श्रीललितकीर्त्तियतिमहदुदयगिरेरभद्रदागममयूख ।
 कल्याणकीर्त्तिमुनिरधिरखिलधरातलवोधनसमर्थः ॥४१४॥
 केचित्काव्यकथाप्रधाकुञ्जलिज' केचिच्च सिद्धान्तिनः ।
 केचिद् व्याकरणप्रयोगनिपुणा' केचिन्नरास्तार्किका' ॥
 केचित्तीव्रतप प्रभावकलिताः केचित्कवित्वभ्रमा' ।
 केचिद्वाचकचातुरीपरिचितास्ते तस्य शिष्या वभु' ॥४१५॥
 त्रिभुवनकलशोऽपि नेमिनाथ' कलशमगादथ भैरवेन्द्रतो ने
 तदुदयभुजि पाण्ड्यदेवनाम्नि ह्यवति चकार कलकितं त्रितीजे
 अन्यदा ललितकीर्त्तिमुनीन्द्र' सयुतामलतपोधनयुक्तः ।
 तत्त्रितीशकृतचैत्यनिवासं रक्षिताखिलगुण' प्रययौ सः ॥४१७॥
 एकस्मिन्दिवसे मुनिनाथो नाकफलां जिनपतिपदपूजाम् ।
 श्रोतृजनेभ्यो विशद्रीकुर्वन् मातृवचो निचयात्स च दध्यौ ॥४१८॥
 अल्प कथावतार महद्विदमखिल सत्पुराणप्रसिद्धम् ।
 काव्य पूजाप्रभाव तदलघु गुरु तत् कार्यमल्पज्ञान्यम् ।
 तत्तत्सगृह्य विद्वत्परिपदुपनिपद्भूतवागर्थगुम्फम्
 सिद्ध निर्धूतदोष श्रुतजनवितरत्तत्वविज्ञानसौख्यम् ॥४१९॥
 एते सन्मुनिवृत्तयाः कवित्वभाजो वादीन्द्राः कति कति च प्रवाग्मिनोऽ
 ग्रध्यात्मप्रसरण किञ्च एव सबभूव ॥४२०॥
 अयञ्च कल्याणयशा मुनीश्वर' सुकाव्यतर्कागमशब्दबेभवः ।
 पुराणपारीण इह प्रसादन' समर्थ एवेति विचिन्त्य स व्रती ॥४२१॥
 मामाह्वय व्रतिकुञ्जतिलको मिथ विशद्री कुर्वन् ।
 वृत्तात्विड्भिर्मैयि मुनिरवदन्मस्तकविस्तृतकर्णरेज ॥४२२॥

एकान्तोद्धतवादिपर्वतशिरो धजायते धागियम्
 साहित्यार्णवपूर्णचन्द्रति मुने कल्याणकीर्तिस्तव ।
 मन्दारदुमगुच्छविष्णुतसुधासंभूतमन्दाकिनी
 स्वर्णाम्भोरुहवासमासुररमानेनांशुसंधादिनी ॥४२३॥
 भंगमंगलनिवासभारती संगतार्यरचनां च तावकीम् ।
 मंगलां कुरु जिनैज्यया लसत्सुगवैभवयुतां गुणस्तुते ॥४२४॥
 इति मुनिपतिवाग्भिः प्रेरितेनामलाभिः लघुतरमतिवाचा शक्तिसाम्राज्यमाज्ञा ।
 अपि च गुरुसमीपे यन्मयारंभि पूषम् ननु किमकरखीथ सत्पराधीनवृत्ते ॥४२५॥
 चारित्रवापशिस्तुधाकरेण कल्याणकीर्तिं (प्रतिभा) मुनिनाऽभ्यधाधि ।
 जैनेन्द्रयज्ञस्य फलोदयाख्यं काव्यं जयत्वाक्षितिष्वप्रतारम् ॥३२६॥
 द्विसहस्रमिदं प्रोक्तं शास्त्रं ग्रन्थप्रमाणात् ।
 पञ्चाशदुत्तरे सप्तशतश्लोकैश्च संगतम् ॥४२७॥
 पञ्चाशच्चिंशतीयुकसहस्रशकवत्सरे ।
 सूत्रेण धृतपञ्चम्यां ज्येष्ठे मासि प्रतिष्ठितम् ॥४२८॥

इत्यार्षे धीमत्कल्याणकीर्तिमुनीन्द्रधिरचिते जिनयज्ञफलोदये विप्रमहद्वेमप्रभाविष्ठव
 जिनयज्ञाद्यधिधानाख्यवर्णनं नाम मधमो छन्द समाप्त ।

X X X X
 इसके कर्ता मुनि कल्याणकीर्ति कार्कल के मठाधीश ललितकीर्तिजी के शिष्य थे ।
 इनका ग्रन्थनिर्माण समय शालिवाहन शक १३५० है तथा यह पाण्ड्य राजा के शासन-
 समय में विद्यमान थे । इस ग्रन्थ के रचयिता आदि पर चौबीसवें वर्ष के दिग्म्बर जिन
 मासिक पत्र के विशेषाङ्क (१-२) में मैंने कुछ विस्तृत रूप से ऐतिहासिक प्रकाश डाला है ।

कवि कल्याणकीर्तिजी के गुरु ललितकीर्तिजी भैरवरज्येश के क्रमागत राजगुरु
 हैं । आज भी कार्कल मठ की गद्दी पर बैठनेवाले महारकों का ध्वी परम्परागत ललित
 कीर्ति नाम चला आता है । इस "जिनयज्ञफलोदय" के 'पञ्चाशच्चिंशतीयुकसहस्रशकवत्सरे ।
 सूत्रेण धृतपञ्चम्यां ज्येष्ठे मासि प्रतिष्ठितम् ॥ इस श्लोक से इनका समय शक सम्वत्
 १३५० सिद्ध होता है । मुनि महाराजजी ने उसी ग्रन्थ के निम्नांकित श्लोक में भैरवरज
 तथा उनके पुत्र पाण्ड्यदेव का इस प्रकार उल्लेख किया है —

"त्रिभुवनकलशोऽपि नेमिनाथ कलशमगाध भैरवेन्द्रतो जिनैन्द्र । तदुदयमुञ्जि
 पाण्ड्यदेवनाम्नि ह्यवति चकार कजाक्षितिं त्रितीये । इन दोनों में से भैरवरस भोदय का
 समय शक सम्वत् १३४० (ई० सन् १४१८) वर्ष पाण्ड्यराज का समय शक सं० १३५६
 (ई० सन् १४३१—३२) माना जाता है ।

भैरवराज का काल कवि के द्वारा उल्लिखित श्लोक में जिन नेमिनाथ तीर्थङ्कर का उल्लेख किया गया है उन्हीं के मन्दिर के दरवाजे पर लगे हुए शिलालेख से लिया हुआ है। पाण्ड्यराज वही वीरपाण्ड्य भैरवरस ओडेय है जिन्होंने कार्कल में बाहुबली स्वामी की विशाल एवं मनोह्र मूर्ति को स्थापित कर अपने नाम को अमर कर दिया है। बाहुबली स्वामी की मूर्ति की प्रतिष्ठा शक सम्वत् १३५३ (ई० सन् १४३१-३२) में हुई थी। यह बात मूर्ति की बगल में लगे हुए संस्कृत एवं कन्नड शिलालेखों से ज्ञात होती है। इस शुभावसर पर प्रसिद्ध विजयनगराधीश द्वितीय देवराय भी आमन्त्रित किये गये थे। यह प्रतिष्ठा-महोत्सव बड़े समारोह से मनाया गया था। प्रशस्तिगत इस “देवचन्द्रमुनीन्द्राचार्यो दयापाल’ प्रसन्नधी’।” श्लोकांश से यह भी विदित होता है कि ललितकीर्त्तिजी को देवचन्द्र नाम के एक दूसरे शिष्य भी थे। कवि कल्याणकीर्त्तिजी के गु० ललितकीर्त्तिजी मूलसद्य, कुन्दकुन्दान्वय, देशीयगण, पुस्तकगच्छ के पट्ट-क्रमागत भट्टारक थे। इन भट्टारको का मूलस्थान मैसूर राज्यान्तर्गत “हणसोगे” था। प्रशस्तिगत ४१२ वें श्लोक से ज्ञात होता है कि ललितकीर्त्तिजी के गु० देवकीर्त्तिजी थे। विदित होता है कि यह ललितकीर्त्तिजी अन्यान्य विषयों के अङ्ग्रे मर्मज्ञ थे। क्योंकि कल्याणकीर्त्तिजी ने इस प्रशस्ति में दिखलाया है कि काव्य, व्याकरण, न्याय, सिद्धान्तादि विषयों के ज्ञाता कई शिष्य और भी ललितकीर्त्तिजी के मौजूद थे।

कल्याणकीर्त्तिजी ने ग्रन्थ रचना का उद्देश्य ग्रन्थ के अन्त में यों बतलाया है कि एक बार मेरे पूज्य गुरुदेव ललितकीर्त्तिजी ने बहुतेरे श्रोताओं को जिनपूजा का फलोपदेश देने के पश्चात् यह कहा कि मैंने यह पूजाफल सन्नेप में वर्णित किया है—पुराणों में इसका विस्तृत विवरण है। साथ ही साथ मुझे योग्य समझ कर उन्होंने पतद्विषयक एक ग्रन्थ-प्रणयन करने का आदेश भी दिया। उन्हीं की आज्ञा का पालन-फलस्वरूप यह जिनयज्ञ फलोदय है।

निम्नलिखित श्लोक के आधार पर इस ग्रन्थ की श्लोक-संख्या दो हजार सात सौ पचास (२७५०) सिद्ध होती है.—

“द्विसहस्रमिदं प्रोक्तं शास्त्रं ग्रन्थप्रमाणतः।

पञ्चाशदुत्तरैः सप्तशतश्लोकैश्च संगतम् ॥”

“कर्णाटक कविचरिते” के द्वितीय भाग से ज्ञात होता है, हमारे यह कल्याणकीर्त्तिजी निम्नलिखित ग्रन्थों के भी रचयिता हैं—

(१) ज्ञानचन्द्राभ्युदय (२) कामनकथे (३) अनुप्रेक्षे (४) जिनस्तुति (५) तत्त्वभेदाष्टक (६) सिद्धराशि। इन ग्रन्थों का सक्षिप्त परिचय क० कविचरिते के मान्य सम्पादक ने अपने ग्रन्थ में दे दिया है। इस कवि का लिखा हुआ संस्कृत भाषाबद्ध एक यशोधरचरित

एवं कन्नड में फणिकुमार चरित भी है। यशोधरचरित को श्लोक सं० १८५० और रचना समय शक सं० १३७५ है। इस ग्रन्थ का आधार गन्धर्व कवि का प्राकृतग्रन्थ है और इसकी रचना पाण्ड्य नगर (कारकल) के गोम्मटेश्वर चैत्यालय में हुई थी। फणिकुमार चरित का प्रणयनकाल शक सं० १३६४ है। ताडपत्ताङ्कित ये दोनों ग्रन्थ भवन में मौजूद हैं। भवन के संगृहीत ताडपत्ताङ्कित 'विन्मय चिन्तामणि' नामक कन्नडपद्यात्मक लघुकलेवर ग्रन्थ भी समभवतः इन्हीं कल्याणकीर्ति का ही।

(द) ग्रन्थ न० ३०५

षड्दर्शन-प्रमाण-प्रमेयानुप्रवेश

कर्ता—शुभचन्द्र

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इंच

चौड़ाई ४।। इंच

पत्रसंख्या २।

मङ्गलाचरणा

साधनन्तं समाख्यात व्यक्तानन्तधतुष्टयम् ।

ब्रह्मोक्तये यस्य साध्नायं सस्मै तीर्थं कृते नम ॥

× × ×

ग्रन्थ भाग (पूर्व पृष्ठ १० पंक्ति ३५)

अपरं च द्रव्यतत्त्वादिनित्यद्रव्यवृत्तयोऽस्याविशेषा' अयुतसिद्धानामाधाराधेयमूता य' सम्बन्ध इहेवं प्रत्ययहेतु' स समवाय । प्रत्यसलैङ्गिके द्वे एव प्रमाणमिति वैशेषिक दर्शनसमाप्त । साख्यैस्तु धत्सनिजबुद्ध्या परिक्लिप्तोऽयं निर्बू' तिनगर्या प'द्या । यदु पञ्चविंशतितत्त्वपरिच्छानाभि'श्रेयसाधिगम' । तत्र प्रयो शुणा । सत्त्वं रजस्तमश्च । स प्रसादलाघवप्रसयानभिर्यगद्वेषप्रीतय कार्य सत्यस्य । शोरुतापस्वेदस्तम्भोद्वेगप्रद्वे'पा' का रजस्त' । मरणसाधनबीभत्सदैन्यगौरवाणि तमस' कार्यम् । तत' सत्त्वरजस्तमस' साभ्यावस्था प्रकृतिः सय प्रधानमित्युच्यते ।

शस्ति —

जयति शुभचन्द्रदेव कण्डूगणपुराडरीकवनमार्त्तण्ड' ।
चण्डांत्रदण्डदूरो राद्धान्तपयोधिपारगो बुधविनुतः ॥

x x x

इस लघुकलेवर ग्रन्थ में विद्वह्वर शुभचन्द्रदेव ने पद्धर्शनो के प्रमाण और प्रमेय का अक्षित परिचय दिया है। शुभचन्द्र नाम के कई विद्वान् हुए हैं। “दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता प्रौर उनके ग्रन्थ” के अनुसार निम्न लिखित पाँच (१) शुभचन्द्र के नाम उपलब्ध होते हैं:—

(१) शुभचन्द्राचार्य (ज्ञानार्णव के कर्त्ता—जीवनकाल ११वीं शताब्दी*) (२) शुभचन्द्र-भट्टारक (जीवनकाल वि० स० १४५०) (३) शुभचन्द्र (प्रसिद्ध पाण्डव-पुराणादि अन्यान्य कई ग्रन्थों के कर्त्ता—जीवन काल वि० स० १६५०) (४) शुभचन्द्राचार्य (संशयि-वदनविदारण के कर्त्ता—जीवन-काल x) (५) शुभचन्द्र (करकण्डु महाराजचरित्र आदि के कर्त्ता जीवन-काल वि० स० १६११) पाण्डवपुराणादि के कर्त्ता भट्टारक शुभचन्द्र का जीवनकाल प्रेमी जी के उक्त ग्रन्थ में वि० स० १६५० लिखा हुआ है। किन्तु यह समय मुझे भ्रमपूर्ण मालूम होता है। क्योंकि पाण्डवपुराण की निम्नाङ्कित प्रशस्ति से यह बात स्पष्ट प्राप्त हो जाती है कि उनका समय वि० स० १६०५ है:—

“श्रीमद्विक्रमभूपतेद्विकहतस्य पण्टे संख्ये शते (१)

रम्याद्याधिकचत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ ।

श्रीमद्भागवतनीचृतीदमतुले श्रीशाकवाटे पुरे

श्रीमच्छ्रीपुरुधासि च विरचित स्थेयात्पुराण चिरम् ॥

इससे यह भी विदित होता है कि करकण्डु महाराजचरित्र के रचयिता शुभचन्द्र पाण्डवपुराण के कर्त्ता से भिन्न नहीं है। क्योंकि जीवनकाल में केवल तीन वर्ष की दूरी अधिक नहीं फही जा सकती है एवं करकण्डु महाराज का चरित्र भी दोनों शुभचन्द्र की रचना में आगया है। फिर भी यह अनुमानपरक है। प्रशस्ति एवं रचनाशैली आदि से इसका प्रकृत निणय किया जा सकता है। पाण्डवपुराण की प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि “सजायिदशनविदारण” के कर्त्ता पाण्डवपुराण के कर्त्ता शुभचन्द्र से भिन्न नहीं हैं। पाण्डवपुराण और सजायिदशनविदारण के कर्त्ता शुभचन्द्र को भिन्न भिन्न मानने की धारणा

*रायचन्द्र जेनशास्त्रमाला में प्रकाशित ज्ञानार्णव के प्रारम्भ में प्रेमी जी के द्वारा लिखित “श्रीशुभचन्द्राचार्य का समय-निर्णय” के आधार पर ।

में मुख्य कारण यह हो गया है कि संशयिवदनविदारण ग्रन्थ का प्रतिलिपिकाळ संग्रह कर्त्ता को वि० स० १५८८ मिला है। मेरे अनुमान से यह काल अमपूर्ण सा ज्ञात होता है।

इसी प्रकार अथर्ववेदलोक के शिलालेखों में भी मुझे शुभचन्द्र चतुष्टयी के दर्शन होते हैं। एक तो देवकीर्त्ति के शिष्य दूसरे गण्डधिमुक मलधारिदेव के शिष्य, तीसरे माघनन्दी के शिष्य और चौथे रामचन्द्र के शिष्य।

पाण्डवपुराण की प्रशस्ति में प्रतिपादित "पद्माद्" ही सम्भवतः यह प्रस्तुत ग्रन्थ 'पद्दर्शनप्रमाणप्रमैथानुप्रवेश" है। किन्तु साथ ही साथ मन में यह भी शङ्का स्थान कर जाती है कि पाण्डवपुराण, कार्तिकेयानुप्रेक्षा भादि अपने अन्यान्य ग्रन्थों की प्रशस्तियों में अपनी विस्तृत गुरुपरम्परा भादि का परिचय जिस प्रकार इन्होंने दिया है। इसमें भी दे दिये होते। अस्तु जो हो इस ग्रन्थ की रचनाशैली एवं भाषा सरणी प्रशस्त है। अन्तिम श्लोक से यह भी ज्ञात होता है कि आप अपूर्व वाद् पद्म तपस्वी एव सिद्धान्त शास्त्र के प्रखर विद्वान् थे।

बल्कि उल्लिखित अथर्ववेदलोक के शुक सम्बत् १०४५ के ४३ (११७) वं शिलालेख में वर्णित २ य शुभचन्द्र देव की ओर मेरा ध्यान कुछ आकृष्ट सा हो जाता है। क्योंकि उस शिलालेख में वर्णित शुभचन्द्र के व्यक्तित्व और पाण्डिस्यद्योतक विशेषणों में इस ग्रन्थ का अन्तिम एकमात्र श्लोक मिल सा जाता है। अत इतिहासप्रेमी विद्वान् इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

(६) ग्रन्थ नं० $\frac{२१२}{४}$

अलंकार-संग्रह

कर्त्ता—अमृतमन्दयोगी

विषय—अलंकार

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—८। इन्च

चौड़ाई—४। इन्च

पससल्या—१०४

मङ्गलाचरण

जगद्विद्यजननजागरूकपद्मद्वयम्।

अवियोगरस्ताभिन्नमाद्य मियुनमाद्ये ॥१॥

तदुल्लासगन्माकारां तत्त्वकैरवक्रौमुद्रीम् ।
नमामि शारदा देवीं नामरूपाधिदेवताम् ॥२॥

प्रशस्तयत्—

उद्दामकलत्रां गुर्वीमुदधिमेखलाम् (?) ।
भक्तिभूमिपति. शास्ति जिनपादाञ्जपट्टपदः ॥३॥
तस्य पुत्रस्थयागप्रहासमुद्रविष्टाद्धित ।
सोमसूर्यकुलोत्तमो महितो मन्वभूपति ॥४॥
म कदाचिन्सभामध्ये काव्यालापकयान्तरे ।
अपृच्छत्प्रमृतानन्दमात्रेण कवीश्वरम् ॥५॥
वर्णशुद्धिं काव्यवृत्तिं रसान् भावाननन्तरम् ।
नेतृभेदानलङ्कारान् दायानपि च तद्गुणान् ॥६॥
नाट्यधर्मान् रूपकोपरूपकाणां भिन्नान्विसि(?) ।
चातुर्ध्वजप्रभेदाश्च विकीर्णास्तत्र तत्र तु ॥७॥
मञ्जिन्यैकत्र कथय सोकयाय सतामिति ।
मया तन्प्रार्थितेनेन्धममृतानन्दयोगिना ॥८॥
तत्रान्तर्गादितानर्थान् वाक्यानर्थैव ध्वञ्चित् ध्वञ्चित् ।
मञ्जिन्य क्रियते सम्यक् सव्यातद्धारसप्रह ॥९॥

x x x

७थ्यभाग—(पृष्ठ पृ ५२ पक्ति ४)—

लीलेति पर्दकथित पुनरपि लीलेति कथितमेतस्मिन् ।
यन्मिन्नत्र प्ररुष्ट पतन्प्रकरं तत्रामनन्ति यथा ॥
क क कृप न घर्दरायिनधुरो धोरौ घुंन्स्वरु
क क क कमन्तरु त्रिकम कतुंकरा नोद्यत ।
के के कानि घनान्दरग्यमशिया नान्मलयेयुर्यत ।
निहे स्नेहधिलान्बनयमनि पञ्जाननो घर्तने ॥

x x x

चित्तम भाग—

एतद्गान्धर्वयोगिधरिणे कन्ध्वरन्मंभे वस्तुनिर्गंघो नामाष्टमोऽध्यायः

“कन्नड कविचरिते” भाग २५ पृष्ठ ३३ में एक अमृतनन्दी कवि के बारे में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है —

“इन्होंने अकारादि षोडशनिघण्टु लिखा है। यह जैन कवि हैं। इनका लगभग १३०० शताब्दी में होना संभव ज्ञात होता है।”

“रसरत्नाकर” नामक कन्नड अलङ्कार ग्रन्थ की भूमिका में स्वर्गीय ए० वेङ्कटराव वी० ए० पद्म० टी० तथा पण्डित एच० शेय ऐय्यङ्गार ने लिखा है कि— ‘अमृतनन्दी का अलङ्कारसंग्रह नाम का एक ग्रन्थ है। उसमें (१) वर्णगण विचार (२) शब्दार्थ निर्णय (३) रसनिर्णय (४) नैतमेदविचार (५) अलङ्कारनिर्णय (६) दोषगुणालङ्कार निगम (७) सम्यक् निरूपण (८) वृत्तिनिरूपण (९) काव्यालङ्कारनिरूपण नामक ये नव परिच्छेद हैं। यह भी इनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। क्योंकि प्राचीन आलङ्कारिक ग्रन्थों का देखकर ‘मन्व’ भूपति की अनुमति से यह ग्रन्थ संचित करके मैंने लिखा है यों ग्रन्थारम्भ में रचयिता ने स्वयं कहा है। यह मन्व राजा सोमसूर्यकुलोत्तस समुद्रबिम्बाङ्कित यमगङ्गराज, केरलकभीम समरनिरङ्कुश एवं नूनसाहसाङ्कु आदि बिरुदायला से अलङ्कृत थे। इस बात का कवि ने ग्रन्थ के प्रत्येक परिच्छेदान्त पद्य में कहा है। इस मन्वभूति के पिता शिवपादात्रयद्वय मति भूमिप थे।”

तिरुवनापल्ली के जम्बुकेश्वर देवस्थान में प्राप्त प्रतापहरदेव के एक शासन से मन्वगण गोपाल नामक एक प्रताप हर का सामन्त था ऐसा विश्वित है इसलिये अनुमान किया जाता है कि यही अमृतनन्दी के आश्रयदाता होंगे।

नेल्लूर के शक वर्ष १२२१ (ख्रीस्ताब्द १२१६) एक शासन में “तस्यामजः सुतो मन्व गण्डगोपालभूपतिः। प्रतापहरभूपस्य प्रसादाश्रितश्चैव येसा उल्लेख मिलता है। इससे इस मन्वभूष का समय ख्रिस्त शक १२१६ सिद्ध होता है। अतः कवि अमृतनन्दी का काव्य ख्रिस्त शक १३वीं शताब्दी का अन्तिम भाग परिज्ञात होता है। यह कवि प्रतापहर के आश्रय में प्रतापहरद्वीय ग्रन्थ के रचयिता विद्यानाथ के समकालीन होंगे या कुछ इधर के।

इन उल्लिखित दोनों उद्धरणों से हम ग्रन्थ के रचयिता यज्ञ अमृतनन्दी ह तथा इनका समय भी वही १३वीं शताब्दी है यह बात प्रमाणित होती है।

कृष्णु मवन की इस प्रति में जनपादात्रयद्वय वही पाठ है।

(१०) ग्रन्थ नं० २१३
ख

केवलज्ञानहोरा

कर्ता—चन्द्रसेनमुनि

विषय—ज्योतिष

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१३॥ इन्च

चौड़ाई—८॥ इन्च

पत्रसख्या—३७६

प्रारम्भिक भाग—

अनन्तविद्याविभव जिनेन्द्रं निधाय नित्य निरवद्यबोधम् ।
स्वान्तेऽहमिन्द्रुप्रभमिन्द्रवन्द्य वरुये परां केवलबोधहोराम् ॥१॥
होरा नाम महाविद्या वक्तव्यञ्च भवद्वितम् ।
ज्योतिर्ज्ञानिकलासारं भूपणा बुधपोषणम् ॥२॥
केवलज्ञानहोरायाः चन्द्रसेनेन भाषितम् ।
परोपदेशिक ग्रन्थं (१) मया सप्तशत (१) कृतम् ॥३॥
आगमः (१) सदृशो जैनः चन्द्रसेनसमो मुनिः ।
केवली (१) सदृशी विद्या दुर्लभा सचराचरे ॥४॥
श्रीमत्पञ्च गुरु अतुर्विघ्नसुराधीशाश्वितान् संस्तुतान्
चातुर्वर्णजन (१) चतुर्गतिभवक्लेशापहारानपि ।
तत्त्वान् सप्तवरैकवाक्यनिरतान् दोषद्वयध्वसकान्
आचार्याश्च (१) उपासकान्सुमनसा वन्दामहे दिग्ग्रहान् ॥५॥
तन्मात्रवेदाम्बुधिबाणशैलशम्यत्तिचन्द्राश्वभवे ध्रुवाङ्काः ।
प्राच्यादिविद्वु प्रथिता मुनीन्द्रैर्नष्टादिविज्ञानविधौ विधेयाः ॥६॥

×

×

×

गध्यभाग (पृष्ठ १८४ पक्ति ५)

तन्मात्रवेदाम्बुधिकामशैलशतंगनेत्रक्षितयो द्रुतान्ताः (ध्रुवाङ्काः) ।

प्रागादिविद्वु प्रथिता मुनीन्द्रैर्नष्टादिविज्ञानविधौ विधेयाः ॥

पृच्छकविंशशतगुणित प्रहरयुत त्रिगुणित त्रिंशत् ।

* बीच बीच में कुछ सादे पृष्ठ भी हैं ।

समैतं विद्युव (१) सप्रश्नाक्षरयुतं । वसु ७ । हतं । तच्छेषं १ । अर्धवर्गं २ । चवग ३
 टवर्गं ४ । तवग ५ । पवर्गं ६ । यवर्गं ७ । सवर्गं कवर्गं । अथ । एकाविंशत्यपर्यन्त १ ।
 अर्धवर्गं २ । कवर्गं ३ । चवग ४ । टवर्गं ५ । तवर्गं ६ । पवग ७ । यवर्गं । शवग ।
 तद्वगशेषं । भेशवाण ५ । इत । वि । विपमाक्षर । स । समाक्षरं । अन्त्याक्षरं । तदक्षर
 शेष । गिरिबाण ५७ । हतं दिवत । वि । पूर्वाक्षरं । सं । द्वितीयाक्षरं । फते अक्षरभेदा ।
 × × × × × × ×

×

×

×

अंतिम भाग—

× × × × × × हेहलिके ८५ । हुल्लिगोट्टु ८६ । हेरव्यलि ८७ । हिरिग्या
 ८८ । हल्लयाल ८९ । हालूक ९० । होमाक ९१ । हाडूक ९२ । हेयति ९३ । हेकंब ९४ ।
 हगरे ९५ । हरियट्टि ९६ । हुक्केरि ९७ । हरिगे ९८ । हिप्परिगे ९९ । हुक्मुजि १०० ।
 कोडन हुक्वलि १०१ । होसकुर्ग १०२ । द्विजयिडि १०३ । हुक्लि १०४ । हुणिसिगे १०५ ।
 हन गवाडे १०६ । हामाळि १०७ । सम्पूर्णम् ।

यादृश पुस्तक दृष्टं तादृशं लिखितं मया ।

अवद्धं वा सुवद्धं वा मम दोषो न विसे ॥१॥

हमारा ज्योतिषशास्त्र दो भागों में विभक्त है । एक गणित और दूसरा फलित या होरा
 विज्ञान । प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम 'केयलज्ञानहोरा' है । होरा की व्युत्पत्ति विद्वानों ने यों
 की है—'आद्य'त्ववर्णलोपात् होरास्माकं भवत्यहोरात्तात् —अर्थात् 'अहोरात्र' शब्द का
 आदिम अक्षर 'अ' और अन्तिम अक्षर 'त्र' इन दोनों के लोप कर देने से होरा* शब्द
 व्युत्पन्न हुआ है । 'केयलज्ञानहोरा' इस नामसे बहुत से व्यक्तियों की यही धारणा है कि
 यह भी फलित ज्योतिष का एक मौलिक ग्रन्थ होगा । अथकाशामाव से इसका विशेष
 परिचय इस समय यहाँ पर नहीं दिया जा सका । हाँ इस विद्या के अर्मेष्ठ किसी सावकाश
 विद्वान् को इस पर कुछ विशेष प्रकाश डालने की चेष्टा करनी चाहिये । 'दिगम्बर जैन
 ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ' में भी इसे ज्योतिषशास्त्र ही लिखा है । साथ ही साथ प्रेमी
 जी की इस पुस्तक में इस 'केयलज्ञानहोरा' की श्लोकसंख्या तीन हजार बतलायी गयी है ।
 परन्तु प्रारम्भिक "परापदेशिकं ग्रन्थं ? मया सप्तशतं श्रुतम् इस तीसरे पद्यभाग से इस
 ग्रन्थ की श्लोकसंख्या सात सौ सिद्ध होती है । किन्तु ग्रन्थ बहुत बड़ा है । न मालूम
 ग्रन्थकर्ता ने यह सात सौ संख्या किस बात की ही है ।

इसके कर्ता घट्टसेनमुनि हैं । इन्होंने अपने इस ग्रन्थ के 'केयलज्ञानहोरायाश्चन्द्रसेनेन

* ज्योतिषोक्तं चन्द्र पृथक् एक राशि या क्षत्र के आधे भाग को भी होरा कहते हैं ।

भाषितम्” इस पद्यांश में इस बात को स्पष्ट कर दिया है। साथ ही साथ “आगमः सदृशो जैन चन्द्रसेनसमो मुनि । केवली (?) सदृशी विद्या दुर्लभा सचराचरे ॥” इस पद्य में अपनी प्रचुर प्रशंसा भी की है। इधर उधर बहुत कुछ टटोलने पर भी इनके बारे में विशेष परिचय मैं नहीं मालूम कर सका। ग्रन्थान्तर्गत बातों से ज्ञात होता है कि आप ज्योतिषशास्त्र के एक अच्छे ज्ञाता थे। इसमें कोई शक नहीं कि आप कर्नाटकनिवासी एव कन्नडभाषी थे। क्योंकि अपने ग्रन्थ के संस्कृतवद्ध पद्याँ (कर्णसूत्रो) को खुलाशा करने के लिये इन्होंने जहाँ तहाँ कन्नडभाषा का भी अधिकतर आश्रय लिया है। भवन की यह प्रति श्रवणवेलोल की कन्नड प्रति से उतारी गयी है, किन्तु है यह बहुत अशुद्ध। अतः यहाँ आपकी संस्कृत-रचनाशैली के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। किसी शास्त्रागार में इसकी कोई शुद्ध प्रति का अन्वेषण परमावश्यक है। इसमें जो प्रकरण* हैं उनमें कुछ का नीचे नाम-निर्देश किया जाता है :—

हेमप्रकरण, दाम्यप्रकरण, शिलाप्रकरण, मृत्तिकाप्रकरण, वृद्धप्रकरण, कार्पास-गुल्म-वल्कल-तृण-रोम-चर्म-पत्रप्रकरण, सख्याप्रकरण, नष्टद्रव्यप्रकरण, निर्वाहप्रकरण, अपत्य-प्रकरण, लाभालाभप्रकरण, मोक्षप्रकरण, स्त्रीसभोगप्रकरण, भोजनप्रकरण, स्वप्नप्रकरण, सामुद्रिकप्रकरण, स्वरप्रकरण, वास्तुविद्याप्रकरण, शकुनप्रकरण, देहलोहदीक्षाप्रकरण, अञ्जनविद्याप्रकरण, विषविद्याप्रकरण। इसी प्रकार देशभेद, उपकरणभेद, शास्त्रभेद, रत्नभेद, पद्मिभेद, यन्त्रभेद, मन्त्रभेद, जातिभेद, मुद्राभेद आदि अनेक द्रव्यों के भेद भी इसमें दरसाये गये हैं। वल्कि मुद्राभेद नामक शीर्षक में विक्रम, चालुक्य, कादम्ब, युधिष्ठिरादिक अनेक ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम भी आये हैं।

* ये प्रकरण किसी काण्ड या अध्याय के अन्तर्गत हैं।



(११) ग्रन्थ न० २१४
ख

दानशासन

कर्त्ता—धीवाह्यपूज्य श्रुति

विषय—दानफलविवरण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इञ्च

चौडाई ५॥ इञ्च

पत्रसंख्या ५५

प्रारम्भिक भाग —

यस्य पादाब्जसद्वृण्मन्त्राणांनिमुक्तकल्पना* ।
 ये भव्या* सन्ति तं देवं जिनेन्द्र प्रणमाम्यहम् ॥१॥
 दानं बह्येऽथ धारीय शस्यसम्पत्तिकारणम् ।
 क्षेत्रोर्त्त फलतीव स्यात् सर्थक्रीपु समं सुखम् ॥२॥
 शुद्धसङ्घट्टिमि* शुद्धपुण्योपार्जनलम्पटेः ।
 सार्द्धं ब्रूयादिमं मन्त्रं नैतरैस्तु कदाचन ॥३॥

x

x

x

मध्य भाग (पूर्व षष्ठ २८ पक्ति १५)

धीमन्त्रिलोकमयनान्तरस्वर्गवस्तुमाहिप्रबोधनिद्विजासिधिराजमानम् ।
 क्षानैकगोचरमशेषमुनीन्द्रयन्त्रमिन्द्रार्चिताग्रिमहन्तमहं भमामि ॥१॥
 कर्महृद्धर्महृत्पात्र तस्य भेदानहं द्रुवे ।
 पात्रे देयं न चान्यत्र क्षेत्रे कृष्यधिपो यथा ॥२॥
 रत्नत्रयात्मको धर्मस्तमाचरति धार्मिक* ।
 धर्मोमिदृद्धये स्वस्य धार्मिके प्रीतिमाचरेत् ॥३॥
 पात्रभेदकथादत्तै* पात्रं पञ्चविधं मतम् ।
 तद्यथेति हृते प्रदने चरिहाह तदुत्तरम् ॥४॥
 उदकपानमनगात्समप्रदाय* मध्यं मतेन रहितं सुखं जपन्यम् ।
 निदर्शनं मतनिकाययुतं कुपात्रं युष्मोर्मितं नरमपानमिदञ्च विद्धि ॥५॥

संगादिरहिता धीरा रागादिमलवर्जिता ।
 शान्ता दान्तास्तपोभूपास्ते पात्रं दातुवृत्तमम् ॥६॥
 निस्संगिनोऽपि वृत्ताढ्या नि स्नेहा, सुगतिप्रियाः ।
 अभूपाश्च तपोभूपास्ते पात्रं दातुवृत्तमम् ॥७॥
 परीपहजये शक्ता शक्ता' कर्मपरिज्ञये ।
 ज्ञानच्यानतपःशक्तास्ते पात्रं दातुवृत्तमम् ॥८॥
 प्रशान्तमनस, सौम्याः प्रशान्तकरणाक्रियाः ।
 प्रशाग्तारिमहामोहास्ते पात्रं दातुवृत्तमम् ॥९॥
 धृतिभावनया युक्ता' सत्त्वभावनयान्विताः ।
 तत्त्वार्थहितचेतस्कास्तेपात्रं दातुवृत्तमम् ॥१०॥
 परीपहजये शूराः शूरा इन्द्रियनिग्रहे ।
 कषायविजये शूरास्ते पात्रं दातुवृत्तमम् ॥११॥
 x x x

अन्तिम भाग—

मर्तं समस्तैः ऋषिभिर्वदाहतेः प्रभासुरात्मावनदानशासनम् ।
 मुदे सतां पुण्यधन समर्जित दानानि दद्यान्मुनये विचार्य्य तत् ॥
 शाकादे निधुगाग्निशीतगुणितेऽतीते वृषे वत्सरे
 माघे मासि च शुक्लपक्षदशमे श्रीवासुपूज्यर्षिणा ।
 प्रोक्तं पावनदानशासनमिदं ज्ञात्वा हित कुर्वताम्
 दानं स्वर्णपरीक्षका इव सदा, पात्रत्रये धार्मिकाः ॥

समाप्तमिदं दानशासनम्

ग्रन्थ के अन्तिम पद्य से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि इस "दानशासन" के कर्त्ता वासु-
 पूज्य ऋषि हैं। साथ ही साथ उक्त पद्य से यह भी विदित होता है कि यह ग्रन्थ शक सम्बत्
 १३४३ माघ शुक्ल दशमी के समाप्त हुआ था। ग्रन्थकर्त्ता ने अपने इस ग्रन्थ में शुकपरम्परा,
 गण, गच्छ आदि की कुछ भी चर्चा नहीं की है। अत इनके विषय में अधिक प्रकाश नहीं
 डाला जा सका। वाचिणायक कतिपय जिलालेखों में "वासुपूज्य" यह नाम मिलता है
 अत्रन्वय। पर प्रस्तुत वासुपूज्य के गणगच्छादि के न मालूम होने से नहीं कहा जा सकता
 है कि अमुक वासुपूज्य ही इस दानशासन के कर्त्ता हैं। अगर किसी विद्वान् के इन
 वासुपूज्यऋषि के गणगच्छादि विशेष बातों का पता ज्ञात हो तो उन्हें प्रकट कर देना चाहिये।

इनकी संस्कृत रचनशैली साधारणतया अच्छी है। प्रत्येक भाग की श्लोकसंख्या अलग अलग बता कर इस ग्रन्थ को इन्होंने निम्नलिखित भागों में विभक्त किया है —

(१) अष्टविधदानलक्षण (२) उत्तमपात्रसामान्यविधि (३) अमयदानविधि (४) दानशालाविधि (५) त्रियाविधि (६) द्रव्यशोधनविधि (७) पात्रलक्षणविधि (८) करण त्रयलक्षिताहारदानविधि (९) भैषज्यदानविधि (१०) शास्त्रदानविधि।

(१२) ग्रन्थ न० $\frac{२१५}{४}$

भव्यकरणठाभरणपञ्चिका

कर्ता—भईदास

विषय—देवगुणशास्त्रादिलक्षण

भाषा—संस्कृत

सम्बाई ६॥ इ०

चौडाई ६ इ०

पत्रसंख्या २३

प्रारम्भिक भाग—

धीमान् जिने मे धियमेव दिव्याद्यदीयरत्नोज्ज्वलपादपीठम् ।
 करैर्नतेन्द्रोत्करमौलिररने स्वपद्मरागादिव चालित स्वे ॥१॥
 सदापि सिद्धो मयि सन्निरुद्ध्यास्त सिद्धिबध्ना सह सान्द्रसौख्यम् ।
 धर्षत्यज्जलं हनुमाकृतास्तं संभोगभाविभ्रममोतवैध ॥२॥
 भाचार्यधर्याङ्गरितानि शिष्यानाचारयन्तं स्वयमाधरन्तः ।
 पदलिशतापि स्वगुणैमुतास्तैः सदापरात्माद्यशुणामिलापाः ॥३॥
 तेऽप्यापकाः स्युव्वते नितान्तं धे ब्रह्मचर्यव्रतपालिनेऽपि ।
 द्याश्च चित्तेषु सरस्वतीश्च मुखेषु देहेषु तपःधियश्च ॥४॥
 ये साधवो मे वदतु स्ववृत्तिं दयालवोऽपि व्रतदिव्यशस्त्रौ ।
 भनगराजं समरे निहृत्य कुर्यन्त्यनगौरुपदं स्वकीयम् ॥५॥
 जिनागमज्ञोपनिधिर्गभीरो विलोडितश्रेष्ठिबुधैर्विधानात् ।
 वृदाति रत्नत्रयमुज्ज्वलार्गं तदा स तेभ्योऽप्यमृतं दुरापम् ॥६॥

श्रीगौतमाद्या जिनयोगिनो ये वीरांगदान्ता महितात्मवृत्ता ।
तदीयनामाक्षररत्नमाला मदीयवाश्या मणिकण्डिका स्यात् ॥७॥
अथाशरीरानुपमाशुजाक्षीमप्याशु वश्या यदल विधातुं ।
शत सुवर्णाभिनवार्यरत्नेस्तद्भव्यकण्ठाभरणं तनिष्ये ॥८॥

x x x

मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ १४ पक्ति ४)

श्रित्वादिमं (?) तापमितेषु बुद्ध्यानाश्रित्य मूलाच्च भजत्स्वमुक्त्वा ।
द्वायाद्बुधस्तस्य न रुद्रपरागस्तथापि ते दु खलुखास्पदानि ॥१॥
तस्मिन्निदानीमिव सार्वभौमे देशे वसत्यप्यतिविप्रकृष्टे ।
धरन्ति ये ते सुखिनस्तदीयामाह्वामनुलङ्घ्य परे सदु'खा ॥२॥
जना गृहग्रामपुरीजनान्तपदूखण्डमालप्रभुशासन चेत् ।
उल्लंघयन्तोऽप्युद्धुःखभाजस्तर्क पुनस्सर्वजगत्प्रभोस्तत ॥३॥
सतो हित शास्ति स पव देव सदाप्य (?) ते शासनतत्फलेच्छाम् ।
कलस्वन कर्णसुधारसौवं वमत्तयोर्बाधमपेक्षते किम् ॥४॥

x x x

श्रान्तिम भाग—

अर्थास्सहायार्थमिदयेति सर्वेऽप्याचार्यमुख्या गुरवस्वयोऽपि ।
असारससारविनाशहेतोराराधनीया अग्निशं मया स्यु' ॥१॥
सूक्तैव तेषां भवमीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्माः ।
त एव शेषाश्रमिणां सहाया धन्या स्युराशाधरसुरिवर्याः ॥२॥
आराध्यमानामलदर्शनास्ते धर्मेऽनुरक्ता शमिनां सदापि ।
एक यथाशक्ति भजन्यशक्त्यमेकादशाणुव्रतिकास्पदेषु ॥३॥
ते पात्रदानानि जिनेन्द्रपूजा शीलपवासानपि चिन्वते च ।
न्यायेन कालादसतीश्वरोपभोगस्य शर्मानुभवन्ति धान्तम् ॥४॥
कर्तुं तप संयमदानपूजास्त्रान्यायमप्याश्रितचारुवाताः ।
ते तद्भव श्रीजिनसूक्तशुद्ध्या पत्तादिभिश्चाघलव क्षिपन्ति ॥५॥
त एव मान्या भुवि धार्मिकौघा धर्मानुरक्ताखिलभन्यलोकैः ।
सुधानुरक्ता ह्यनुरागसूतिमाधारपात्रेष्वपि तन्वतेऽस्याः ॥६॥

इत्युक्तमाहादिकसत्स्वरूपं संश्रयवतोऽपि वृद्धा रचितं स्यात्
 सज्ज्ञानमस्याभ्यरितं ततोऽस्मात्कर्मक्षयोऽस्मात्सुखमप्यदुःखम् ॥७॥
 आत्तादिरूपमिति सिद्धमेवेत्य सम्यगेतेषु रागमितरेषु च मध्यमायम् ।
 ये तन्वते ध्रुवजना नियमेन तेऽर्हदासत्यमेत्य सततं सुखिनो भवन्ति ॥८॥

इत्यर्हदासकृतमध्यकण्ठामरणस्य पञ्चिका समाप्ताभूत् ।

इस “मध्यकण्ठामरणपञ्चिका” के कर्ता कविवर भर्हदासजी हैं। अभी तक इनके तीन ही ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। बहिक प्रस्तुत कृति को छोड़ कर शेष दो ग्रन्थ—‘पुरुदेव चम्पू’ तथा ‘मुनिसुव्रतकाव्य’ प्रकाशित हो भी चुके हैं। पहला ग्रन्थ “माशिनचन्द्र जैन ग्रन्थमाला” बर्बर से और दूसरा “मुनिसुव्रतकाव्य” सस्वत हिन्दी-टीका-सहित “जैनसिद्धान्त मवन” आरा से। इनकी कविता के बारे में यहाँ पर मैं विशेष कुछ न लिख कर सहृदय पाठकों से “मुनिसुव्रतकाव्य” को ही साद्यन्त परु बार पढ जाने का अनुरोध करता हूँ। हमारे भर्हदास जी गद्य पद्य दोनों के सिद्धहस्त लेखक हैं। आपकी सभी रचनार्थ माधुर्य आर प्रासादादि काव्योचितगुणों से ओतप्रोत हैं।

आप विद्वद्वर आशाधर जी के शिष्य ह। यह बात आपकी तीनों कृतियों के निम्न लिखित अन्तिम पद्यों से स्वयं सिद्ध होती है —

मिथ्यात्वकर्मपटलैश्चिरमावृते मे युग्मे द्यो कृपयथाननिदानभूते ।

आशाधरोकिलसदञ्जनसप्रयोगे स्वच्छीकृते पृथुलसत्पथमाश्रितोऽस्मि ॥

(मुनिसुव्रतकाव्य)

सुखैव तेषां भवभीरवो ये गृह्णाध्रमस्याभ्यरितात्मधर्मा ।

त पद शेषाभमिणां सहाया धन्या स्युराशाधरसूरिवर्या ॥

(मध्यकण्ठामरणपञ्चिका)

मिथ्यात्वपंककलुपे मम मानसेऽस्मिन् आशाधरोक्ति कृतकप्रसरं प्रसजे ।

उल्लासितेन शरदा पुद्गदेवमकथा तच्चपुद्गमज्जलदेन समुज्जजग्मे ॥

(पुरुदेवचम्पू)

पण्डित माधुराम प्रेमी जी ने अपनी विद्वद्वलमाला भाग १ म में लिखा है कि पण्डित प्रवर आशाधर जी का जन्म वि० सन्वत् १२३५ के लगभग हुआ होगा। इनकी जन्मभूमि सपावल्ल (सवालाल) देशका मण्डलकर (मंडलगढ़) थी। उस समय उक्त मंडलगढ़

जमेर के चौहानों के अधीन रहा। ई० सन् ११६२ के बाद जब यह गढ़ मुसल-
मन बादशाहों के हाथ में आया तब मुसलमानों के उपद्रव से बचने के लिये आशाधर
जी को अपनी जन्मभूमि का परित्याग कर सपरिवार धारा नगरी में आकर रहना
पड़ा। उन दिनों धारा नगरी में राजा विन्ध्यवर्म का शासन चलता था। यह बड़ा
विद्याप्रेमी था। इसका मन्त्री बिलहण था। यह आशाधरजी को बहुत मानता था।
बल्कि आशाधरजी को बिलहण 'कविराज' कह कर पुकारता था। अन्यान्य विद्वान् भी
आशाधर जी की कविता का बहुत आदर करते थे। आशाधर जी के मदनेपाध्याय
आदि कई प्रख्यात पण्डित शिष्य थे। बल्कि इस मदनेपाध्याय को महाराज अर्जुनदेव
का राजगुरु एवं महाकवि होने का भी सम्मान प्राप्त था। उक्त अर्जुनदेव राजा
विन्ध्यवर्म का पुत्र था। आशाधरजी स्वयं गृहस्थ थे, फिर भी बड़े बड़े मुनिगण इनकी
शिष्यता स्वीकार कर इनसे पढ़ते थे। पता चलता है कि आशाधरजी वृद्धावस्था में
नलकच्छपुर (नालन्दा) में जाकर रहने लग गये थे। इनकी कई अमूल्य कृतियाँ उपलब्ध
हैं। इनमें "भव्यकुमुद चन्द्रिका" नामक अन्तर्गत धर्माश्रित की टीका ही सब से पीछे की है।
यह टीका वि० सं० १३००* में समाप्त हुई थी। अतः प्रस्तुत भव्यकण्ठाभरणपञ्चिका के
रचयिता आशाधरजी के शिष्य इस अर्हदासजी का समय भी लग-भग यही विक्रम की
१३ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा १४ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होना चाहिये।

* बाबू हीरालालजी का मत है कि आशाधरजी ने वि० सं० १२७५ के लगभग कुछ काल
धारा प्रान्त में निवास और ग्रन्थ-रचना भी की होगी। देखें "मध्यप्रान्त-मध्य-भारत व राजपूताना
के प्राचीन जैन स्मारक" की भूमिका पृ० १७।



(१३) ग्रन्थ न० २१६
ख

भयानन्द-शास्त्र

कर्ता—धीमत्पाण्ड्य क्षमापति

विषय वेदाय्य

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—६॥॥ इन्च

चौडाई—६ इन्च

पत्रसंख्या १२

प्रारम्भिक भाग—

श्रिय क्रियायस्य महामिषेके निरस्तगाम्भीर्यगुण पयोधि ।
 स्वकीयरत्नप्रकटैः प्रदीपशोभां विद्यते स जिनश्चिरं व ॥१॥
 नेत्राञ्चैरभ्युषैः क्लृप्तधनयनजलेर्विभ्यतीर्थाभ्युपरी
 भावे शुद्धे सुगधैनिजविमललसज्जानदीपे प्रदीपे ।
 वाग्जालैरक्षतार्थं सह विद्युविशद्वैरक्षतेर्भक्तिरूपे-
 धूषैरिन्द्रार्च्यमानं जिनधरणासरोज्जातगुम्भं भजामि ॥२॥
 शीलाकरान् दिव्यगुणामिरामान् विशुद्धशास्त्राग्धिसुधांशुविम्बान् ।
 मक्त्या महत्या प्रणमामि नित्यं समन्तमद्रादिमुनीन्द्रमुख्यान् ॥३॥
 नरेन्द्रमुख्यैरिह पूज्यपाद शीलैः समस्तैश्च समन्तमद्रम् ।
 गुणैरनिन्द्यैरकलङ्कमीढे धीवर्द्धमानं श्रुतपद्मभानुम् ॥४॥
 वद्म मानाक्यया नित्य धर्षितोऽपि महीतले ।
 असौ मुनिपतिश्चित्र गतमानकपायसक् ॥५॥
 भान्विद्विताशेषचरितपूज्यधीनागवन्द्यप्रतिपुंगवस्य ।
 निर्वाणमेतद् भुवि सद्बुधानां निर्वाणवृत्ति प्रकटीकरोति ॥६॥
 वाग्जालं सुधया गुणान्वितलसद्गुणाम्भीर्यमम्भोधिनः
 शक्तिः कैरवकान्तकान्तवचिर्मर्त्यै सुवर्णाद्रिणा ।
 शीलं स्वामिमिरन्तरंगसरसत्वं तुल्यवृत्तिं नमो
 आह्वय्या सह सन्दर्शात भवतः धीदेवचन्द्रप्रभो ॥७॥
 गुणाहितोजित् (?) सुमनोऽन्यतोऽपि सुवर्णकर्णामरणाञ्छितोऽपि ।
 धीपूज्यपादप्रतिपो पिबित्वं विमुक्तभोगो गतभूषणाङ्ग ॥८॥

निरस्तमोहैः सुजनैर्नतीहैः प्रशान्तभावैः प्रतिभावलोकैः ।
 अस्मिन्प्रबन्धे सततं प्रमोदात्प्रचिन्तनीयानि पदानि सन्ति ॥६॥
 यथा चस्तुस्थितिलोके तथा वक्ष्याम्यह निजम् ।
 रागद्वेषद्वयं हित्वा सदा शृण्वन्तु धीधनाः ॥१०॥
 हिंसासक्तं मृधानन्दैर्दुर्वृधैश्च बलैरपि ।
 अभाव्यमेव मत्काव्य भाव्य भव्यजनैः सदा ॥११॥
 स्वभावसिद्धमभ्यस्य लोकस्य हि गुणागुणम् ।
 अवाच्यमप्यह वक्ष्ये भव्यबोधाय भावतः ॥१२॥
 शुचिश्चित्तभवनानन्दनामैकपुत्र्यं मद्गिरिशतक्रोदिं प्रन्थमानन्दकंदं ।
 पुलकवनवसन्तं पाण्ड्यभूनाथजातं सहजसुखसुधाग्निं वीक्ष्य नन्दन्तु सन्तः ॥१३॥
 निजकरटनिकटकटुरददधमधुकरनिनददत्तरुणांस्य ।
 मिथ्यागजस्य विद्वलनविधिचतुरपदो मदीयकाव्यहरिः ॥१४॥
 त्यक्त्वा जिनैन्द्रवचनामृतमात्मसार कुर्वन्ति कुत्सितमृषावचनेषु रागम् ।
 ये ते स्वमातृकुचदुग्धरस विहाय मुग्धा पिवन्ति विषतोयमतिप्रमोहात् ॥१५॥

× × ×

गध्यभाग (पृष्ठ ६ श्लोक ६१—६३)

मृषापदं घोरभवाग्धिकं वुं कृशोदरीकण्ठमिमं हि लोके ।
 मनोजपूगीगलमित्यवेक्ष्य मनोविकार मनुजाः श्रयन्ते ॥६२॥
 हृद्रोलाङ्गूललीलाचलमधमधुलिद् पद्मकोशं भवाग्जि-
 न्यम्भं क्रीडद्रथांग घनपिशितमय यत्कुचं कामिनीनाम् ।
 कुम्भ दम्भोलिपाणिद्विरदपरिलसत्कुम्भमित्येव मुक्तवा
 चित्रं तत्रैव सक्तं सकल जगदिदं धिङ् नृणां चेष्टितानि ॥६३॥

× × ×

अन्तिम मगलाचरणं एव प्रशस्तिः—

सम्यक्त वाङ्मयसंभवः प्रविलसद्द्वैराग्यमूलान्वितः
 शुद्धानन्दविलोलपल्लवकुलः कल्याणशाखान्वितः ।
 ज्ञानोद्यत्कुसुमान्वितः क्षमफलाकीर्णो विचारास्पदम्
 जीयादाहृतपारिजातविदयी संसारसन्तापहः ॥

नानानभ्यरसास्पदं बुधजनानन्वाभुःपुरप्रदं
 मभ्याह्लादसमपठं कनिपुणो ग्रन्थं प्रबोधाकरः ।
 युक्त्या धीजिनदत्तमूमिपमहावंशाभिपूर्णेन्दुना
 पाण्ड्यभ्मापतिना विशुद्धमतिना सौख्याभयो निर्मित ॥
 आचन्द्रार्कं जगत्सस्मिन् धर्माधमसमन्विते ।
 मभ्यानन्वाभिधो ग्रन्थो मभ्यानन्वाय वर्धताम् ॥
 नमः धीशान्तिनाथाय कर्मारण्यदद्यात्प्रये ।
 धर्मरामवसन्ताय बोधाभ्योधिषुधांशवे ॥

इति धीमत्पाण्ड्यभूपतिविरचितो मभ्यानन्दः समाप्तः ।

इस मभ्यानन्द ग्रन्थ के कत्ता पाण्ड्य भ्मापति के परिचय के साथ साथ इनका कुछ
 वंशपरिचय भी दे देना मैं समुचित समझता हूँ । प्राचीन समय में उत्तर मधुरा (मथुरा)
 में उग्रधशीय पीरमारयाण आदि अनेक शासक हुए हैं । पीछे इस वंश का राजा साकार
 हुआ जो किसी समय एक भील लड़की पर आसक्त होकर अपनी धर्मपत्नी महिषी धीयला
 देवी एवं पुत्ररत्न जिनदत्त राय से उदासीन हो गया । बल्कि एक दिन उक्त भील की
 लड़की पशिनी के दुराग्रह से घह अपने प्रिय पुत्र जिनदत्त राय तक को भी मरवा
 डालने के लिये उतारू हो गया । पर भील कन्या के इस पदह्यन्त्र का अपने कुलगुरु
 के द्वारा रानी धीयला को पता लग गया । तुरन्त ही उक्त रानी धीयला ने कुलदेवी पप्पा
 वती की प्रारम्भ के साथ अपने प्रियपुत्र जिनदत्त राय को सुरक्षा के ख्याल से बहा से
 कहीं अन्यत्र भेज दिया । जिनदत्त राय मथुरा से चलकर कुछ दिनों के बाद वर्तमान मैसूर
 राज्यान्तर्गत पोम्बुध में पहुँच एवं वहीं राज्य स्थापित कर शासन करने लगे । इसके बाद
 इन्होंने दक्षिण मधुरा (मथुरा) क मसिद्ध पाण्ड्यवंशी राजा धीर पाण्ड्य की पुत्री पशिनी
 और मनोराधा के साथ विवाह किया । इस मधुरा पाण्ड्यवंश का विस्तृत वर्णन जो हिन्दी
 विन्ध्यकोष के १३ वें भाग में छपा है उसी में इस वंश के राजाओं के नाम की एक छम्बी
 तालिका भी दी गयी है । तालिकान्तर्गत राजाओं के अतिरिक्त इसी वंश की एक शाखा
 वर्तमान दक्षिण कन्नड़ जिला में भी राज्य शासन करती रही । उसकी राजधानी बारकूड
 थी । उस समय यह बारकूड दक्षिण भारत में एक समृद्धिशाली नगरी मानी जाती
 थी । दक्षिण के स्वर्गीय ताताचार्य आदि कई सुप्रसिद्ध विद्वानों ने पाण्ड्यवंश को जैन

बतलाया है। हाँ, इसके सभी शासक तो जैन नहीं माने जा सकते किन्तु दक्षिण कन्नड प्रान्त में इस बंश के जितने राजा हुए हैं वे सब के सब जैन धर्मावलम्बी थे।

कुछ दिनों के बाद राजा जिनदत्त राय को पार्श्वचन्द्र तथा नेमिचन्द्र नामक दो पुत्र हुए। पार्श्वचन्द्र ने अपने शासन-काल में अपने नाम के अन्त में "पांड्यभैरव राज" यह एक नूतन उपनाम जोड़ दिया। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि पूर्व में भैरवी पद्मावती के द्वारा अपने पिता की रक्षा एवं अपनी माता पांड्यवंशीय होने से ही इन्होंने उक्त उपनाम को अपनाया। पीछे इस वंश के सभी राजा इस "पांड्यभैरव" उपनाम को बड़े आदर के साथ अपने नाम के आगे जोड़ने लगे। उक्त जिनदत्त राय के वंश के राजा पीछे दक्षिण कन्नड जिला में भी शासन करने लगे। इन राजाओं की राजधानी वर्तमान कार्कल में थी। कार्कल में शासन करने वाले इस वंश के राजाओं की नामावली इस प्रकार है :—

(१) पांड्य देवरस अथवा पांड्य चक्रवर्ती, (२) लोकनाथ देवरस (३) वीरपांड्य देवरस (४) रामनाथ अरस (५) भैरवस ओडेय (६) वीर पांड्य भैरवस ओडेय (७) अभिनव पांड्य देव अथवा पांड्य चक्रवर्ती (८) हिरिय भैरव देव ओडेय (९) इम्मडि भैरव राय (१०) पाण्ड्यप्प ओडेय (११) इम्मडि भैरव राय (१२) रामनाथ (१३) वीर पाण्ड्य^१।

उक्त तालिका में प्रतिपादित शासकों में से ही मुझे कविवर पाण्ड्य क्षमापति को खोजना है। पर खेद है कि इन्होंने अपनी रचना में कहीं भी अपना समय न देकर इस कार्य को कुछ गहन बना दिया है। खैर, इन्होंने इस भव्यानन्द ग्रन्थ के प्रारम्भिक ६४ पर्व ७म श्लोको में क्रमशः नागचन्द्रवती तथा देवचन्द्र इन दोनों का सादर स्मरण किया है। अब मुझे इन्होंने दोनों पाण्ड्य क्षमापति के स्मरणीय व्यक्तियों के समय के आधार पर इनका समय निर्धारित करना है। उल्लिखित नागचन्द्रजी वही नागचन्द्र हैं जिन्होंने धनंजयकृत विषापहार स्तोत्र की एक सुस्तुत टीका लिखी है। वह टीका "भवन" में मौजूद है और इसको प्रशस्ति यथास्थान "भास्कर" की किसी किरण में दी जायगी। इस टीका से पता चलता है कि मूलसंघान्तर्गत देशोगण, पुस्तक गच्छ के ललितकीर्त्तिजी के आप भ्रमणिप्य थे। साथ ही साथ नागचन्द्रजी ने अपनी टीका में यह साफ साफ लिख दिया है कि इनके गुरु ललितकीर्त्तिजी पनसोगे (मैसूर) के निवासी एवं तौळव देश के प्रवासी थे। दक्षिण कन्नड प्रान्त की बोल-चाल को भाषा 'तुळु' है इसी से यह तौळव देश कहलाता है। यही ललितकीर्त्तिजी तौळव देशान्तर्गत कार्कल के राज्यशासक भैरव

राजवंश के मनोनीत राजगुरु थे। बल्कि इन्हीं के समूह में शकसम्यत् १३५३ वि० सं० १४८८ में वीर पाण्ड्य के द्वारा काकल में बाहुबली स्वामी की विशाल प्रतिमा की प्रतिष्ठा की गयी थी। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि नागचन्द्रजी विक्रमीय १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और १५ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के विद्वान् हैं। सुदूर ५० जुगल किशोरजी ने "जैन हितोथी" भाग १२, अङ्क २३ में इनका जो समय विक्रमीय १६ वीं शताब्दी निर्धारित किया है वह मुझे ठीक नहीं जचता है। क्योंकि आपके इस समय-निर्णय से तो गुरु ललितकीर्त्ति और शिष्य नागचन्द्र में कम से कम सौ सवा सौ वर्षों का एक विशाल अन्तर पढ जाता है। साथ ही साथ ५० जुगल किशोरजीने नागचन्द्र के मुनित्व पर जो सन्देह प्रकट किया है वह भी प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रारंभिक ईठे श्लोक से दूर हो जाना चाहिये। क्योंकि इस पद्य द्वारा इन्हें 'व्रतिपुगव' आदि विशेषणों से स्मरण किया है।

श्रव देवचन्द्रजी को लीजिये। यह देवचन्द्र इन्हीं नागचन्द्र के अन्यतम गुरु एवं उल्लिखित ललितकीर्त्तिजी के शिष्य हैं। नागचन्द्रजी ने अपनी विषापहार की टीका में इन्हें भी अपना गुरु स्पष्टतया लिखा है। बल्कि उल्लिखित ललितकीर्त्तिजी के शिष्य जिनयक्षफलोदय के कत्ता मुनि कल्याणकीर्त्ति ने अपने ग्रन्थ के प्रारंभ में स्वगुरु की प्रशंसा करते हुए देवचन्द्रमुनीन्द्राचार्यो दयापाल प्रसन्नधी' इस पद्यांश में उक्त देवचन्द्र का भी उल्लेख कर दिया है। इनका यह जिनयक्षफलोदय ग्रन्थ शक १३५० में समाप्त हुआ था।* अथर्ववेदशाला के शक सम्वत् १३२० के न० १०५ (२५४) वाले शिलालेख में प्रतिपादित नागचन्द्र और देवचन्द्र हमारे पूर्वोक्त नागचन्द्र—देवचन्द्र से प्रायः अभिन्न होंगे। क्योंकि दोनों के भ्रमणगच्छा एक हैं और साथ ही साथ ३५ साल के समय का यह अन्तर भी कोई असम्भवपरक महान् अन्तर नहीं है।

अस्तु उल्लिखित प्रमाणों के आधार में मैं यह कह सकता हूँ कि ललितकीर्त्ति देवचन्द्र कल्याणकीर्त्ति नागचन्द्र और पाण्ड्य क्षमापति ये सब के सब लगभग सम सामयिक विद्वान् थे। समझ है कि ये लोग एक साथ काकल में रहे हों। साथ ही साथ यह भी सिद्ध हो जाता है कि देवचन्द्र नागचन्द्र और कल्याणकीर्त्ति ये तीनों ललितकीर्त्ति के शिष्य थे। इससे भव्यानन्द शाला के कत्ता पाण्ड्य क्षमापति का समय भी एक प्रकार से हल हो जाता

* प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ १८ देखें।

+ देशोगणे चतुर्थेऽन्वितपुस्तकाब्दगणेशु लोचरबन्धिवति प्रभूता।

सप्तसप्तमग-देवोदय रविजिन-सौव-प्रभा-वाङ्मन्त्रा—

(जैनशिलालेख-संग्रह पृ १)

है। मेरा अनुमान है कि अपने ग्रन्थ (भव्यानन्दशास्त्र) में नागचन्द्र-देवचन्द्र को स्मरण करने वाले यह पाण्ड्य क्षमापति ही बाहुबलीमूर्ति के प्रतिष्ठापक वीर पाण्ड्य भेररस (शक १३५३ सन् १४३१—३२) अथवा उनके उत्तराधिकारी अभिनव पाण्ड्यदेव या पाण्ड्यचक्रवर्ती (शक १३७६ सन् १४५७) हों।

मैंने पाण्ड्य क्षमापति का वंश परिचय जो ऊपर दिया है वह भव्यानन्द के अन्त के “नानानव्यरसास्पदं बुधजनानन्दाश्रुपुरप्रदो भव्याह्लादसमर्पशौकनिपुणो ग्रन्थ प्रवोधाकर । युक्त्या श्रीजिनदत्तभूमिपमहावशाब्धिपूर्णन्दुना पाण्ड्यक्षमापतिना विशुद्धमतिना सौख्या-श्रेयो निर्मित ॥ इस श्लोक के आधार पर। आशा है कि यह वंश-मन्तव्य प्रापजनक नहीं होगा।

(१४) ग्रन्थ नं० $\frac{२१७}{६}$

बीजकोश

कर्त्ता—

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६॥॥ इञ्च

चौड़ाई ६ इञ्च

प्रारम्भिक भाग—

तेजो भक्तिर्विनय' प्रणव ब्रह्मप्रदीपवामाश्च ।
 वेदोब्जदहनध्रुवमादि (?) ओमिति ख्यातम् ॥
 मायातत्त्व शक्तिर्लेशो ह्ये त्रिमूर्त्तिबीजेशौ ।
 कूटाक्षरं क्षकारं मलवरयूं पिण्डमष्टमूर्त्तिञ्च ॥
 बाणा पञ्च द्रां द्रीं क्लीं ह्रीं सु इति ठवर्णमखिलेन्दुः ।
 भूर्वीं र्वीं ह स सुराभिमुद्राक्षरमथवाग्भश्चै (?) च ॥
 क्षिप ओं स्वाहा बीजाः क्षितिजलदहनानीलाम्बरं क्रमशः ।
 खगपतिपञ्चाक्षरमित्यां वा शतत्कशां च स्यात् ॥

×

×

×

मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ ३ पक्ष ७)

अथ मन्त्र-व्याकरणम्

अरहता असरीरा आहरिया उब-मया मुणियो ।

पढमकखर शिप्पण्यो घोकारो पचपरमेही ॥

अकारादित्तकारपर्यन्तमेकाक्षरलक्षणमुद्राहरिभ्याम् ।

चूत्तासन गजवाहनं हेमवर्णं कुकुमगन्धं लवणस्वादं जम्बूद्वीपविस्तीर्णं चतुर्मुखं अष्टबाहुं
 कृष्णलोचनं जटामुकुटधारिणं सितवस्त्रं मौक्तिकामण्यं अतीवबलगभीरं पुल्लिङ्गं अकारस्य
 लक्षणं । पद्मासनं गजव्यालवाहनं सितवर्णं शंखचक्रवद्भाङ्गुशधारिणं द्विमुखमष्टहस्तं
 अहिभूषणं शोभणादिमहाद्रुतिं त्रिशतसहस्रयोजनविस्तीर्णं स्त्रीलिङ्गं आकारस्य महा-
 रम्यम् । कूर्मवाहनं चतुरङ्गाननं हेमवर्णं वज्रायुधं एकयोजनविस्तीर्णं द्विगुणायाममुत्सेध
 कषायस्वादं वज्रवेदूर्ध्ववर्णालङ्कृतं मद्स्वरं नपुंसकं क्षत्रियमिकारस्य माहात्म्यम् ।

×

×

×

अन्तिम भाग—

पुटपल्लवदीपाक्षं धर्मप्रथनरोधगां ।

वश्ये द्वेषे च शान्तौ च स्तम्भाकृष्टौ च पीडने ॥

मन्त्रमभ्यगतं नाम पुटमन्त्रे च पल्लवम् ।

प्रारंभे क्षीपनं विद्धि ह्युत्तरान्तं विद्वर्मकम् ।

एकाक्षरान्तरे नाम प्रथमं रोधनं पुनः ॥

आद्यन्तसयुतं नाम तेष्विष्टं सस्यगाचरेत् ।

वश्याकषण्यस्तंस्तम्भपीडाद्वेषापसारकम् ॥

शान्तिपुष्टिं क्रमात्सोमथमैन्द्रं शानवह्निषु ।

मरुद्ध्यप्रचनैश्चूत्यामुमुखं स्थीयते बुधैः ॥

विकृपालाघनमिहानं कार्यसिद्धिश्च निष्कला ।

पूर्वाह्णे वश्यकर्माणि मध्याह्णे प्रेमनाशनम् ॥

अपराह्णेषसात् च योडा सभ्यगता भवेत् ।

शान्तिकर्मार्घरागे च प्रभाते पौष्टिकं तथा ॥

वश्यं मुक्तधान्यकर्माणि सव्यहस्तेन योजयेत् ।

अकुशाम्बुजसद्वोधं प्रवालं पविशंस्त्रका ॥

मुद्राकृष्टिवशे शान्तिविद्वेषे रोधपीडने ।

वृण्डस्वस्तिकर्पकजकुवकुन्दकुलिशाख्यभद्रपीठानि ।
 उदयार्करागगगधरधूमहरिडा' सिता घर्णा' ॥
 अत्रकं अस्यते कुडं वश्याकर्पणपीडने ।
 शान्तिपुष्टौ चतुष्कोणं वृत्त द्वे पापसारके ॥
 स्फटिकं च प्रवाल च मुक्ता स्वर्णं च बीजकम् ।
 शान्तिपुष्टौ घशाकृष्टौ विद्वेषोच्चाटरोधने ॥
 शान्तिपुष्टौ तु रुद्राक्षै' पद्माक्षै' स्फटिकैर्जपेत् ।
 तद्द्वर्णयुतसप्तसुप्तैर्जप स्यात्सर्वकर्मणि ॥
 मोक्षशान्तिवशाकर्पे' स्तम्भद्वेषेऽपसारके ।
 अगुप्तमभ्यमानामितर्जनीभिर्मणि चरेत् ॥
 अक्षुल्लानि समुहं व्यं द्वात्रिंशत्त्रिंशद्विचक्ष्यते ।
 अष्टावेवाभिचारेषु नवशान्तिकपाष्टिके ॥
 वषट् वश्ये फडुच्चाटि हु द्वेषे पोष्टिके स्वधा ।
 वीषडाकर्पणै' स्वाहा शान्तिके धेऽथ पीडने ॥
 शान्तिपुष्ट्यो सितं पुण्य वश्याकृष्ट्यो च रक्तकम् ।
 अभिचारे तु धूमं स्यात् स्तम्भने पीतमाग्निगेत् ॥
 सर्वधान्यकृतं लंजैस्तद्रजोभिर्गुडान्विते ।
 चन्दनागुदरुपूर्' रगुगुलाक्षघृतादिभि ॥
 पायसान्नाक्षतैर्मिश्रै' ह्यवृत्तोद्भवादिभि ।
 समिद्धिश्च चरेद्धोम प्रतिश्रुशान्तिपोष्टिके ।

॥ इति पट्टकर्मविधि समाप्त ॥

यह एक मन्त्र-शास्त्रान्तर्गत अल्पकाय ग्रन्थ है। इसका नाम "बीजकोष" है। देवतार्थों के मूल मन्त्र को बीज मन्त्र कहने हैं। यह इसी का संग्रह—कोश है। तन्त्र-शास्त्र में प्रत्येक देवता के भिन्न भिन्न बीजमन्त्र कहे गये हैं।

इसमें सर्व-प्रथम बीजाक्षर सामर्थ्य प्रकरण दिया गया है। इस प्रकरण में भिन्न भिन्न बीजाक्षरों की सामर्थ्य बतलायी है। जैसे ह्रीं आं ह्रीं स्मृतिनाशनम्, ह्रीं मां ह्रीं आकर्षणम्, ह्रीं ईं ह्रीं पुष्टिकरणम्, ह्रीं ईं ह्रीं आकर्षणम् आदि। दूसरा प्रकरण है बीजकोष। इसमें अन्यान्य बीजाक्षरों का उल्लेख मिलता है। जैसे—

त्र्योकारं पृथिवीबीजं पकारं प्रापदुच्यते ।
 आकारं अप्रिबीजं वा प्रणव सर्ववर्षने ॥

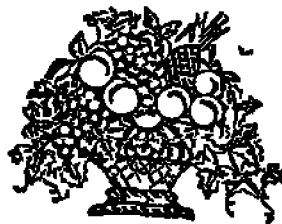
स्वाकार मास्त ह्ये हकारं व्योमनिम्नयम् ।

टकार वह्निबीजं घ कौं गजवशाङ्कुशे ॥

तीसरा प्रकरण मन्त्र व्याकरण है। इस प्रकरण में अकारादि से लेकर सकार-पर्यन्त प्रत्येक बीजाक्षर का लक्षण बतलाया गया है। बल्कि इसी प्रकरण का आरम्भिक कुछ अंश अन्तिम भाग के पहले मध्य भाग शीर्षक में दे दिया गया है। इसके आगे अक्षरों के वर्ण लिङ्ग षष्ठ्य आकर्षण आदि कार्यभेद तथा पारस्परिक बीजाक्षरों की मितता शत्रुता आदि का उल्लेख किया गया है। अन्तिम मन्त्रपरीक्षा प्रकरण में मात-फल नक्षत्र-फल, राशिफल पञ्चमूल-फल आदि की चर्चा कर कौन कौन बीजाक्षर किन किन कार्यों में व्यवहरणीय है यह उनको क्या विधि है इत्यादि बातों पर संक्षेप में विचार किया गया है। साथ ही इसमें यह भी बतलाया है कि शुद्ध-मन्त्रोपदेश देने के पहले शिष्य की भले प्रकार से जाँच कर ले। अन्त में उद्यानादि प्रत्येक कर्म की विशा काल मुद्रा आसन, हवनकुण्ड माला समिध् (लकड़ी) आदि आवश्यक बातों पर भी साधारण प्रकाश डाला गया है।

हिन्दू मन्त्रशास्त्र में भी मूल बीजाक्षरों पर काफी प्रकाश पडा है। जैसे—अम्नपूर्णा बीज शूलिनी बीज हयग्रीव बीज, नरहरि-बीज धीविद्या-बीज श्मशानकालिका-बीज धारुडालिनी बीज कर्णपिशाची बीज सूपिकाविषहर-बीज सुखप्रसव बीज निगडबन्धन मोक्षय-बीज आदि ।

अब रही बात इसके रचयिता के विषय में। किन्तु इस विषय के साधन के अत्यन्ताभाव से इस बीज कोश के कौन रचयिता है यह नहीं कहा जा सकता ।



(१५) ग्रन्थ नं० $\frac{२२२}{ख}$

प्रतिष्ठा-कल्पटिप्पणम् (जिनसंहिता)

कर्त्ता—कुमुदचन्द्र

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इञ्च

चौडाई ५॥ इञ्च

पत्रसख्या ३६

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमाघनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्त्तितनूभव'
 कुमुदेन्दुरह वच्मि प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणम् ॥१॥
 विज्ञान विमलं यस्य भासते विश्वगोचरम् ।
 नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुरेन्द्राभ्यर्चिताङ्घ्रये ॥ २ ॥
 प्रपञ्चयन्तु नः प्रज्ञां पञ्चापि परमेष्ठिनः ।
 यद्वचोऽमृतसेकेन शीतीभूतमिदं जगत् ॥ ३ ॥
 एव जिनगुणस्तोत्रकृतमङ्गलसक्तियः ।
 संप्रहीष्यामि भव्येभ्यो हिताय जिनसहिताम् ॥ ४ ॥
 शास्त्रावतारसम्बन्ध' प्रथमं प्रतिपाद्यते ।
 श्रेयोऽर्थिनः समाधाय चेत शृणुत धीधनाः ॥ ५ ॥
 इत्यनुश्रूयते वीरश्वरमस्तीर्थनायकः ।
 विपुलाद्रौ सभां दिव्यामध्युवास कदाचन ॥ ६ ॥
 तत्रासीन तमभ्येत्य वन्दित्वा मगधेश्वर' ।
 उपेत्य गणभृज्ज्येष्ठमप्राज्ञीजिनसहिताम् ॥ ७ ॥
 चराचरजगद्वन्द्युस्ततस्ता जिनसंहिताम् ।
 भगवान्गौतम-स्वामी मागधं प्रत्यब्रुवुधत् ॥ ८ ॥
 ततः प्रभृत्यविच्छिन्नसर्गपर्वक्रमागता ।
 मयाधुना यथोक्तेन संहिता संप्रकाष्यते ॥ ९ ॥

मागधप्रभमुद्दिम्य गौतम' प्रत्यवोचत ।
 इतीदमनुसंधाय प्रबन्धोऽयं निबन्धते ॥ १० ॥
 संगत हितमैतस्यां भव्यानामिति संहिता ।
 जिनसम्बन्धिनी सेष नाज्ञा स्याज्जिनसंहिता ॥ ११ ॥
 हितार्थिनो ये जिनसंहितामिमा पठन्तु ते ब्रह्मवत सहादरम् ।
 प्रकाशिता विश्वपदाथदर्शिनि प्रमाणाभूतेषु धर्मा कवीश्वरै ॥ १२ ॥
 पूज्य पूजाहमहन्तं प्राप्स्यपायादिसम्पदम् ।
 प्रणिपत्य प्रबन्ध्यामि पूजासार समुच्चयम् ॥ १३ ॥
 पू यो जिनपति' पूजा पुण्यहेतुर्जिनार्चना ।
 फलं स्यामुदया मुक्तिं भव्यात्मा पूजक स्मृत' ॥ १४ ॥

× × × ×

मध्य भाग (परपष्ठ १४ पक्ति ३)

भौं शक्रबह्वियमनैः त्रिवाधिवायुयक्षेशशेषशशिसंज्ञकलोकपाला ।
 पूर्वादिक्लालु धिमवेन दिशासु वेद्यास्तिस्रस्तु लम्बकुसुमादिक्रयज्ञभागा ॥
 भौं भक्ति सुरधरेरिति पञ्चवर्णमाणिक्यचूर्णरजसा परिकल्पिताया ।
 वेद्या विदिष्टु कुलिशान् विलिखेत् सुरेन्द्रो रुद्रश्रिया परिगतो धरत्वज्जम्बू ॥

अथैव वेदिकाविधानं परिसमाप्य तत्तन्मालामन्त्रै पञ्चोपचारविधिना वेदिकायां
 लिखिततद्वलकेऽग्निवासिदेवान् पञ्चगुणमुख्यानं समाहूय संस्थाप्य सर्वाग्नीहोत्रस्य संपूज्य
 वेदिकामलङ्कृत्य वेदिकाविधानं कर्त्तव्यम् ।

इति धीमाघनन्दिसुतधीवादि कुमुदचन्द्रपरिहृतदेवविरचिते प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण्ये वेदिका
 विधानम् समाप्तम् ।

× × × × ×

अन्तिम भाग—

इति धीमाघनन्दिसिद्धांतचक्रवर्त्तिसुतचतुर्विधपाण्डित्यचक्रवर्त्तिस्रीवादि कुमुदचन्द्र
 परिहृतदेवविरचिते प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण्ये यन्त्राङ्गविधि' समाप्त ।

इसके रचयिता परिहृतदेश कुमुदचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्त्ती माघनन्दी के पुत्र हैं । या
 बात मङ्गलाचरण के प्रथम श्लोकात्गत ' तनूमव एव प्रशस्तिगत सुत शब्दं
 स्पष्ट प्रतीत होती है । परन्तु परिहृत नाथूपमजो प्रेमी ने माणिक्यचन्द्र दिगम्बर जैन
 ग्रन्थमाला " में प्रकाशित सिद्धान्तसागरादिसंग्रह' के ग्रन्थकर्त्ताओं का परिचय ' में

‘तनूभव’ शब्द का उल्लेख करते हुए भी कोष्ठक में इन कुमुदचन्द्र के माघनन्दी सिद्धान्त-चक्रवर्ती का शिष्य लिखा है—यह बात विचारणीय है। संभव है कि कहीं कहीं * शिष्य के अर्थ में पुत्र शब्द का प्रयोग देख कर प्रेमीजी ने यह लिख दिया हो। किन्तु यहाँ तो “तनूभव” शब्द है, जिसका अर्थ एकान्ततः शरीरजन्मा अर्थात् आत्मज होता है। बल्कि प्रेमीजी ने मद्रास की ओरियन्टल लायब्रेरी में संगृहीत “प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण” या “जिनसंहिता” के प्रारम्भिक भाग और प्रशस्ति को उद्धृत करते हुए जिस कुमुदचन्द्र को उस “परिचय” में माघनन्दी का शिष्य बतलाया है उसी कुमुदचन्द्र को M. Rangacharya M.A., और S. Kuppuswami Shastri M.A., इन दोनों प्रख्यात पुरा-तत्त्ववेत्ताओं ने A Descriptive Catalogue of the Sanskrit manuscripts in the Government Oriental manuscript Library Madras नामक ग्रन्थतालिका में उक्त पुस्तक का उद्धरण कर सम्पादक की हैसियत से 6345 पृष्ठ में साफ साफ पुत्र लिखा है। संभव है कि सिद्धान्त-विपरीत समझ कर कोष्ठक में इन्हें प्रेमीजी ने शिष्य लिख दिया हो। परन्तु मैं यह समझता हूँ कि कुमुदचन्द्र जी ने वंश-परम्परागत पाण्डित्य-परिपाटी को प्रकटित करने के लिये ही गौरवरूप में विद्वद्भ्यं माघनन्दी का अपने को पुत्र होना स्वीकार किया है।

इसका मतलब यह नहीं है कि मैं प्रेमीजी के मन्तव्य का खण्डन कर रहा हूँ। इससे मेरा केवल यही अभिप्राय है कि उल्लिखित ‘तनूभव’ शब्द का अर्थ पुत्र होना चाहिये। बल्कि अन्यान्य विद्वानों ने भी इसका यही अर्थ किया है और माना है। मैं समझता हूँ कि प्रेमीजी भी उक्त शब्दों का अर्थ एकान्ततः शिष्य नहीं मानते। अन्यथा इसे कोष्ठक में रखने की उन्हें जरूरत ही क्या थी? मैं ऊपर यह बात सप्रमाण लिख चुका हूँ कि कहीं कहीं पुत्र, सुत, अपत्य एव सन्तु शब्द का प्रयोग शिष्य अर्थ में भी होता है। अतः इस विषय पर मेरा सर्वथा कदाग्रह नहीं है, पर हाँ विचारणीय अवश्य है।

अस्तु माघनन्दी नाम के कई आचार्य हो गये हैं। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि कुमुदचन्द्र के पिता या गुरु कौन से माघनन्दी हैं। “कर्नाटक कविवरिते” के मतानुसार एक माघनन्दी का समय सन् १२६० (वि० सं० १३१७) है। इन्होंने शास्त्र

* “दे [जी] यात् श्रीधरदेवशिष्यतिलकः श्रीवासुपूज्यो मुनि
त्रैविद्यस्तदपत्यनुत्यादयेन्दुख्यातसैद्धान्तिकः ।

तत्पुत्र कुमुदेन्दुयोगितिलकस्तस्मिन्नुरत्युन्नत

सिद्धान्तार्थवचन्द्रमा सुखपद श्रीमाघनन्दी व्रती ॥”

(शास्त्रसारसमुच्चय की कन्नड़ टीका पृष्ठ ३३१)

सारसमुच्चय की एक कन्नड टीका लिखी है एवं माघनन्दी धावकाचार के कर्ता तथा पदार्थसार के टीकाकार भी आप ही हैं। शास्त्र सारसमुच्चय के मूल रचयिता भी माघ नन्दी ही कहे जाते हैं *। शास्त्र सारसमुच्चय के टीकाकार ने अपनी गुरु परम्परा यों बतलायी है —

x x x x (१) श्रीधरदेव (२) वासुपूज्य (३) उद्दयेन्दु (४) कुमुदेन्दु या कुमुद चन्द्र (५) माघनन्दी। इससे सिद्ध होता है कि इस कन्नड टीकाकार माघनन्दी के गुरु कुमुदचन्द्र हैं। अगर प्रस्तुत प्रतिष्ठाकल्प के कर्ता यही कुमुदचन्द्र टीकाकार माघ नन्दी के गुरु हों तो इनका भी समय लगभग यही होना चाहिये। ध्रुवण पेल्लोळ के शिलालेख न० १२६ (१३४) में भी एक कुमुदचन्द्र और माघनन्दी का उल्लेख मिलता है। इसमें कुमुदचन्द्र का माघनन्दी का गुण लिखा है। इस शिलालेख का समय शक सम्बन्ध १२०५ ई० सन् १२८२ है। शिलालेख-गत कुमुदचन्द्र और माघनन्दी मेरे प्रस्तावित कुमुदचन्द्र और माघनन्दी से अभिन्न मालूम होते हैं। बहिक कन्नड कविवरित के सुयोग्य सम्पादक आर० नरसिंहाचार्य एम ए० भी इहीं कुमुदचन्द्र के शास्त्र-सारसमुच्चय के टीकाकार माघनन्दी का गुरु मानते हैं। उपयुक्त शास्त्र सारसमुच्चय क टीकाकार माघ नन्दी की गुरु परम्परा में कुमुदचन्द्र के पहले इनके पिता या गुरु माघनन्दी का नाम न मिलकर उद्दयेन्दु का नाम हमोघर होता है, अतः इसी कुमुदचन्द्र का टीकाकार माघ नन्दी का गुरु मानने में कुछ खट्कता है। मैं पहले ही कद चुका हूँ कि पता नहीं लगता कि कुमुदचन्द्र के पिता या गुरु कौन से माघनन्दी है। बहिक मेरे मन में यह भी विचार उठ खड़ा होता है कि शास्त्र सारसमुच्चय के मूल रचयिता एवं टीकाकार माघनन्दी एक ही हैं। अर्थात् कुमुदचन्द्र के शिष्य माघनन्दी ही शास्त्र सारसमुच्चय के कर्ता हैं और इहीं की स्वोपन्न कन्नड टीका भी है। फिर भी इसे मैं अभी सिद्धान्त रूप में स्वीकार नहीं करता हूँ। इस विषय पर अभी खोज करने की जरूरत है। प्राश्नार्थ नहीं कि

* श्रीमाघनन्दी योगीन्द्र सिद्धांतान्मोचिचन्द्रमा ।

अधीकरद्विचिचार्य शास्त्रसारसमुच्चयम् ॥

(सिद्धांतसारादि संग्रह)

† नमः कुमुदचन्द्राय विद्याविशदमूर्तये ।

अथय आरुचम्बिद्रमा मध्वकुमुदानन्दनदिने ॥१॥

नमो नम्रजनार्णदस्वम्दिने माघनन्दिने ।

जगत्प्रसिद्धसिद्धान्तवेदिने क्षिप्रमोदिने ॥४॥

‡ भास्कर भाग २ किरण ४ पृष्ठ १२२ देखें ।

स्वगुरु कुमुदचन्द्र के ममान शिष्य इस माघनन्दी ने स्व-रचित शास्त्र-सारसमुच्चय पर स्वयं कन्नड वृत्ति लिखी हो।

“कर्नाटक कविचरिते” के सुध लेखक थार० नरसिंहाचार्य एम० ए० उक्त ग्रंथ के भाग २ पृष्ठ ११ में पर कुमुदचन्द्र का परिचय इस प्रकार देते हैं.—“इन्होंने जिनसहिता नामक प्रतिष्ठा कल्प पर कथड व्याख्यान लिखा है। उसके प्रारम्भ में यह श्लोक है” यों शिष्य कर प्रस्तुत प्रतिष्ठाकल्प में उद्धृत उल्लिखित प्रारम्भिक श्लोक एवं प्रशस्ति का ही प्रमाण रूप में आप प्रस्तुत करते हैं। यहाँ पर भी आपने मेरे पूर्व कथनानुसार कुमुदचन्द्र का माघनन्दी मिद्धान्त-चक्रवर्ती का शिष्य न लिख कर पुत्र ही लिखा है। बल्कि प्रेमी जी ने भी इसका अनुवाद करते हुए “अनेकान्त” वर्ष १ पृष्ठ ४६० में इन्हें पुत्र ही लिख कर मेरे मन्तव्य का और प्रशस्त कर दिया है। थार० नरसिंहाचार्य जिस वादिकुमुदचन्द्र का जिनसहिता का कन्नड व्याख्याता पतलाने हैं वही कुमुदचन्द्र मेरी समझ में उसके मूल कला भी हैं। क्योंकि टीकाकार के परिचय में आप ने जो प्रारम्भिक श्लोक और प्रशस्ति उद्धृत किये हैं वे उन्हीं के मूलग्रंथ के हैं। अतः जिनसहिता के मूलकर्त्ता तथा कन्नड व्याख्याता पर ही कुमुदचन्द्र कहने में मुझे कोई द्विचकिचाहट नहीं मालूम पड़ती। ‘कविचरिते’ के स्वपाठक आगे लिखते हैं कि “देवचन्द्र च ‘रामकथावतार’ (ई० सन् १७१७) में मालूम होता है कि कुमुदचन्द्र ने पर रामायण भी लिखी है। इसका समय लगभग ई० ११०० होना चाहिये।” यहाँ विचारणीय बात यह उपस्थित होती है कि आप ही ने लेखानुसार शान्तर सार-समुच्चय के टीकाकार माघनन्दी के समय (ई० सन् १०६०) से इस वादिकुमुदचन्द्र (ई० सन् ११००) का समय बहुत पीछे पड़ जाता है, जिसे मैंने ऊपर जिनसहिता के मूलकर्त्ता एवं इस माघनन्दी का गुरु बतलाया है। पता नहीं कि आप ने किस प्रमाण के आधार पर उल्लिखित वादिकुमुदचन्द्र का समय ग्यारहवीं शताब्दी बतलाया है। मालूम होता है कि आप की दृष्टि में माघनन्दी के गुरु कुमुदचन्द्र और यह वादिकुमुदचन्द्र भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं।

इस जिनसहिता में निम्नलिखित प्रकरण हैं —

(१) पुत्रपूजकृपाचार्य-पूजाकल्प-प्रतिपादन (२) त्रैवर्णिकाचार-विधि (३) मरुलीकरण विधि (४) राजांगहण-विधि (५) अद्भुतगोपण-विधि (६) विमानशुद्धि (७) होमविधि (८) त्रैविक्रा-विधान (९) अभियंके-मगटप-विधान । मन्त्र की यह प्रति शुद्ध है तथा भाषा शैली परिमार्जित है। किन्तु अन्तिम भाग देखने में जात होता है कि यह ग्रंथ अपूर्ण है।

० मन्त्रों की प्रथ-तानिका से ।

(१६) ग्रन्थ न० २२३
ख

पञ्चनमस्कार-चक्र

कर्ता—

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

सम्पाद—१४ इञ्च

चौडाई—८ इञ्च

पत्रसंख्या ५६

प्रारम्भिक भाग—

येनास्यामवससिष्ण्यामादासुत्पाद्यकेषलम् ।

हृत्को मन्त्रविधिः प्रोक्तस्तस्मै × × × × × ॥

ॐ यमो अरहन्ताणम् । ॐ यमो सिद्धाणाम् । ॐ यमो भाइरियाणम् । ॐ यमो उवञ्जता
याणम् । ॐ यमो लोप सन्वसाह्वयम् ।शान्तिकर्षौष्टिकवशीकरणाकथयामोहनाच्चाटनविद्वे पञ्चरत्नाद्यनेकक्रियासाधनस्य चौरि-
मारिहृतोपसर्गविनाशनस्य सर्वव्याधिविनाशनस्य व्याघ्राहिरिपडाकिनीभूत राक्षसपिशाचादि
भयापहारस्य स शत्रुमदमञ्जनस्य स्वर्गापवर्गसाधनस्य इह लोकेऽभ्युदयावहस्य पञ्च
नमस्कारचक्रस्य विधानं व्याख्यास्याम ।

× × × × × × ×

मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ १५ पक्षि १२)

साधकनामगर्भं चकारमालिख्य बाह्ये ग्लौंकारेण प्रच्छद्य तद्बाह्ये सानुस्वारहकार
हकाराभ्यामावेष्ट्य तत्सर्वं अक्षविद्धं कृत्वा बाह्ये पृथ्वीवलयं छेदय्य ककुमादिभिर्मूर्जे
लिखित्वा सूत्रेण सिक्थकेन वेष्टयित्वा जले प्रतिपेत् । अग्निस्तमनम् ।सम्यग्दृष्टिजनस्य यथा विद्या दातव्या । निम्नास्थानास्तिकनयुक्तानां धर्मद्वेषिणां मिथ्या
दशामपुष्टयमोणाञ्च न दातव्या । कदाचिहृत्ते(१) सति (१) तदा महापातकं प्रयुक्तं भवति ।

एवं पञ्चनमस्कारचक्रं समाप्तमिति ।

यह पञ्चनमस्कार-चक्र मन्त्रशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ है। मन्त्र ग्रन्थों का मूल "विद्यानु
वाद्" नाम का दशमपुष्ट कहा जाता है। जैत्र मंत्र साहित्य में 'नमस्कार-मन्त्रकल्प'

नाम का एक ग्रंथ है और इसके कर्त्ता सिंहनन्दी कहे जाते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में कहीं भी कर्त्ता का उल्लेख नहीं है। इसलिये पता नहीं कि उक्त कल्प ही यह है या इससे भिन्न। इसका निर्णय दोनों ग्रन्थों के मिलाने से हो हो सकेगा। 'कल्प' भवन में नहीं रहने से इसके रचयिता के विषय में इस समय अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में शान्ति, पौष्टिक, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भ एवं मोहनादि मंत्र-शास्त्र सम्बन्धी भिन्न भिन्न अनेक विषयों का प्रतिपादित करने की ग्रन्थकर्त्ता ने प्रतिज्ञा की है। पाँचवें पृष्ठ के पूर्व-पृष्ठ में पूर्वाह्न के वसन्त, मध्याह्न के ग्रीष्म, अपराह्न के प्रातृद्, प्रदोष के शिशिर, अर्धरात्रि के शरद्, प्रत्यूष के हेमन्त लिख कर शरद् में शान्ति, हेमन्त में पौष्टिक, वसन्त में वष्य, फिर हेमन्त और शरद् में आकर्षण, ग्रीष्म में विद्धेपण, प्रातृद् में उच्चाटन एवं शिशिर में मारण-विधान का संकेत किया गया है।

नवम पृष्ठ के पूर्व पृष्ठ में कौन से ग्रह शरीर के किस अङ्गोपाङ्ग में कौन सी बाधा पहुँचाते हैं—इसका यों खूलासा किया है :—

सूर्य शिरोवेदना, चंद्र मुखपीडा, शुक्र पृष्ठ बाधा, भौम उदर-शूल, बुध हृदय-व्यथा, बृहस्पति कटिपीडा, शनि दोनों बगला में दर्द, राहु जङ्घावेदना तथा केतु पीरो में पीडा पहुँचाते हैं। इसी पृष्ठ में यह दिग्दर्शन कराया गया है कि सायंकाल में राहु और शनि की शांति के लिये नेमिनाथ की सूर्य और मङ्गल के शांत्यर्थ वासुपुत्र्य की, केतु की शांति के निमित्त पार्श्वनाथ की, शुक्र तथा चन्द्रमा की शांति के हेतु चांद्रम की एवं गुरु की शांति के हेतु शांतिनाथ तीर्थङ्कर की पूजा करनी चाहिये।

फिर पृष्ठ दस में ग्रहों के दुष्परिणाम यों लिखे गये हैं :—

चंद्र और शुक्र से शिरःपीडा, बुध और बृहस्पति से हृदयशूल, शनि और राहु से उदरवेदना, सूर्य और मंगल से हृदय-क्रम्पन, पुनः चन्द्र और शुक्र से जल से समुत्पन्न मौक्तिक आदि रत्न एवं सुन्दर धान्य आदि द्रव्यों का क्षय, बुध और बृहस्पति से सुवर्ण, रेशम, रत्न और चावल आदि पदार्थों की क्षति, शनि और राहु से नीलादि रत्न, तिल, मूग, उडक, बना एवं केदो आदि अन्न का नाश तथा सूर्य और मंगल से सूर्यकांत, लालमणि, मूगा वगैरह द्रव्यों का क्षय होता है।

अन्यान्य कतिपय मन्त्र-शास्त्रों की तरह प्रस्तुत ग्रंथ में भी कपाल, कफन, कई पशुओं की हड्डियों, रेश्मों, नररक्त, श्मशान की आग आदि अपवित्र वस्तुओं का भी प्रयोग लिखा मिलता है। हाँ इसमें विशेषता सिर्फ यही है कि मारण आदि क्रूर कर्म का विधान नहीं पाया जाता है। चन्त्र-मन्त्र रचना-विधि मन्त्र-साधन विधि, प्रत्येक तीर्थङ्कर के यक्ष-यक्षियों की मन्त्र-सिद्धि भी संक्षेप में इसमें प्रतिपादित की गयी है।

ग्रन्थ में यह स्पष्ट लिखा है कि इस प्रथम-गत मंत्र शास्त्र का मर्म सम्यग्दृष्टि को ही देना चाहिये न कि नास्तिक, धर्महोपी, मिथ्यादृष्टि और अपने धर्म में अविश्वास करने वालों को ।

(१७) ग्रन्थ न०—२२४

कल्याणकारक

कर्ता—उग्रद्विद्याचार्य

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१३। इञ्च

चौड़ाई—८। इञ्च

पत्रसंख्या १५५

प्रारम्भिक भाग—

धीमत्सुपसुखरेन्द्रकिरीटकोटि माणिक्यरश्मिनिकराचितपादपीठ ।
 तीर्थादिपूजितवपुर्धृषमो नभूष साक्षात्कारणज्ञगन्धितयेकवम्बु ॥ १ ॥
 त तीर्थनाथमधिगम्य विगम्य मूर्त्ता सत्प्रातिहार्यविमशादिपरीतमूर्त्तिम् ।
 सप्रभयातिक्रम्योदकतप्रणामा पद्मचक्रुर्लियमखिलं भरतेम्बराघा ॥ २ ॥
 प्राभोगभूमिषु जना जनितातिरागा कल्पद्रुमार्षितसमस्तमहोपभोगा ।
 विष्व सुख समनुभूय मनुष्यभावे स्वर्ग ययु पुनरपीष्टसुख सुपुण्या ॥ ३ ॥
 अन्नोपपाद्चरमौत्तमदेश्वर्गा पुण्याधिकारस्त्वनपवत्य मशायुपस्ते ।
 अन्वे पराधपरमायुष पव लोके तेषां महद्भयमभूद्विह दोषकोपात् ॥ ४ ॥
 देव । स्वमेव शरणं शरणागतानामस्माकमाकुलधियामिह कमभूमौ ।
 शीघ्रादिवाताहिमवृष्टिनिपीडितानां कालकृमात्कदशनाशनतत्पराणाम् ॥ ५ ॥
 नानाविधामयमथादतिदुःखितानामाहारभेपजनिकिमज्जानता न ।
 सारसंस्वरक्षणविधानमिहातुपयां का वा क्रिया कथयतामय लोकनाथ ॥ ६ ॥
 विश्वायदेवमिति विम्वजगद्वितार्थं सूर्प्यां स्थिता गणधरप्रमुखप्रधाना ।
 तस्मिन्महासदसि दिव्यनिनादयुक्ता याव्यो ससार सरसा धरदेवदेवी ॥ ७ ॥
 तन्नादितं पुण्यतन्त्रणामामयानामप्यौषधान्यखिलकालविशेषणञ्च ।
 संक्षेपतं सकलवस्तुवस्तुष्यं स्या सर्वशस्त्वकमिदं कथथाञ्जकार ॥ ८ ॥

दिव्यध्वनिप्रकटितं परमार्थजातं साक्षात्तया गणधरोऽधिजगे समस्तम् ।
 पश्चाद् गणाधिपनिरूपितवाक्प्रपञ्चमिद्यार्थनिर्मलधियो मुनयोऽधिजग्मुः ॥ ६ ॥
 एव जनान्तरनिबन्धनसिद्धमार्गादायातमायतमनाकुलमर्थगाढम् ।
 स्वायम्भुवं सकलमेव सनातनं तत्सान्नात् श्रुत श्रुतधरैः श्रुतकेवलिन्यः ॥ १० ॥
 प्रोद्यज्जिनप्रवचनामृतसागरान्तः प्रोद्यत्तरङ्गनिस्तृताल्पसुशीकरं वा ।
 वक्ष्यामहे सकललोकहितैकधाम कल्याणकारकमिति प्रथितार्थयुक्तम् ॥ ११ ॥
 नवातिवाक्पटुतया न च काञ्च्यदर्पाद्देवान्यशास्त्रमदभजनहेतुना वा ।
 किन्तु स्वकीयतप इत्यवधार्य वर्थमाचार्यमार्गमधिगम्य विधास्यते तत् ॥ १२ ॥
 स्वाध्यायमाहुरपरे तपसां हि मूलमन्ये च वैद्यवरवत्सलताप्रधानम् ।
 तस्मात्तपश्चरणमेव मया प्रयात्नादारभ्यते स्वपरसौख्यविधायि सम्यक् ॥ १३ ॥
 अत्रापि सन्ति बहवः कुटिलस्वभावा दुर्दृष्टयो द्विरसना कुमतिप्रयुक्ताः ।
 त्रिद्रामिलापनिरता परबाधकाश्च घोरोरगैरुपमिता पुरुषाधमास्ते ॥ १४ ॥
 केचित्पुन स्वगृहमान्यगुणा परेषां दुष्यन्त्यशेषविदुषां न हि तत्र दोषः ।
 पापात्मनां प्रकृतिरेव परेष्वस्युपायैशु-यवाक्पुरुषलक्षणलक्षितान्ता ॥ १५ ॥
 केचिद्विचाररहिता प्रथितप्रतापा साक्षात्पिशाचसदृशा प्रचरन्ति लोके ।
 तैः किं यथा प्रकृतमेव मया प्रयोज्यं मात्सर्यमार्थगुणवर्यमितिप्रसिद्धम् ॥ १६ ॥
 पद् विचार्य शिथिलीकृतमत्सरोऽहं शास्त्रं यथाधिकृतमेवमुदाहरिष्ये ।
 सर्वज्ञवक्त्रनिस्तृतं गणदेवलब्ध पश्चात्प्रजापतिपर पर्यावतीर्णम् ॥ १७ ॥
 विद्येति सत्प्रकटकेवललोचनाख्या तस्यां यदेतदुपपन्नमुदारशास्त्रम् ।
 दैद्यं वदन्ति पदशास्त्रविशेषज्ञा पतद्विदन्त्यथ पठन्ति च तेऽपि वैद्याः ॥ १८ ॥
 वेदेऽयमित्यपि च चोद्विचारलाभस्तत्रार्थसूचकवचं खलु धातुभेदात् ।
 आयुश्च तेन सह पूर्वनिबद्धमुद्यच्छास्त्राभिधानमपरं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १९ ॥
 एवं विद्यस्य भुवनैकहिताधिकेद्यद्वैद्यस्य भाजनतया प्रविकल्पिता ये ।
 तानत्र साधुगुणलक्षणसाम्यरूपान् वक्ष्यामहे जिनपतिप्रतिपन्नमार्गान् ॥ २० ॥

x x x x x

मध्यभाग (परपृष्ठ ५६ पक्ति १६ श्लोक १ से)

जिनमनघमनन्तज्ञाननेत्राभिराम त्रिभुवनसुखसम्पन्नमूर्त्तिमत्यादरेण ।
 प्रतिदिनमतिभक्त्यानम्य वक्ष्याम्युदारध्वजगतमुपदंशख्यतशुक्लामिधानम् ॥ १ ॥
 चृपणविधिविद्विप्रोक्तदोषकमेष प्रकटतरचिकित्सामेहनोत्पन्नशोफो ।
 वितरतु विधियुक्तां चोपदशाभिधाने निखिलविषमशोकेष्वेवमेव प्रयोगः ॥ २ ॥

स मयति खलु शोफो द्विप्रकारो नराणामवयवनिमित्तोऽन्यः सधदेहोद्भवश्च ।
 सकलस्तनुगतो वा मध्यदेहोद्भवदेहे श्वयथुरतिस्फुटस्फुटशुष्केतराङ्गः ॥३॥
 श्वयथुरतिविशालो विद्राधिः कुम्भरूपो मुखरहिततया तु प्रथमः सम्प्रदिष्टः ।
 मुखयुतपित्तकाल्यां शोफकालानुरूपरूपहननविशेषैस्साधनेस्साधयेत्तम् ॥४॥
 ज्वरयुतपरिवाहश्चासत्स्थानिसारप्रकटबलविहीनारोचकोद्गारयुक्तः ।
 यमसदनमवाप्तोऽस्याशु शून्याङ्गयष्टियमनुशङ्कन् नूनं हृष्टकामो मनुष्यः ॥५॥

x

x

x

+

अन्तिम भाग —

श्रीविष्णुराजपरमेश्वरमौलिमाला संलालितादिप्रयुगल सकलागमह ।
 आलापनीयगुणमुपेतसम्पुनीन्द्रः धीनन्दिनन्दितगुणगुरुर्जितोऽहम् ॥५१॥
 तस्याह्वया विविधमेपजदानसिद्धये सदैवयत्सलतप परिपूरयार्थम् ।
 शास्त्रं कृतं जिनमतोद्घृतमेतदुद्यत् कल्याणकारकमिति प्रथितं धरायाम् ॥५२॥
 इत्येतदुत्तमनुत्तममुत्तममहं विस्तीर्णमस्तु युतमस्तसमस्तदोगा ।
 प्राग्भाषितं जिनवरैर्युना मुनीन्द्रोप्रादित्यपण्डितमहागुरुमि प्रणीतः ॥५३॥
 सर्वार्थाधिकभागधीयविलसद्भाषाविशेषोऽज्वलत्
 प्राणापायमहागमाद्यवितथ सगुण रुक्षेपत ।
 उप्रादित्यगुणगुणगणैरुद्भासि सौख्यास्पदम्

शास्त्रं सस्कृतभाषया रचितवान् इत्येव भेदस्तयो ॥५४॥

सालंकार सशब्द अरण्यसुखमयप्रार्थितं दशां चिन्नि
 प्राणायुः सत्वधीय प्रकटबलकर प्राणिनां स्वास्थ्यहेतु ।

विष्णुदमूर्तं विचारसममितं कुशला शास्त्रमेतद्यथाबन्
 कल्याणालय जिनेन्द्रैर्विरचितमधिगम्याशु सौख्यं लभते ॥५५॥

अस्याहं द्विसहस्रकैरपि तथा शीतोतरैरृषेः (१)

संचरितैरिहाधिकमहाबृत्तैर्जिनेन्द्रोदितै

प्रोक्तं शास्त्रमिदं प्रमाणमयनिक्षेपैर्विचारार्थं वर ।

स्येयाङ्गीरविचन्द्रतारकमल सौख्यास्पदं प्राणिनाम् ॥५६॥

इति जिनवक्त्रनिर्गतसुशास्त्रमहान्दुनिधेः सकलपदायविस्तृततरंगकुलाकुलतः ।

उभयमभार्यसाधनत उद्वयमासुरतो निवृत्तमिदं हि शीकरनिर्मं जगदेकहितम् ॥५७॥

इत्युप्रादित्याचार्यकृतकल्याणकोत्तरे नानाविधकल्पकल्पनासिद्धये कल्याणिकारः पञ्चमो
 ऽध्यायोऽप्यादितः पञ्चविंशपरिच्छेदः ।

x

x

x

x

x

x

शालाम्भं पूज्यपादप्रकटितमधिकं जल्यतन्द्रं च पात्र-
 स्वामिप्रोकं विपोग्रप्रहशमनविधिं सिद्धसेनैः प्रसिद्धैः ।
 काये या सा चिकित्सा दृशरथगुरुभिर्मघनादैः शिशुनाम्
 वैद्यं वृष्यञ्च दिव्यामृतमपि कथितं सिंहनादैर्मुनीन्द्रैः ॥
 श्रध्याङ्गमप्यखिलमत्र समन्तभद्रैः प्रोकं स्वविस्तरवचोविभवैर्विशेषात् ।
 सत्पेतो निगदितं तद्विहात्मशक्त्या कल्याणकारकमशेषपदार्थयुक्तम् ।
 वेङ्गीशक्तिकलिङ्गदेशजननप्रस्तुत्यसानूत्कट
 प्रोचद्वृत्तलताविताननिरतैः सिद्धैश्च विद्याधरैः ।
 सर्वैर्मान्दरकन्दरोपमगुहाचैत्यालयालङ्कृते
 रभ्ये रामगिराचित्रं विरचितं शास्त्रं हितं प्राणिनाम् ॥#

इस वैद्यक ग्रन्थ कल्याणकारक के रचयिता आचार्य उग्रदित्य जी हैं। इस के प्रशस्तिसंग्रह ५१ वं श्लोक में इन्होंने अपने गुरु को श्रीनन्दि नाम से याद किया है। पता नहीं चलता कि यह श्रीनन्दि जी कौन हैं। हाँ श्रवणबेलगोलस्थ जिलालेख नं० ४६३ (पृष्ठ १०४७) में एक श्रीनन्दि का उल्लेख मिलता है अवश्य, मगर इनके जिन्य उग्रदित्य न होकर सिंहनन्दि हैं। बल्कि इनकी जिन्यपरम्परा में उग्रदित्य का नाम कहीं उपलब्ध नहीं होता।

प्रायश्चित्तचूल्का एव योगासार के कर्ता गुरुदास के गुरु का नाम भी श्रीनन्दि है। किन्तु यहाँ भी मालूम नहीं होता कि उग्रदित्य के गुरु यही हैं या दूसरे। भास्कर भाग १ किरण ४ पृष्ठ ७८ में प्रकाशित नन्दिरुघ की पद्यावली में भी एक श्रीनन्दि का नाम आया है इसमें इनका समय वि० ८० ७४६ अर्थात् ८ वीं शताब्दी बतलाया गया है। वहाँ इन्हें उज्जैनी के पट्टाधीश लिखा है। इसी प्रकार श्रीचन्द्र के (वि० ८० १०७०) गुरु भी श्रीनन्दि कहे गये हैं। आचार्य वसुनन्दि ने अपने श्रावकाचार में एक श्रीनन्दि का उल्लेख किया है जो इनके प्रगुरु थे। अनुमानत इनका समय १३ वीं शताब्दी होना है। क्योंकि इनके प्रशिष्य वसुनन्दि १२ वीं शताब्दी के हैं। आचार्य उग्रदित्यजी अपने गुरु श्रीनन्दि के नामोल्लेख के साथ साथ इनके गण गच्छादि की भी चर्चा कर गये होते तो आपके बारे में बहुत कुछ ऊहपोह करने की गुंजायण होती पर ऐसा नहीं होने से हमारे उग्रदित्य जी के श्रीनन्दि यो ही सन्देहास्पद बने रहते हैं। इन्हीं साधनों के अभाव में उग्रदित्य जी के विषय में भी कुछ नहीं लिखा जा सकता।

* ये अन्तिम तीन श्लोक 'जनन' की प्रति में नहीं हैं।

उल्लिखित ११ वें श्लोक से यह भी विदित होता है कि उग्रप्रव्रित्य के शुद्ध धीनन्दि जी के राजा विष्णुराज परमेश्वर बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। पर हात नहीं कि यह विष्णुराज कौन हैं।

उग्रप्रव्रित्य जी ने वेङ्गोशत्रिकलिङ्गदेशजननप्रस्तुत्यसानूत्कटः" इत्यादि श्लोक में यह बरसाया है कि त्रिकलिङ्ग देश में राम गिरि पर्वत के ऊपर जिनमन्दिर में समस्त प्राणियों के हिताय यह ग्रन्थ रचा गया। हिन्दीविश्वकोष के विश्व सम्पादक के मत में 'त्रिकलिङ्ग जनपद (देश) मद्राज के उत्तर पलिकट नामक स्थान से लेकर उत्तर गजाम और पश्चिम में त्रिपदि बेल्हारि, करनूल, विदर तथा अश तक विस्तृत है'। परन्तु श्रीयुत नन्दूलाल दे, पृष्ठ ५० वी पृष्ठ अपनी "The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India" नामक कोष में मध्य भारत के त्रिकलिङ्ग मानते हैं। मुझे दे महोदय का मन ही युक्ति-युक्त ज्वलता है। इसका कारण यह कि विश्वकोष के सम्पादक श्रीयुत गेन्द्रनाथ धलु और उक्त भौगोलिक कोष के सम्पादक श्रीयुत नन्दूलाल दे दोनों महाशयों ने मध्य प्रांतीय नागपुर से २४ मील उत्तर विद्यमान रामटेक के ही प्रसिद्ध प्राचीन रामगिरि माना है। हाँ हिन्दी विश्वकोष में मैसूर राज्यस्थ बेङ्गलूरु जिला में भी एक रामगिरि लिखा मिलता है अशक्य मगर यह रामगिरि हिन्दी विश्वकोष के माध्य सम्पादक के द्वारा प्रतिपादित त्रिकलिङ्ग देश के अन्तर्गत नहीं आता। इस लिये इन उल्लिखित प्रमाणों के आधार पर यह निस्सन्दोह कहा जा सकता है कि कल्याण कारक के कर्त्ता उग्रप्रव्रित्याचार्य के द्वारा निर्दिष्ट त्रिकलिङ्ग वर्तमान मध्य-प्रान्त पर्वत अन्तर्गत रामगिरि नागपुर से २४ मील उत्तर अवस्थित रामटेक ही है। आज भी वहाँ पर पहाड़ी के नीचे कुछ प्राचीन विगम्बर जैनमन्दिर मौजूद हैं। विगम्बर जैन प्राचीन काल से ही इस स्थान के एक पवित्र श्रोत्र मानते आ रहे हैं। बहुत कुछ समभव है कि उग्रप्रव्रित्य जी ने इसी सुसिद्ध प्राचीन क्षेत्र को अपने ग्रन्थ-प्रणयन का एक प्रशान्त एवं पुनीत निवासोपयुक्त स्थान समझा हो।

कभी कभी यह बात भी ध्यान में आ जाती है कि उग्रप्रव्रित्यजी के शुद्ध धीनन्दि के परम भक्त उपयुक्त विष्णुराज परमेश्वर शायद कलचूरि राजवंश के हों। क्योंकि यह कलचूरि राजवंश मध्यप्रान्त का सबसे बड़ा राजवंश था और इसका प्राबल्य २ वीं ६ मी शताब्दी में बहुत बड़ा चला था। एक समय यह साम्राज्य बंगाल से गुजरात तक बनारस से कर्नाटक तक फैल गया था। किन्तु बहुत दिनों तक इसका अस्तित्व नहीं रह सका। कलचूरि नरेशों में बहुतेरे नरेश जैनधर्म के प्रचलन पृष्ठपोषक थे। साथ ही साथ कितने ही कलचूरि शासकों ने अपने को त्रिकलिङ्गाधिपति कहा है। कलचूरि नरेशों का जैन

धर्मावलम्बी होना एवं अपने को त्रिकलिङ्गाधिपति कहना ये दोनों उप्रादित्याचार्य के द्वारा कल्याणकारक में वर्णित विष्णुराज परमेश्वर के कलचूरि राजवंशीय सिद्ध करने में अवश्य सहायक हैं। हाँ, इस समय मेरे सामने मध्यप्रान्त में शासन करनेवाले भिन्न भिन्न राजाओं की वश-तालिका नहीं रहने के कारण विष्णुराज परमेश्वर को निश्चित रूप से कलचूरि राजवंशीय लिखने से विरत होना पड़ता है।

उप्रादित्य जी ने अपने इस कल्याणकारक में निम्नलिखित आचार्यों के नाम लिये हैं :—

(१) पूज्यपाद (२) पात्रस्वामी सभवत पात्रकेशरी) (३) सिद्धसेन (४) दशरथ गुह* (५) मेघनाद (६) सिंहनाद (७) समन्तभद्र। इनके अतिरिक्त आपने इस ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रयोगों में यत्र-तत्र निम्नलिखित आचार्यों के दृष्टान्तरूप से वैद्यक-सम्बन्धी मत दर्साया है —

(१) श्रुतकीर्त्ति (२) कुमारसेन (३) वीरसेन (४) जटाचार्य। इन में पूज्यपाद, सिद्धसेन, समन्तभद्र, श्रुतकीर्त्ति, कुमारसेन, वीरसेन, जटाचार्य ये प्रसिद्ध आचार्यों में हैं। पात्रस्वामी प्रायः प्रख्यात पात्रकेशरी हों। अब रहे उल्लिखित मेघनाद एवं सिंहनाद। ये नाम तो मेरे लिये अपरिचित से ज्ञात होते हैं।

जैनवैद्यक शास्त्र बारहवें प्राणावायुपूर्व से प्रादुर्भूत माना जाता है। अन्तिम पद्य से यह भी ज्ञात होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ अन्यान्य वैद्यशास्त्र के मर्मज्ञ पूर्व जैनाचार्यों के वैद्यक-ग्रन्थों का आश्रय लेकर ही प्रणीत हुआ है। वैदिक मतावलम्बी विद्वानों ने वैद्यशब्द की निष्पत्ति वेद से की है, पर उप्रादित्य जी केवलज्ञानरूपी विद्या से मानते हैं यह एक विशेषता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम जो कल्याणकारक रक्खा है वह वैद्यक शास्त्र के लोककल्याणसम्पादक इस अनुत्तम ध्येय का त्रिवेचन करके ही रक्खा है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में आप जैनवैद्यक शास्त्र की प्राचीनता, वैद्यकशास्त्र की व्युत्पत्ति, इसका उद्देश, चिकित्सा का प्रयोजन आदि विषयों पर भी प्रकाश डालने से विरत नहीं हुए हैं। प्रशस्तिगत श्लोक से ज्ञात होता है कि आचार्य पूज्यपाद जी ने शालाक्य, शिरोभेदन आदि, पात्रस्वामी आचार्य ने शल्यतन्त्र, आचार्य सिद्धसेन जी ने विष एवं प्रह-शान्ति-विधान, आचार्य दशरथ गुहजी ओग मेघनाद जी ने शारीरिक चिकित्सा, सिंहनाद जी ने महारोग-शान्ति-विधान एवं आचार्य समन्तभद्र जी ने अष्टाङ्ग आयुर्वेद का प्राणायन किया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त औषधकल्प, सिद्धान्त रसायनकल्प, भिषकप्रकाश, जगत्सुन्दरी, कनक दीपक, रससार, सिद्धनागार्जुनकल्प, रसतन्त्र तथा मेरुतन्त्र आदि कई संस्कृत वैद्यक ग्रन्थों

* सेनगण के आचार्य वीरसेन के शिष्य एक दशरथ हुए हैं। (भास्कर भाग १, किरण १, पृष्ठ ४४)

का उल्लेख पद्य कुछ ग्रन्थों का अथ यत्र तत्र उपलब्ध होता है। किन्तु खेद की बात है इन समुच्चय जैनसाहित्य रत्नों की खोज एवं प्रकाशन की ओर अभी तक जैनसमाज का ध्यान नहीं गया है। कन्नड साहित्य में भी सोमनाथ के कल्याणकारक, पार्श्वदेव की सुकरयोगरत्नायलि चालुक्यवशीय कीर्तिवर्मा के गोवैद्य, मंगराज के खगेद्रमणिवर्षण, अभिनवचन्द्र के हयशास्त्र देवेन्द्र मुनि की बालग्रह-चिकित्सा अमृतनन्दि मुनि का अकारादि वैद्यनिघण्टु एवं श्रीधरदेव के वैद्यामृत के नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं। बड़े हर्ष से यह कहने का सौभाग्य प्राप्त होता है कि उक्त इन ग्रन्थों में से आचार्य उप्रादित्य कृत यह कल्याणकारक सोलापुर के जिनबायी के अनन्यभक्त सेठ राघजी सखाराम दोशी जा के सदुद्योग से एवं खगेद्रमणिवर्षण मद्रास के विश्वविद्यालय के प्रथमकाशन विभाग से प्रकाशित हो रहे हैं।

साधनाभार से उप्रादित्य के समय का पता लगाना असम्भव सा हो रहा है। इनके गुरु भोनन्दि और विष्णुपुत्र परमेश्वर के विषय में कुछ पता लगने से इनके समय निर्णय करने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। हाँ भूतकीर्ति और कुमार सेन का नाम जो आपने प्रशस्ति में लिया है सो उनका भी कुछ पता नहीं है—कहीं इनके गण गच्छ पर्व गुरुपरम्परा की बातें जरा भी ज्ञात हो जातीं तो भी उप्रादित्य जी के समय सम्बन्धी प्रश्न का थोड़ा बहुत हल हो जाने की सम्भावना थी। क्योंकि एक नाम के अनेक जैनाचार्य हो गये ह, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि ये अमुरु भूतकीर्ति आदि ही हैं। अरण्यल्लेखों के निम्न लिखित शिलालेखों में अतकीर्ति के नाम कई जगह आते हैं। जैसे ४०, १०५ और १०८ में। इनका समय क्रमशः शकसम्बत् १०८५, १३२० और १३५२ है। इसी प्रकार कुमारसेन का नाम ५४ एवं ४६१ के शिलालेखों में आता है और इनका समय भी क्रमशः शकसम्बत् १०५० तथा १०४७ है। उल्लिखित और आचार्यों के १०वीं शताब्दी के पहले के होने के कारण उप्रादित्य के समयनिर्णायक समस्यामें उनका नाम नहीं लेकर इन्हीं दो बाद के आचार्यों का नाम लेना उचित समझा गया। उल्लिखित शिलालेखानुसृत कुमारसेन का काल विक्रम सम्बत् ११५५ अर्थात् १२ वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इसी प्रकार उपयुक्त शिलालेखों के आधार से शक सम्बत् १०८५ में अङ्कित प्रथम भूतकीर्ति का समय विक्रम सम्बत् १२२० अर्थात् १३ वीं शताब्दी एवं शकसम्बत्

७ भास्कर भाग १ किरण ४ पृष्ठ १ ८ में प्रकाशित काष्ठस्य की पहावली में भी दो कुमारसेन के नाम आये हैं पर इनके समय का उल्लेख इसमें नहीं है।

सेनगण की पहावली से ज्ञान होता है कि इन गण में भी एक कुमारसेन हुए हैं। (भास्कर भाग १ किरण २ ३ पृष्ठ ३४)

१३२० और १३५७ में उद्धृत द्वितीय श्रुतकीर्त्ति का समय विक्रम संम्वत् १४१५ तथा १४६० अर्थात् १५ वीं शताब्दी सिद्ध होता है। क्योंकि वि० सं० १२२० के श्रुतकीर्त्ति का अस्तित्व वि० सं० १४६० में कायम रहना असम्भव समझ कर ही प्रथम और द्वितीय दो श्रुतकीर्त्ति सिद्ध करने पड़े हैं। भास्कर भाग १ किरण ४, पृष्ठ ७८ में प्रकाशित नन्दी-संघ की पट्टावली में भी एक श्रुतकीर्त्तिका नाम थाया है। साथ ही साथ इसमें इनका समय वि० सं० १०७६ अर्द्धित है और यह श्रुतकीर्त्ति भेलसा (O P) के पट्टाधीश बतलाये गये हैं। पैर उग्रचित्तजी के समय-निर्णय के लिये जो जो साधन मेरे दृष्टिगोचर हुए उन्हें पाठकों के समक्ष मैंने उपस्थित कर दिया ताकि इनके समय निर्धारित करने में विद्वानों को सहायता मिले। संभव है कि इन ग्रन्थ की आद्योपान्त आलोचना करने से कुछ साधन मिल जाय। क्योंकि ग्रन्थों के परिचय लिखने में मुझे प्रत्येक ग्रन्थ का आमूलप्र अग्रलो कन करने का अवकाश नहीं मिलता।

अर्थात्क मैं देख पाया हूँ इस ग्रन्थ की भाषा एवं रचनाशैली मुझे परिपक्व ज्ञात हुई है।

इस कल्याणकारक ग्रन्थ में निम्नलिखित प्रकरण हैं :—

- (१) स्वास्थ्य-संरक्षण (२) गर्भातिवृत्तिविचार (३) स्वास्थ्यरक्षाधिकार-सूत्रवर्णन (४) धान्यादिगुणगुणविचार (५) अन्नपानविधि-वर्णन (६) रसायनविधि (७) व्याधि-समुद्देश (८) वातव्याधि-चिकित्सा (९) पित्तव्याधि-चिकित्सा (१०) श्लेष्मव्याधिचिकित्सा (११-१२) महाव्याधिचिकित्सा (१३-१४-१५ १६-१७) क्षुद्ररोग-चिकित्सा (१८) बालग्रह-भूतमन्त्राधिकार (१९) सर्पविषचिकित्सा (२०) शास्त्रमग्रह-तन्त्रयुक्ति (२१) कर्म-चिकित्सा (२२) वैषज्यकर्मापद्रव्यचिकित्सा (२३) सर्वौषधकर्मन्याय-चिकित्सा (२४) रसरसायनसिद्धचिकित्सा (२५) नानाविध क्लृप्ताधिकार।

इस ग्रन्थ की श्लोक संख्या पाँच हजार घतलायी जाती है।



(१८) ग्रन्थ न० २२४

जिनसंहिता

कर्ता—पकसाँघ महारक

विषय—संहिता (प्रतिष्ठा)

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१४ इंच

चौड़ाई—८॥ इंच

पत्रसंख्या ८८

प्रारम्भिक-भाग—

मंगलं भगवानहम्मंगलं भगवान् जिन ।
 मंगलं प्रथमाचार्यो मंगलं वृषभेश्वर ॥१॥
 विद्वानं विमलं यस्य भासते विश्वगोचरम् ।
 नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुनेन्द्रायर्चिताञ्जय ॥ ॥
 वन्दित्वा च गणाधीशं भुतसूक्ष्ममुपास्य च ।
 संप्रहीष्यामि मन्वानां बोधाय जिनसंहिताम् ॥३॥
 शास्त्रावतारसम्बन्धं तन्नादौ तावदुच्यते ।
 श्रेयोऽर्पितं समाधाय वेत शृणुत धीधना ॥४॥
 इत्यनुसूयते धीरः पुरा लोकत्रयीगुरुः ।
 विपुलाद्रौ सर्वा दिव्यामभ्युवास कदाचन ॥५॥
 तन्नासीनं तमभ्येत्य भगधेन्द्रं कृताञ्जलिः ।
 निःपरीत्य समभ्यर्चयं स्तुत्वा नत्वा च पूजयाम् ॥६॥
 ततोऽभ्येत्य गणाधीशं गौतमं मुनिपुंगवम् ।
 नत्वा सप्रभयं धीमानप्राज्ञीजिनसंहिताम् ॥७॥
 भगवान् गौतमस्वामी मागधं प्रत्यवृष्यन् ॥८॥ (१)
 ततः प्रभृत्यविच्छिन्नगुह्यपर्वकमागता ।
 सेर्यं मयाधुना साधु संक्षेपेण प्रकाशयते ॥९॥
 मागधप्रभ्रमुदिष्य गौतमं प्रत्यभाषत ।
 इदानीमनुसन्धाय प्रब्रह्मोऽयं निवच्यते ॥१०॥

x

x

x

मध्य-भाग (पृष्ठ ३८ पक्ति १ श्लोक १)

अथ मर्त्येण वक्ष्यामि शृणु तद्ग्रामलक्षणम् ।
यत्पृष्टमधुनाधीन त्वयावसरवेदिना ॥१॥
अस्मिन्नवसरे राजन् पूजादावादिचक्रिणा ।
ग्रामभेदेषु कर्त्तव्यं जिनधामेतिभाषिते ॥२॥
कीदृशं लक्षणं तस्य ग्रामस्येति बुभुत्सुना ।
पृष्टं प्रसंगतोऽवोचद्गणोन्डो ग्रामलक्षणम् ॥३॥
तत्कालं पत्रं पृष्टं तद्भवतापि बुभुत्सुना ।
ततस्तु लक्षणं तस्य सक्षेपेण निगद्यते ॥४॥
ग्रामः स्यान्नवधा ग्रामः पुरं खेटञ्च कर्षटम् ॥५॥
सवाह पत्तनं द्रोणं मठं च (?) घोष इत्यपि ॥६॥
ग्रामो वृत्तिः परिक्रितिः कुलसघात इत्यपि ।
स्याप्युचितं..... तत् ॥६॥
तदेव राजधानी स्यान्पुरं मर्त्येश्वरोचितम् ।
मध्ये जनपदं फलत्वा दुर्गमुत्तमगोपुरम् ॥७॥
गिरिनद्यावृतं खेटं कर्षटं पर्वतावृतम् ।
सवाहनामधेयं स्याद्भूरे परिकल्पित ॥८॥
पत्तनं तत्समुद्रान्ते पञ्चोभिस्व (?) तीर्थिते ।
द्रोणानामवगन्तव्यो नदीधारिधिवेष्टित ॥९॥
मठं च (?) तद्भावयेद्यत्तु ग्रामपचतीवृतम् (?) ।
आश्रये घोषं आभीरजनानामभिलष्यते ॥१०॥

x

x

x

अन्तिम-भाग .—

पाशोत्सेधोऽष्टमात्रं स्यात्कुम्भमण्ड्यादिसंयुत ।
पानिकान्ताध्रयं कल्पस्तेषां नाह शराङ्गुल ॥'८॥
उत्तरं त्रिययोत्सेधधारणे यच्च उच्छ्रय ।
मात्रा भर्द्गरुता याः स्युः कपोताध्रय उच्छ्रय ॥६६॥
ययो ह्यो निम्नउत्सेधपट्टं त्रियवोच्छ्रयम् ।
प्रत्युत्सेधोऽष्टमात्रं स्याद्दृष्टियथ पट्टिकोच्छ्रय ॥७०॥

कम्पोयवद्वयोत्सेध उत्तरार्धे कदाचि ।
 भासैराणिमि' सध विष्टमेतत्सुव येत् ॥७१॥
 आयासाणिषु तेष्वन्निविस्तारोऽकयवो भवेत् ।
 अणविवेतेवि भूसम्मिते ॥७२॥
 कोणेष्वयसपट्टंश्रवं येत्सुहृदं यथा ।
 भग्निरूपं स्त्रियोरूपं दिष्टु भद्रान्तरे भवेत् ॥७३॥
 उपरि फलकान्यस्य रथस्थुर्भिरन्तरम् ।
 समं कुमुदकं येन घनं पञ्चाक्षरि स्थलम् ॥७४॥
 नाटकस्थलतुल्यस्तत्पोश्वमिन्त्यच्छ्रयो भवेत् ।
 तद्भित्तिस्थलमिति च यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥७५॥
 समद्रो वा कल्पोऽथ रथो भवेत् ।
 वासोऽस्मिन्पञ्चताल' स्यादुक्ताशष्ठापितोच्छ्रये ॥७६॥

× × - ×

मिनसंहिता (पतिष्ठापाठ) की इस भवन की प्रति में प्रशस्ति न होने की वजह से इसके प्रयोक्ता भङ्गरक एकसन्धि के सम्बन्ध में सत्रधा मौनधारण करना पड़ रहा है। इधर उधर टंगेलेने से भी किसी उल्लेखनीय बातों का पता लगाने में सफलता नहीं मिली।

आयप अप्ययाय या अथपर्य नाम के विद्वान् के द्वारा शक सम्वत् १२४१* अर्थात् वि सम्वत् १३७६ में जिनेन्द्रकल्याणाम्बुदय नाम का एक ग्रन्थ रचा गया है। बल्कि इस ग्रन्थ का कुछ परिवय प्रशस्ति-संग्रह" पृष्ठ ८ १२ में दिया भी जा चुका है। इस ग्रन्थ में लेखक ने धीराचार्य आदि के साथ एकसन्धि भङ्गरक का भी उल्लेख निम्न प्रकार से किया है —

"वीराधायसुपुज्यपाद्जिनसेनाचार्यसभापितो
 य' पूर्वं गुणमद्रसुखिसुखन्दीन्द्रादिनन्धुर्जित ।
 यश्चाशाधरहस्तिमहकथितो यश्चैकसन्धिस्तत
 तेभ्य' स्वोद्दत्सारमन्परचित्त रथाज्ञानपूजाक्रम" ॥

बल्कि खेद के साथ लिखना पड़ता है कि 'प्रशस्ति संग्रह' में दिये गये ग्रन्थकर्ता के परिवय

*शाकान् विधुवाधिनेत्रहिमनौ सिद्धायसम्बन्धरे
 माये भासि विष्टरूपचदशमीपुष्पकवारेऽहनि ।
 ग्रन्थो रत्नकुमारराज्यविषये जैनेश्वरकथायमाक्
 समुप्योऽभवच्छैबनगरे श्रीपादकर्मज्ञित" ॥

में प्रमाद एवं दृष्टि-दोष से एकसन्धि भट्टारक के नाम पर मेरा ध्यान ही नहीं गया था। फल-स्वरूप उपर्युक्त श्लोक में नौ प्रतिष्ठा-पाठ के प्रयोक्ताओं का स्पष्ट उल्लेख होते हुए भी वीराचार्य आदि आठ ही प्रतिष्ठापाठ रचयिताओं का मैंने नाम निर्देश कर दिया है। खेर प्रमाद का लक्ष्य होना हम जैसे अल्पज्ञ मानवों का प्रकृत धर्म है।

जिनेन्द्रकल्याणभ्युदय (विद्यानुवादाङ्ग) के उल्लिखित श्लोक से प्रकट है कि जिनसंहिता के कर्त्ता एकसन्धि भट्टारक विक्रमसम्बत् १३७६ के पहले हो चुके हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि यह परिण्डत-प्रवर आशाधर जी के समकालीन १३ वीं शताब्दी में या इससे भी कुछ पीछे हुए हों।

भवन की सगृहीत जिनसंहिता की यह प्रति भीषण अशुद्धियाँ से भरी पड़ी एवं अपुण्य है। अतः किसी शास्त्र-सग्रहीता के सग्रह में यदि इस की पूर्ण प्रति हो तो उसका प्रशस्ति-मय अन्तिम भाग भेजकर भास्कर में प्रकाशित करा देने की कृपा करेंगे।

(१६) ग्रन्थ नं० २२७
ख

गीतवीतराग

कर्त्ता—पण्डिताचार्य चारुकीर्ति

विषय—जिनस्तुति

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इञ्च

चौड़ाई ६॥ इञ्च

पत्रसंख्या ३३

प्रारम्भिक-भाग —

विद्याव्याप्तसमस्तवस्तुविसरो विश्वैर्गुणैर्भानुरो-
दिव्यश्रव्यवच प्रतुष्टुसुर सद्धानरत्नाकर ।

यः संसारविषान्धिपारसुतरो निर्वाणसौख्यादर

स श्रीमान् वृषभेश्वरो जिनवरो भक्त्यादरान् पातु न ॥१॥

पूर्वास्मिञ्जयवर्मनामनृपति विद्याधराधीश्वरम्

पश्चात्सल्ललिताङ्गदेवममल श्रीवज्रजङ्घाधिपम् ।

आर्य श्रीधरनिजरं च सुविधिं कल्पान्तदेवेश्वरम्
 चक्राधीश्वरघञ्जनाभिजनपं सर्वार्थसिद्धीश्वरम् ॥२॥
 साकेताधिपनामिराजतनय कल्याणपञ्चाश्रितम्
 प्राप्तानन्तचतुष्टयं जिनवरं सौवर्णदेहावहम् ।
 सौधर्मादिशतेन्द्रवृन्दविनतश्रीपादपद्मद्वयम् ।
 धन्देऽह कृपमेश्वर गुणनिधिं सद्गमचक्राधिपम् ॥३॥
 मैत्रे पश्चिमगन्धिते जनपदे विद्याधराणां पद
 स्याद्भ्रूत्तरदिक्स्थिते सवलकानाम्ना प्रतीते पुरे ।
 राजा शस्तमहाबलस्सचिवकैयुकश्चतुर्मिस्सदा
 राजर्त समुवाच धमसुफल बुद्धस्ययपुथक ॥४॥

x

x

x

मध्य भाग (परपृष्ठ २५ पक्ति ६ से)

भष्टपदम्—सदृश्याकिसलयचरणयुगेन मृदुसारसिञ्जत्रयधृतसुभगेन ।
 सा धनिता सुविराजिता सुमगा धनिता सुविराजिता ॥१॥
 धतुलकान्तिसृदूकभरेण चित्तजबाणघिवृत्तिधरण्या ।
 सा धनिता सुविराजिता सुमगा धनिता सुविराजिता ॥२॥
 मञ्जुलकान्तिसुवेशचयेन पुञ्जतकान्तसुमग्यशुभेन ।
 सा धनिता सुविराजिता सुमगा धनिता सुविराजिता ॥३॥
 गलिनसुनिसनिभभुजयुगलेन श्लितसुरतद्विदपचलनेन ।
 सा धनिता सुविराजिता सुमगा धनिता सुविराजिता ॥४॥
 विचलितहारविलासशिषेन कुचयुगविलसदुद्विभवेन ।
 सा धनिता सुविराजिता सुमगा धनिता सुविराजिता ॥५॥
 शशधरकविधरसुपममुलेन विशदकुमुद्वदनयनसखेन ।
 सा धनिता सुविराजिता सुमगा धनिता सुविराजिता ॥६॥
 शर्लकुलकुन्तलभरनिदिलेन विर्णासतशशिदलसमकुन्दिलेन ।
 सा धनिता सुविराजिता सुमगा धनिता सुविराजिता ॥७॥
 कुपद्वलप्रगिदतधुनियमलेन खण्डितकुमवचधनसुबलेन ।
 सा धनिता सुविराजिता सुमगा धनिता सुविराजिता ॥८॥

x

x

x

अन्तिम-भाग—

गंगेयवंशाम्बुधिपूर्णचन्द्रो यो देवराजोऽजनि राजपुत्रः ।
 तस्यानुरोधेन च गीतवीतराग-प्रबन्धं मुनिपञ्चकार ॥१॥
 द्वाविद्देशविशिष्टे सिंहपुरे लब्धशस्तजन्मोसौ ।
 वेङ्गोळपण्डितवर्यश्चकार श्रीवृषभनाथवरचरितम् ॥२॥
 स्वस्तिश्रीवेङ्गुळे दोर्वलिजिननिकटे कुन्दकुन्दावधये नोऽ-
 भूत्स्तुत्य' पुस्तकाङ्कश्रुतगुणभरणः ख्यातदेशीगणार्थ '
 विस्तीर्णाशेषरीतिप्रगुणरसभृत गीतयुग्वीतरागम्
 शस्तादीशप्रबन्ध वुधनुतमतनोत् पण्डिताचार्यवर्यः ॥

इति श्रीमद्रायराजगुरुभूमण्डलाचार्यवर्यमहावाद्वादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जन-
 चक्रवर्तिबल्लाळरायजीवरत्नापाल(?)कृत्याद्यनेकाबरुदावलिविराजञ्छ्रीमद्वेङ्गोळसिद्धसिंहासना-
 धीश्वरश्रीमद्भिनवचारुकीर्त्तिपण्डिताचार्यवर्यप्रणीतगीतवीतरागाभिधानापद्यी समाप्ता ।

यह गीतवीतराग जयदेव (ई० ११५०) प्रणीत गीतगोविन्द के ढंग पर रचा गया है ।
 जिस प्रकार गीतगोविन्द का अपर नाम अपद्यी प्रसिद्ध है उसी प्रकार इस गीतवीतराग
 का भी दूसरा नाम अपद्यी ही है । इस बात का खुलाशा इसके रचयिता पण्डिताचार्य
 चारुकीर्त्ति जी ने अपनी इस कृति में स्वयं कर दिया है । गीतगोविन्द महाकाव्य में गिना
 जाता है । इसके प्रणेता जयदेव वंग के लक्ष्मण सेन (ई० १११६—११६६) के सभा-पण्डित
 थे । इनके पिता का नाम भोजदेव एवं माता का राधादेवी था । यह किन्दुबिल्व के निवासी
 थे । किन्दुबिल्व वंगदेश के धीरभूम जिले में है । यह जयदेव श्रीकृष्ण के अनन्यभक्त थे ।
 भक्तिमाला में इनकी भक्ति की अनेक कथाएँ मिलती हैं । इनका विरचित एक हिन्दी ग्रन्थ
 भी है, जो सिक्खों के आदि ग्रन्थों में सब से प्राचीन माना जाता है । संस्कृत में जयदेव-
 विरचित संस्कृत का यह छेाया सा एक ही महाकाव्य होने पर भी इस कवि का यश इतना
 प्रवृत्त हुआ है कि कवि के जन्म-स्थान पर इनकी पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में अभी तक बडा
 भारी उत्सव मनाया जाता है, जिसमें गीतगोविन्द के पद्य गाये जाते हैं । ई० १४६६ में उत्कल
 के प्रताप रुद्रदेव ने सब वैष्णवनर्तक तथा गायकों को सदैव गीतगोविन्द के ही पद्य गाने
 की आज्ञा दी थी । गेते सदृश पाश्चात्य रसिक-शिरोमणियो ने कालिदास के साथ इस कवि
 की भूरि भूरि प्रशंसा की है । गीतगोविन्द १२ सर्गों का महाकाव्य है । इस में श्रीकृष्ण
 और राधिका का प्रेम वर्णित है । प्रतिसर्ग के पद्य के पूर्व में राग ताल आदि दिये गये
 हैं । इससे यह अनुमान होता है कि इसके रचयिता बडे भारी गवैया थे । इस में विप्रलभ

और समोग शृङ्गार का बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया गया है। इस काव्य की लोकप्रियता इसकी टीका की संख्या से भी विदित होती है। इस काव्य पर ३० टीकायें उपलब्ध होती हैं। इन टीकाकारों में उदयनाचार्य और शङ्कर मिश्र सहश बड़े बड़े नैयायिक और गायामट्ट सहश मीमांसक भी हैं।

इस गीतवीतराग में प्रथम तीर्थङ्कर श्रुयमदेश का चरित्र चित्रित है। इस में भी प्रत्येक पद्य के पूर्व में राग ताल आदि दिये गये हैं। इससे उदयेश के समान इस गीतवीतराग के कर्ता पण्डिताचार्य चादकीर्ति जी भी संगीत के ममज्ञ विदित होते हैं। इन्होंने अपने गीतवीतराग में गीतपोथिन्द का जाका खींचने का प्रचुर प्रयास किया है। बल्कि इस विषय में इन्होंने सफलता भी प्राप्त की है। इसकी सस्कृत भाषा भी मजी हुई एवं प्रशस्त है। संख्या की दृष्टि से इसमें ५७२ पद्य माने जाते हैं। गीतवीतराग के प्रणेता चादकीर्ति जी 'शिवम्बर जैनप्रथकर्ता और उनके ग्रन्थ के मतानुसार (१) पार्श्वाम्युदय की टीका (२) बन्धुप्रथ काव्य की टीका (३) आदिपुराण (४) यशोधर चरित (५) नेमिनिर्वाणकाव्य की टीका के भी कर्ता हैं। इनमें आदिपुराण यशोधर चरित और नेमिनिर्वाण काव्य की टीका अभी तक मुझे दृष्टिगोचर नहीं हुई हैं। बल्कि मगन में चादकीर्ति के रचित अर्थ प्रकाशिका और प्रमेयरत्नमालालङ्कार नाम के सुप्रसिद्ध प्रमेयरत्नमाला नामक व्यायग्रथ के दो टीका ग्रन्थ भी संगृहीत हैं। जिनका परिचय यथाथसर इसी प्रशस्ति संग्रह में प्रकाशित किया जायगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उल्लिखित इन ग्रन्थों के रचयिता चादकीर्ति जी एक बहुदर्शी एवं विविध विषयों के ममज्ञ उद्भूत सस्कृत के विद्वान् थे।

इस गीतवीतराग के कर्ता चादकीर्ति जो ने द्राविड (मद्रास) देशान्तगत सिंहपुर को अपना जन्मस्थान बतलाया है। यह सिंहपुर सम्भव है कि निन्दीवनम तालुक के अन्तर्गत सिंगवरम् हो। बाद आप लोक विभूत अग्रज वेङ्गोळ भठ के अधीश बनाये गये। चादकीर्ति जी रायराजगुरु भूमण्डलाचार्य महायादवादीश्वर आदि अनेक उपाधियों के धारक थे। पर ये सभी उपाधियाँ पट्टपरम्परागत हैं। बल्कि इनकी बल्लाल जीश्वरत्नक जो एक विशिष्ट उपाधि है वह विष्णुवर्द्धन के बड़े भाई बल्लाल प्रथम (११००—११०६) को एक भयानक रोग से मुक्त करने के उपलक्ष में तत्कालीन धरण्य वेङ्गोळ के मठाधीश चादकीर्ति जी को प्राप्त हुई थी।

७ देखें—सस्कृत साहित्य का सचित्र-इतिहास, पृष्ठ १७१ से १८१।

† देखें—“प्रशस्ति-संग्रह” पृष्ठ १—४।

‡ देखें—अवयवेत्तोळ के शिवावेखन २१४ (१०१) सन् १११८ तथा ११८ (१०८) सन् ११३२

इस की प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि गंगवंशज राजकुमार देवगज के अयुरोध से ही आपने इस "गीतवीतराग" का प्रणयन किया है। इस गंगवंश का राज्य मैसूर प्रान्त में लगभग ईसा की ४थी शताब्दी से ११वीं शताब्दी तक रहा। आधुनिक मैसूर का अधिकांश भाग गंगवंश के राज्य के अन्तर्गत था जो गंगवाडि ६६००० कहलाता था। मैसूर में जो आजकल गङ्गाडिकार (गंगवाडिकार) नामक किसानों की भारी जनसंख्या है वे गगनरेशों की प्रजा के ही वंशज हैं।

गंगवंशीय राजाओं की प्राथमिक राजधानी 'कुवलाल' या 'कोलार' थी। यह पूर्वी मैसूर में पालार नदी के तट पर अवस्थित है। पीछे यह राजधानी कावेरी के तट पर 'तलकाड' नामक स्थान में आ गयी। आठवीं शताब्दी में श्रीपुरय नामक गगनरेश सुविधा के लिये अपनी राजधानी का कार्य वेङ्गलूर के समीपस्थ मरणे या मान्यपुर से भी सञ्चालित करते थे। गंगवंश के अभ्युदय का यह मध्याह्न समय था। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब तलकाड चोलनरेशों के हस्तगत हुआ तभी से गंगराज्य की इति श्री हुई। शुरु से ही गंगराज का जैनधर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। श्रवणवेङ्गगोळ के शिलालेख नं० ५४ (६७) के उल्लेख से ज्ञात होता है कि गंगराज्य को नीब डालने में जैनाचार्य सिहनन्दी जी का अधिक हाथ था। आचार्य सिहनन्दी जी की इस सहायता की चर्चा गंगनरेशों के मिश्र मिश्र शिलालेखों में भी पायी जाती है।^{१५} इसके अतिरिक्त गोम्मटसार की वृत्ति के प्रणेता अमयचन्द्र त्रिविद्यचक्रवर्ती ने भी अपने ग्रन्थ की उत्थानिका में इस बात का उल्लेख किया है। कहा जाता है कि आचार्य पूज्यपाद इसी वंश के सातवें नरेश दुर्विनीत के राजगुरु थे। गंगवंश के अन्यान्य प्रकाशित लेखों से भी जैनाचार्यों का सम्बन्ध सिद्ध होता है।

पर इस वंश में देवराज का कुछ पता नहीं लगता। पुरातत्व के सहृदय मर्मज्ञ मित्रवर गोविन्द पं का भी कहना है कि तलकाड के पश्चिम गंगवंश में देवराज नामक शासक का नाम मिलता नहीं है। हाँ, कलिङ्ग के पूर्व गंगवंश में देवेन्द्र वर्म नामक शासक ई० सन् १०७० में सिंहासनारूढ हुआ था अवश्य (Historical inscriptions of southern India page 358 & 346—348, 415—416)

किन्तु चारुकीर्ति जी के द्वारा "गीतवीतराग" में प्रतिपादित देवराज प्रायः यह नहीं हो सकता है। इसीलिये साधनाभाव से देवराज के सम्बन्ध में इस समय कुछ भी नहीं लिखा जा सका। अस्तु इस "गीतवीतराग" के प्रणेता भट्टारक चारुकीर्ति जी शक सम्वत् १३२१ के बाद के हैं।

(२०) ग्रन्थ न० १११

अर्थप्रकाशिका (प्रमेयरत्नमाला की टीका)

कर्ता—पण्डिताचार्य चावकीर्ति

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

जम्बार्द ८॥ इच्छ

भौडार्द ६॥ इच्छ

पत्रसत्या २४६

प्रारम्भिक-भाग —

भीमसेमिजिनेन्द्रस्य बन्दिषा पाठपङ्कजम् ।
 प्रमेयरत्नमालार्थं सक्षेपेण विविच्यते ॥१॥
 प्रमेयरत्नमालायां व्याख्यास्तन्ति सहस्रशः ।
 तथापि पण्डिताचार्यकृतिर्ग्राह्यैव कोविदैः ॥२॥
 मानौ देवीप्यमानेऽपि सर्वलोकप्रकाशके ।
 न गृह्यते किं भुवने जनेन करवीपिका ॥३॥

प्रारम्भिकस्य प्रबन्धस्य निर्दिष्टपरिसमाप्त्यर्थं स्वेच्छदेवतानमस्काररूपं मंगलमाचरन्
 शिष्यप्रशिक्षायै प्रन्यतो निगमति ।

नतामेवेति । अस्मिन् श्लोके ब्रुत्यनुमासशब्दार्थकारः । रेफादिवर्णानामब्रुत्तेरेक
 द्व्यादिवर्णानामाब्रुत्तौ ब्रुत्यनुमासस्य अभिहितत्वात् । तदुक्तं —“एकस्मिन्प्रमुखा वर्णा व्यवधानेन
 धत्त धी । आवर्त्तन्ते तथा तत्र ब्रुत्यनुमास इष्यत ॥’ कर्मात्तातीन् जयतीति जिनः । कर्मात्ताति
 जेतृत्वमेव जिनपदशक्यतावच्छेदकम् । एतच्च ब्रुवात्कारवीर्यमदच्छिदे इत्यनेन समर्थित
 मिति पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमर्थात्कारः । “हेतौर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्” इति
 लक्षणात् । भगवोरशब्दार्थलिङ्गारयोस्संज्ञाः तिलतण्डुलाम्यायेन उभयोर्मेलनात् । “तिल
 तण्डुलाम्यायेन मेलनं संज्ञाः’ इतिलक्षणात् । अकलङ्क इति । अत्र रूपकालङ्कारः—वर्त्तन्ति
 अम्मोहित्वस्य रूपणात् । उपमानोपमानयोरभेदकथनं हि रूपकम् । तदुक्तम्—‘विविध
 भेदाद्ब्रुव्यत्जन विचयस्य यत् रूपकं तत्’ इति । न्यायविद्यामृतमित्यत्राप्ययमेव रूपकालङ्कारो
 बोध्यः । प्रमेन्दुवचनेनेति । प्रमेन्दुवचनोदात्तस्यैकेत्यत्र निरुक्तमेव रूपकम् । ज्योति
 र्निर्गमसग्निभा इत्यत्र उगमालङ्कारः ।’ उपमा यत्र सादृश्यत्वमीदृशसति द्वयो इति लक्षणात् ।

श्रीमदित्यादि । अवगाहनमन्त-प्रवेश' । स च निगूढतत्त्वकलनरूपः । तात्पर्यविषयी-
भूतार्थज्ञानसम्पादनमिति यावत् । पोतप्रायम् पोतसदृशम् तत्प्रतिपाद्यार्थैकदेशं
प्रति सम्पादकमिति यावत् । तत्प्रकरणस्येति । सम्बन्धादिविषयकज्ञानरूपकारणाभावे
प्रवृत्तिरूपकार्यं न स्यादिति भावः । अयमर्थ "स्तत्प्रकरणस्य" इत्यत्र पञ्चमर्थो विषयत्वम्
प्रेक्षावतामिति पञ्चमर्थः सम्बन्धितत्वम् । तथा च एतत्प्रकरणविषयकप्रेक्षावत्सम्बन्धि-
प्रवृत्तिर्न जन्यत इति शास्त्रविषयकप्रवृत्तित्वावच्छिन्नं प्रति सम्बन्धादिज्ञानानां कारणायाः
व्यवस्थापयिष्यमाणात् । प्रेक्षावन्तो ज्ञानिनः तत्र योऽनुवाद इति । अनुवादो नाम भन्न न
निष्ठप्रकारताशालिबोधजनकशब्दप्रयोगः । ननु पूर्वमुक्तस्य पुनरपि कथनं तस्य प्रकृतेर-
संभवात् । संबन्धादीनां प्रमाणादिति श्लोकात् पूर्वं मूलकृतानुक्तेः । अतः सम्बन्धादित्रय-
निष्ठ प्रकारताशालिबोधजनकशब्दप्रयोग एव अत्रानुवादशब्दार्थो प्राह्यः ।

x x x x x x

मध्य-भाग (परपृष्ठ ११८ पक्ति ५)

प्राकट्यं फलजनकत्वावस्था । तथा च अव्यवहितोत्तरक्षणे फलजनकत्वरूपोद्बोधन-
विशिष्टसंस्कारजन्या स्मृतिरित्यर्थः । एवं च संस्कारजन्यत्व स्मृतेर्लक्षणम् इतरत्त्व-
रूपकौर्त्तनमिति योज्यम् । "दर्शनस्मरणकारणकम्" इत्यादि । इदमिति प्रत्यक्षतदिति
स्मरणमेतदुभयजन्यं तदिदमिति यज्ज्ञानं जायते तत्प्रत्यभिज्ञानम् । तत्र सकलनमिति
स्वरूपकथनम् । तथा च प्रत्यक्षजन्यत्वे सति स्मरणजन्यत्वं प्रत्यभिज्ञानस्य लक्षणम् ।
प्रत्यक्षजन्यत्वमात्रोक्तौ अवप्राहात्मकप्रत्यक्षजन्येहात्मकप्रत्यक्षेतिव्याप्तिः । अतः स्मरण-
जन्यत्वं स्मरणजन्यत्वमात्रोक्तौ स्मरणध्वंसेऽतिव्याप्तिः । अतः प्रत्यक्षजन्यत्वं तत्र
दर्शनस्मरणकारणकत्वादिति सर्वत्र ग्रन्थान्तरेषु शास्त्रान्तरेषु च । तदिदं सोऽयं देवदत्त
इत्यादि तत्रेदन्तावप्राहिज्ञानस्यैव प्रत्यभिज्ञानत्वमुक्तम् । तद्देशतत्कालसंबन्धित्वं तच्चा
एतद्देश एतत्कालसम्बन्धित्वं इदं ता । तथा च कथमस्मिन्सूत्रे तत्सदृशं तद्विलक्षणमित्यादि-
ज्ञानानामपिप्रत्यभिज्ञानत्वमुच्यते इति शंका । तत्र च दर्शनस्मरणकारणक यज्ज्ञानं तत्सर्वं
प्रत्यभिज्ञानमिति तावत्केषु च ग्रन्थेषु कंठतः उक्तं केषुचिच्च सूचिता । तथा च तदिद-
मित्यादिज्ञानस्यैव तत्सदृशमित्यादिज्ञानस्यापि दर्शनस्मरणकारणकत्वाविशेषात् सूक्तमिति-
सूत्राशयः ।

x x x x x

अतिस-भाग — (पूर्वपृष्ठ २४८, पक्ति ७)

इन्द्रशक्रपुरन्दरादिशब्दा इन्दनशकनपूर्वाराद्यादिपर्यायभेदेन भिन्नार्थबोधका इति ज्ञानं हि सममिरुद्धनयं । तादृशज्ञाने पर्यायभेदप्रयोज्यो योऽर्थभेद इन्वनादिरूपपर्यायभेदप्रयोज्य इन्द्रशक्रादिपदार्थभेद तद्वोधकत्वनिष्ठविशेष्यताशालिज्ञानत्वसत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः । सममिरुद्धनयामासस्तु इन्द्रशक्रपुरन्दरादिशब्दा अभिन्नायबोधका इति ज्ञानादिति । इत्थम्भूतनयस्तु शक्रादिशब्द शकनक्रियास्थितिक्षण एव शक्रबोधकं न पूजादिष्विति ज्ञानम् । तल्लक्षणम् तत्पर्यायसमानकालीनायबोधकत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितशब्दनिष्ठविशेष्यताशालिज्ञानत्वं शकनकाल एव शक्रबोधक इति ज्ञाने शकनरूपपर्यायकालीनार्थबोधकत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितशब्दनिष्ठविशेष्यताशालिज्ञानत्वम् । शकनकाल एवशक्रबोधक इति ज्ञाने शकनरूपपर्यायकालीनायबोधकत्वप्रकारकस्य सत्त्वाल्लक्षणसंगतिः । सवदा शक्रपद शकनरूपार्थबोधकमिति ज्ञानमित्यभूतनयाभासमित्यत्र विस्तरः ।

x

x

x

(२१) ग्रन्थ न० ३२६
ख

प्रमेयरत्नमालालंकार

कर्ता—परिहृताचार्य चातकीर्ति

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

सम्पाद ८॥ इच्छ

चौदाई ६॥ इच्छ

पत्रसंख्या ३७६

प्रारम्भिक-भाग—

भक्त्युद्धं कनमत्सुपाधिपलसत्कोटीरकोटीलसन-
माधिष्याम्बुजबान्धवाशुनिकरस्मेरपिप्रपकेवहम् ।
तत्सादृगुणभृन्मुखातिक्रमसद्योगीन्द्रचित्ताम्बुज
व्यूहामन्ददिवाकरं हृदि सदा श्रीवर्धमानं भजे ॥१॥

पृथ्वीमण्डलमण्डनायितमहाराजाधिराजोत्तम-
 श्रीराजद्विमशीतलक्षितपतेगोष्ठीमते सौगतान् ।
 वाद्यायापततो-मद्वोद्धततया यो वाग्भरैर्जित्वरैः
 जित्वा श्लाघ्यतमोऽभवत्सपदि त वन्देऽकलकं मुनिम् ॥२॥
 यत्सूत्रव्रजचन्द्रिकारसभर नित्यं समास्वादयन्
 भव्योत्तंसलुधीवकोरनिकरस्सर्वोऽपि संमोदते ।
 सोऽयं सार्वपदीनधीतुधमनस्सौधाप्रकेलीशुको
 हर्षं वर्षतु सन्तत हृदि गुरुमाणिक्यनन्दो मम ॥३॥
 जयतु प्रमेन्दुसूरि प्रमेयकमलप्रकाण्डमार्त्तगडेन ।
 यद्वदननिस्सृतेन प्रतिहतमखिल तमो हि बुधवर्गाणाम् ॥४॥
 श्रीचाक्रकीर्त्तिधुर्यस्सन्तनुते पण्डितार्थमुनिवर्यः ।
 व्याख्यां प्रमेयरत्नालङ्काराभ्यां मुनीन्द्रसूत्राणाम् ॥५॥
 माणिक्यनन्दिरचितं कुरुसूत्रवृन्दं

काल्पीयसी मम मतिस्तु तदीयभक्त्या ।

तादृक्प्रमेन्दुवचसां परिशीलनेन

कुर्वे प्रमेन्दुमधुना बुधहर्षकन्दम् ॥६॥

“प्रमाणादर्थसंसिद्धि तदाभासाद्विपर्यय ।

इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्मसिद्धमल्पं लघीयसः ॥”

श्रीमन्न्यायमहाणवस्याखिलप्रमेयरत्नगर्भस्यावगाहनमव्युत्पन्नप्रज्ञै' कर्तुमशक्यमितिमन्य-
 माने श्यायशास्त्रप्रवर्तनशिरोमणिभिर्भङ्गाकलङ्कमुनिभिस्तदवगाहनानय पोतप्राये निखिलवस्तु-
 स्वरूपप्रकाशनप्रवणो प्रकरणप्रणीते तत्रापि मन्दमतीनां दुरवगाहनतामालोच्य कारुणिको
 माणिक्यनन्द्याचार्यः सुस्पष्टं तदर्थं प्रतिपादयितुं परीक्षामुखनामकं सूत्रात्मकं प्रकरणमिदं
 प्रणिनाय । तत्र सम्बन्धामिधेयेऽसाधनत्वकृतिसाध्यत्वानां प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यर्थं अवश्यं
 प्रतिपाद्यत्वात् तत्प्रतिपादकं सकलशास्त्रार्थसंग्राहकं श्लोकमादावचीकथत् ।

× × × × × ×

मध्य-भाग (पूर्वपृष्ठ १३६, पक्ति १०)

ब्रह्माद्वैतवादिनस्तु—सत्तारूपं ब्रह्मैव सर्वसाक्षात्कारि सर्वावच्छिन्नचैतन्याभक्तत्वात् ।
 चैतन्य घटादिसाक्षात्कारित्वे हि घटावच्छिन्नचैतन्याभेद एव घटासाक्षात्कारकाले इन्द्रियद्वारा
 भन्तःकरणवृत्तेर्घटादिविषयदेशगमनेन घटावच्छिन्नचैतन्यस्य रूपांत.करणावच्छिन्नचैतन्येना-

भेदोत्पत्तेः एकदेशस्योपाध्योः भेदकत्वायोगात् गुहावच्छिन्नाकाशे घटावच्छिन्नाकाशे
 घनावच्छिन्नाकाशभेदवत् । मायावच्छिन्नवैश्वान्ये घटावच्छिन्नवैश्वान्याभिन्नरूपं सप्तसाक्षा
 त्कारित्वं च घटस्सन् पन्स्सन् इत्यादि प्रत्यक्षेण गृह्यते । घटस्सन्निति प्रतीतौ घटसतो
 तादात्म्यमानात् । तादात्म्यस्य च भिन्नत्वे सत्यभिन्नसत्ताकत्वस्वरूपेन घटावच्छिन्न
 सत्ताकत्ववैश्वान्याभेदस्य प्रत्यक्षरूपे सति मानात् । न च घटावच्छिन्नभेदस्य प्रत्यक्षगम्यत्वे भागम
 स्याद्वैतबोधकत्व न सम्भवति प्रत्यक्षविरुद्धार्थं भागमस्य प्रामाण्यायोगादिति धार्यम् ।
 प्रत्यक्षं हि सविकल्पकं निर्विकल्पकं चेति द्विविधम् । तत्र चक्षुस्मीलनानन्तरं सप्तमान
 विषयकं निर्विकल्पकं जायते तदेव प्रमाणाभूतं प्रत्यक्षम् । तत्र भेदो न भासते । अप्रमाण
 भूतसविकल्पकप्रत्यक्षे च भेदो भासत इति न तेनागमस्य बाधः । तदुक्तं “अस्ति ह्यालोच
 नाज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम् । बालमूर्खाद्विज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम् ॥ आहुर्विधात्प्रत्यक्षं
 न निषेद्धुं विषयित । नैकत्वे भागमस्तेन प्रत्यक्षेण प्रबाध्यते ॥ प्रत्यक्षं विधात्विधायकं
 सम्मानप्राप्तकमेवाहुः । न निषेद्धुं न निषेधकं न बाधप्राप्तकम् । तेन कारणेन एकत्वे
 प्रतिपादकतासम्भवेन विद्यमानं भागमो न प्रत्यक्षेण बाध्यत इति खोकार्थं । तथा च
 प्रत्यक्षस्यापि सम्मानप्राप्तित्वेन तद्विरोधाभावात् । ‘एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म’ इति श्रुत्याऽद्वैतं
 ब्रह्म सिध्यति । ब्रह्मणोऽद्वैतत्वं च सजातीयविजातीयस्वगतमभेदशून्यत्वम् । तदुक्तम्—
 ‘बृहन्नस्य स्वगतो मेव’ उक्तपुष्पफलादित । बृहन्नन्तरात्सजातीयो विजातीयश्शिलादित ।
 एव भेदतय प्राप्तं भ्रुत्वा ब्रह्मणि वार्यते । एकावधारणद्वैतप्रतिषेधैज्जिभिः क्रमात्” इति ।

×

×

×

×

अन्तिम भाग (पूर्वं पृष्ठ ३७५, पक्ति ५) —

मादृशस्सर्वविध इति—अत्रापि हेयोपादेयतत्त्वयोरित्यनुपपद्यते । मादृशमन्वप्रज्ञस्य हेयो
 पादेयतत्त्वज्ञानार्थं शास्त्रकरणमित्यर्थं । नन्वन्वप्रज्ञस्य कथं महाशास्त्रकरणं उत्तरणो वा
 कथं अन्वप्रज्ञत्वं परस्परविरोधादिति चेन्न पुराचार्यापेक्षया अन्वप्रज्ञत्वस्य विवक्षितत्वात् ।
 आत्मन औद्भत्यपरिहाराय प्रयत्नता तथोक्तिसम्भवाच्च । यद्वा मादृशोवाल इत्यत्र अवाल
 इति पदच्छेदः । एवञ्च शास्त्रकरणेन अनन्वप्रज्ञोऽहं शास्त्रार्थग्रहणे अनन्वप्रज्ञस्य शिष्यस्य
 हेयोपादेयज्ञानार्थमिदं शास्त्रं कृतवानस्मीत्यर्थः ।

इति श्रीमद्दृशिगणप्रागण्यस्य श्रीमद्वैश्वान्युत्तपुरमिवासरसिक्तस्य चारुकीर्त्तिपण्डिताचार्यस्य
 कृतौ परोक्षामुखसूत्रव्याख्यायां प्रमेयरत्नमालालङ्कारसमाख्यायां षष्ठ परिच्छेदः समाप्तः ।

मिथ्यावात्तमभ्युत्थानदिनमयोर्माणिष्यनन्दिप्रमो
 यच्छास्त्रं विमलं विराजितमहायुक्तिमजैर्मासुरम् ।

तद्व्याख्यानमभूत्प्रमेन्दुवचनोदारार्थसंशीलनात्
 किञ्च श्रीगुम्टेश्वरस्य रूपया विन्व्याद्रिचूडामणोः ॥
 श्रीमद्द्वेङ्गुळमध्यभासुरमहाविन्व्याद्रिचिन्तामणि
 श्रीमद्बाहुबली करोतु कुशलं मन्यात्मना सन्ततम् ।
 यत्पादाभ्युरुह सुरेन्द्रमुकुटीमाणिक्यनीराजितम्
 कल्पद्रुमप्रकरायते शुभदृशां पूजां सदा तन्वताम् ॥

बहुत कुछ संभव है कि गीतवीतराग, पार्श्वभ्युदय की टीका, चन्द्रप्रभकाव्य की टीका, भाविपुराण, यशोधरचरित और नेमिनिर्वाण काव्य की टीका* इन ग्रन्थों के रचयिता चारुकीर्ति ही उल्लिखित अर्थप्रकाशिका एवं प्रमेयरत्नमालालङ्कार के प्रणेता हों। चारुकीर्ति यह श्रवणवंदुगोल के पद्याधोशां का परम्परागत नाम है। वहाँ के आधुनिक मठाधीश भी चारुकीर्ति के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इसीलिये विशेष प्रमाण के अभाव में स्पष्टनया लिखना बड़ा दुरूह है कि अमुक चारुकीर्ति ही अमुक प्रथम रचयिता हैं। फिर भी इन ग्रन्थों के वाक्य-विन्यास की ओर ध्यान देने पर उल्लिखित मेरा अनुमान निराधार नहीं कहा जा सकता। साधनाभाव से इस समय इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका। मालूम होता है कि ये दोनों ग्रन्थ “प्रमेयरत्नमाला” के अन्तर्गत जटिल गुत्थियों को सुलझाने के लिये ही प्रणीत हुए हैं। “प्रमेयरत्नमाला” दिगम्बर जैनदर्शन का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अपनी विशेषताओं के कारण कई प्रसिद्ध परीक्षा-सस्थाओं की पाठ्य पुस्तकों में भी यह सन्निविष्ट है। क्या ही अच्छा होता परीक्षामुख-सूत्र पर जितनी ये छोटी मोटी टीकायें उपलब्ध होती हैं वे एकीकरण-रूप में प्रकाशित होतीं। तुलनात्मकदृष्टि से अध्ययन करनेवालों को इसमें विशेष लाभ होता। साथ ही साथ प्रमेयरत्नमाला जो एक गम्भीर ग्रन्थ है इस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता। विद्यालय के अध्यापकों को भी पढ़ाते समय इन सभी टीकाओं का उपयोग करना चाहिये। इससे ग्रन्थगत विशेषता अध्ययनावस्था में ही तुलनात्मक अध्ययन का विचार रखनेवाले विद्यार्थियों को ज्ञात हो जाती। बल्कि श्रीयुत एस० सी० घोषाल, एम० ए० बी० एल० का जैनगजट में “Pareekshāmukham” नाम से जो इस सूत्र का धारावाहिक रूप से अंग्रेजी अनुवाद निकल रहा है उसमें उन्होंने “भवन” की “अर्थप्रकाशिका” एवं “न्यायमणिदीपिका” का जहाँ तहाँ उपयोग किया है। कारणवश उन दिनों मैं आपके पास “प्रमेयरत्नमालालङ्कार” नहीं भेज सका। अस्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन ग्रन्थों के रचयिता चारुकीर्ति जो एक बहुदर्शी एवं संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान थे।

* देखें—“दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ ।”

(२२) ग्रन्थ नं०—२३०
ख

प्रमेयकण्ठिका

कर्त्ता—शान्तिवर्णी

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—८॥ इञ्च

चौडाई—७ इञ्च

पक्षसंख्या ३८

प्रारम्भिक भाग—

श्रीवद्भ मानमानस्य विष्णुं विश्वसृजं हरम् ।

परोक्षामुखसूत्रस्यग्रन्थस्याथ विद्युरामहे ॥१॥

अथ स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणम् बाधातीत नान्यद्युक्ति शतबाधितश्वाद् । ननु स्वापूर्वार्थतिलक्षणो यानि विशेषणान्युपात्तानि तानि निरर्थकानीति चेन्न परंप्रतिपादितानेकद्रूपव्यवाचकत्वेन तेषां सार्थकत्वात् । तथा हि किं तद्द्रूपमनिष्ट रूपं तदनिष्टं “ज्ञानं प्रमाणम्” इत्युक्तेनिर्विकल्पकज्ञानस्यापि प्रामाण्यं स्यादित्यापादानमेवा निष्ठमस्माकं जैनाणां ततस्तन्निवारकत्वेन ध्यवसायविशेषणस्य सार्थकत्वम् । एवमितरेषां विशेषणानां सार्थकत्वं धोऽजनीयम् ।

x

x

x

x

मध्यभाग (पर पृष्ठ १६, पक्षि ६)—

अविसर्वादिज्ञानं सौगतीयं प्रमाणं तदपि न परंप्रतिपादितद्रूपणगणप्रसंगात् । तथा हि अविसर्वादित्वं ज्ञाने ह्य सारकाले ज्ञानानन्तरेणानाध्यत्य तस्य क्वाचिद्द्रुसमेऽपि सम्भवास्तत्रापि प्रामाण्यप्रसंगात् । क्रिञ्चाविसर्वादित्वाभावात् विसर्वादित्वं बाध्यत्वम् । तद्य सतो न सम्भवति स्थितिलक्षणस्येत्यया नङ्गीकृतात् । नाप्यसतो सम्भवादत् । तथा आप्रसिद्धस्य विसर्वादित्वस्याभावात् कथं निरूपणीयातिप्रसंगात् । सतो विसर्वादिज्ञानं प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणमविचारितरमणीयमेव ।

इति शान्तिवर्णिविरचितायां प्रमेयकण्ठिकायां द्वितीय स्तवकः ।

अन्तिम भाग—

श्रीशान्तिवर्गिविरचिताया प्रमेयकण्ठिकाया पञ्चमः स्तवकः समाप्तः ।

प्रमेयकण्ठिका जीयात्प्रसिद्धानेकसद्गुणा ।

लसन्मार्त्तगुडमाप्राज्ययोवराज्यस्य कण्ठिका ॥

सनिष्कलङ्कं जनयन्तु तर्के वा वाधितर्का मम तर्करत्ने ।

केनानिग ब्रह्मरुतः कलङ्कश्चन्द्रम्य किं भूषणकारणं न ॥

इस प्रमेयकण्ठिका क प्रणयन-द्वारा श्रीशान्तिवर्णी जी ने माण्डव्यनन्दिकृत परीक्षामुख-सूत्र के आधार पर अन्यान्य सांख्य, सांगत, भाट्ट एवं प्रभाकरादि दार्शनिकों के प्रमाणलक्षण आदि सर्वोप सिद्ध किये हैं । गुरुपरम्परा एवं गण गच्छादि की चर्चा इस ग्रन्थ में नहीं होने क कारण शान्तिवर्णी जी क विषय में अभी कुछ कहना असम्भव है । इसमें पाँच स्तवक है । ग्रन्थ में अपने दार्शनिक सिद्धांत का मराडन तथा ग्रन्थ मत का रगडन है । रचना-शली परिष्कृत है ।

(२३) ग्रन्थ नं० ३३१
ख

शृंगारार्णवचन्द्रिका

कर्ता—विजयवर्णी

विषय--अलङ्कार

भाषा—संस्कृत

लगाई—८॥ इच्छ

चाँडाई—७ इच्छ

पत्रसख्या १०६

प्रारम्भिक भाग—

जयति ससिद्धकां शालापपभाकरेभ्यम् (?)

घट्टगुणयुतजीवन्मुक्तिपंम् ।

रशामोमानमिक्कागरभ्यो—

जिनपतिरुत्तमश्वाहसुर्नानि (?) ३२२ ॥१॥

भ्रमन्वानन्दसन्दोहपीयूषरसादायिनीम् ।
 स्वधीमि शारवां दिव्यां सञ्ज्ञानफलशास्त्रिणीम् ॥२॥
 समन्तभद्रादिमहाकधीश्वरं कृतप्रबन्धोऽज्वलसत्सरोवरे ।
 लसद्रसालं कृतिनीरपंकजे सरस्वती क्रीडति भावबंधुरे ॥३॥
धीमद्विजयकीर्त्तिसौन्दोहसूक्तिसन्दोहकौमुदी ।
 मदीय चात्मसन्ताप हृत्त्वानन्दं ददा त्वरम् ॥४॥
धीमद्विजयकीर्त्याख्यगुह्यराजपर्वबुजम् ।
 मदीयचित्तकासारे ह्येयात्संशुद्धधीजले ॥५॥
 मलयानिलसंकाशो गुणसौरमवद कः ।
 सन्तापहृद्भगानन्दं ह्युजनो जीवताश्चिरम् ॥६॥
गुणवर्मादिकर्नाटकवीनां सूक्तिसञ्चयः ।
 धीयोविलास संवेयात् रसिकानन्ददायिनीम् ॥७॥
 राजनीतिमहाशास्त्रनिकपितफलप्रदाम् ।
 नानातन्त्राककासारनदीवर्गविभूषिताम् ॥८॥
 सं दे पुरसंकाशनानानगरभासुराम् ।
 जिनराजमहाधर्मभावकोत्तमराजिताम् ॥९॥
 अष्टादशमहाधेयोभूषितां धीमतीतराम् (१) ।
 पश्चिमार्णवपथन्तां दशां स्वयद्युत्तराम् ॥१०॥
 धीमद्भरतराजेन्द्रनामचक्रधरोपम ।
धीवीरजरसिंहाख्यबंगमूर्धोश्वरो महान् ॥११॥
 पालयत्यमलां बंगवाडीपुरसमन्विताम् ।
कादम्बवंशजनितानेकमूर्धोशपालिताम् ॥१२॥
 तस्यानुजो शुणा दी पाण्ड्यनरेश्वरः ।
 सत्येन रामचन्द्रोऽमूढमैत्र्य भरतेश्वरः ॥१३॥
 रत्नत्रयमहाधमरत्नको राजशेखरः ।
 महाकविजनस्तूपन् (१) मानसत्कीर्त्तिजायकः ॥१४॥
 सौऽपि धीपाण्ड्यबंगोऽयं जिनपादाग्निप्रदम् ।
 अनुक्रमगतां भूमिं पूर्वार्त्तां रत्नतिस्म वै ॥१५॥
 तस्य धीपाण्ड्यवंगस्य भागिनेयगुणाण्यव ।
निह्लाम्या महान्त्रेऽपि पुत्रो राजेन्द्रपुत्रितः ॥१६॥

श्रीकामरायम्बगोऽभून्नाम्ना नृपतिकुञ्जरः ।
 वैरिसन्दोहगन्धेभघटाकरणीरवोपम' ॥१७॥
 क्रमागतामिमां भूमिं पश्चिमाम्भोधिभूषिताम् ।
 श्रीकामिरायबगेन्द्र' पालयत्यमलश्रियम् ॥१८॥
 सराजकां गोष्ठीषु सभाजनविभूषितः ।
 अपृच्छद्वितीय (१) नाम्ना कविताशक्तिभासुरम् ॥१९॥
 काव्यस्य लक्षणा किम्वा वर्णाशुद्धिश्च कीदृशी ।
 रसभावौ कथम्भूतौ ते नृभेदाश्च कीदृशाः ॥२०॥
 कीदृश्यलङ्कृती रीति' कीदृग्वृत्तिश्च कीदृशी ।
 कीदृन्दोषो गुणो कीदृक् पृच्छतिस्मेति मां नृपः ॥२१॥
 इत्थं नृपप्रार्थितेन मयाऽलङ्कारसंग्रह' ।
 क्रियते सूरिणा(१) नाम्ना शृङ्गारार्णवचन्द्रिका ॥२२॥

× × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ ३६, पक्ति २)

सुकुमारत्वमौदार्यः श्लेष' कान्ति' प्रसन्नता ।
 समाधिरोजोमाधुर्यमर्थव्यक्तिस्तु साम्यकम् ॥४॥
 पते दशगुणाः प्रोक्ता दश प्राणाश्च भाषिताः ।
 यथासंख्यं मया तेषां लक्षणं प्रतिपाद्यते ॥५॥
 श्रुतिचेतोद्वयानन्दकारिणां कोमलात्मनाम् ।
 वर्णानां रचना-न्यासः सौकुमार्यं निरूप्यते ॥६॥
 श्रीरायवगदितिनायकस्य कीर्त्तिर्विशाला धरचन्द्रिकेव ।
 न चेत्त्रिलोकीजनचित्तजात सन्ताप-जालं क्व निराकरोति ॥७॥
 अर्थव्याख्यगमक, पदान्तरविराजितम् ।
 पदानां यदुपादानं तदौदार्यं मतं यथा ॥८॥
 शब्दानामभिधेयानां गुणोत्कर्षा यथाथवा ।
 तदौदार्यं मतं लोके तदुदाहरणं यथा ॥९॥
 कादम्बनाथस्य मदान्धशूरत्तोष्णीधरोत्तुंगमहागजेन्द्र' ।
 दिग्दन्तिनैरावतनामकेन स्पर्धां विधत्ते जगद्भुतोऽस्तौ ॥१०॥
 परस्परं प्रयुक्तानि स्यूतानीव पदानि वै ।
 निषिद्धानि प्रवर्त्तन्ते यत्र स श्लेष उच्यते ॥११॥

यस्योद्युद्गविशाळकीर्त्तिसरं द्रुप्वा जगन्मोदते
 क्षीराग्निर्दिग्भिर्भौ(?) महाघवल्लिमा ध्योमापगा बन्धुरा ।
 नानाकारविचित्रशारदमहामेघावलीप्रोल्लसत्
 कैलाशाचलभूरिसारमिति का मत्वा(?)जगज्जम्भितम् ॥१२॥

× × × ×

अन्तिम भाग :—

निर्वेपे सगुणे काव्ये सालङ्कार रसान्विते ।
 रायवगमहीनाथ तव कीर्त्ति प्रवतताम् ॥११४॥
 स्याद्वाद्बध्मपरमामृतदत्तचित्त सर्वोपकारिजिननाथपद्मवज्रभृ ग ।
 फादम्भवशजलपशिसुधामयूख श्रीरायवगनूपतिर्जगतीह जीयात् ॥११५॥
 गर्वाकृद्धपिपसद्बलसघाताद्भुतादम्बर
 मन्द्रोद्भूर्जनघोरनीरदमहासन्दोहकफानिल ।
 प्रोद्यद्भानुमयूखजालविपिनघातानलज्वालसह
 दृश्योद्भासुरवीरविक्रमगुणस्ते रायवंगोद्भव ॥११६॥
 कीर्त्तिस्ते विमला सदा परगुणा धार्यो जयधीपरा
 लक्ष्मी सर्वहिता सुखं सुरसुख दान विधान महत् ।
 ध्यान पीनमिदं पराक्रमगुणस्तुद्गो नय कोमल
 रूप कान्ततरं जयन्तमिव(?) भौ श्रीरायमूमोक्षवर ॥११७॥

इति परमजिते द्रयद्वन्द्विचन्द्रविनिगतस्याष्टावचन्द्रिकाचकोरधिजयकीर्त्तिमुनीन्द्रचरणाम्भ
 चञ्चुरीकविजयवर्षिणिविरचिते श्रीवीरनरसिंहकामिपयनरन्द्रशरदि तुसन्निभकीर्त्तिप्रकाशके
 शृङ्गाराण्यचन्द्रिकानाम्नि अलङ्कारसंग्रहे दोषगुणनिर्णयो नाम दशम परिच्छेद समाप्त ।

सुप्रसिद्ध प्राचीन अलङ्कारग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' की तरह इस में भी भिन्न भिन्न नाम
 के निम्नलिखित दश परिच्छेद हैं पर है यह स्वतन्त्र पर सरल अलङ्कार-ग्रन्थ.—

(१) वष गण-फल निणय (२) का-प्रगत शब्दाय-निर्णय (३) रस-भाव-निर्णय (४)
 नायक भेद-निणय (५) दश-गुण निर्णय (६) रीति-निणय (७) वृत्ति निणय (८) शय्या-भाग
 निणय (९) अलङ्कार-निणय (१०) दोष-गुण-निर्णय ।

मगलाचरण के पाँचवें श्लोक से ज्ञात होता है कि इस 'शृङ्गाराण्यचन्द्रिका' के प्रणेता
 विजयवर्षी विजयकीर्त्ति के शिष्य थे । किन्तु इन विजयकीर्त्ति के संग्रह में साधनाभाव

के कारण इम समय कुछ भी नहीं लिखा जा सका। दक्षिण कन्नड जिला में शासन करनेवाले जैनराज-वंशों में वगवज तुलु राज्य में सर्वमान्य सम्मान प्राप्त किये हुआ था। यह सम्मान आज भी इम वंश को प्रर्वचन प्राप्त है। गालिवाहन शक १०७९ (ई० सन् ११५७) के पहले का इम वंश का कोई विश्वस्त परिचय नहीं मिलता। वगवज के मूल चरित्र के सम्बन्ध में पंतिहासिक विद्वानों में मतभेद है। इसीलिये गालिवाहन शक १०७९ (ई० सन् ११५७) में इम वंश का प्रामाणिक चरित्र वीरनरसिंह वगराज से प्रारंभ होता है। वलिक इम चरित्र में किसी को कोई आपत्ति भी नहीं है। मैसूर में जो गगवंज चिरकाल तरु शासन कर चुका है वही यह वगवज माना जाता है। वास्तव में 'गग' और 'वग' इन नामों में अक्षर-साध्य स्पष्टतया प्रतीत होना ही इसके पकीकरण का समर्थन करता है।

इनके वंशज पहले मैसूर प्रांतान्तर्गत गगवाडि नामक स्थान में दीर्घकाल तक राज्यशासन करने लगे। पीछे होयिसळ राजा विष्णुवर्द्धन के द्वारा युद्ध में इन वीरनरसिंह के प्रज्यपिता चन्द्रशेखर के मारे जाने पर वहाँ का राज्यशासन-सूत्र विष्णुवर्द्धन के हस्तगत हुआ। उनके बाद स्वर्गीय चन्द्रशेखर के शुभ-चिन्तक मन्त्री पुरोहित आदि इनके पुत्र वीरनरसिंह को लेकर कुछ काल तक मलेनाडु में छिप-लुके कर जीवन बिताते रहे। पश्चात् विष्णुवर्द्धन के लोकान्तरित होने पर ये निर्भीक होकर पश्चिम-घाटी में उतर कर वगवाडि (दक्षिण कन्नड जिला) में आकर रहने लगे। ध्यान होता है कि 'गग' 'वग' के नामानुकूल ही क्रमशः इनकी राजधानी का नाम गगवाडि पत्र वगवाडि रखा गया था। वास्तव में बाद की यह वगवाडि उनकी पूर्वराजधानी गगवाडि की याद दिला रही है।

अन्तु, एक समय विष्णुवर्द्धन के पुत्र त्रिभुवनमल्ल अपनी प्रजाओं की देख-रेख करने के निमित्त जब दक्षिण कन्नड जिला में आये तब वह वगवाडि भी गये। इस सुअवसर को पाकर मन्त्री पुरोहित आदियों ने राजकुमार को उक्त त्रिभुवनमल्ल के समक्ष उपस्थित कर दिया। इन्होंने इम राजकुमार को होनहार देख पत्र प्रसन्न हो इन्हें उस प्रांत का शासक बनाकर अपने ही नामानुसार इनका नाम भी वीरनरसिंह रखा। इनका भी पूरा नाम त्रिभुवनमल्ल वीरनरसिंह ही था। यह बातें वगचरित्र आदि पुस्तकों में विस्तृतरूप से प्रतिपादित हैं।

गालिवाहन शक ११३० (ई० सन् १२०८) में इन वीरनरसिंह का पुत्र चन्द्रशेखर वग सिंहासनान्तर हुए। इनके बाद गालिवाहन शक ११४७ (ई० सन् १२२४) में इनके छोटे भाई पागडवय वग शासन हुए। इनके बाद गालिवाहन शक ११६२ (ई० सन् १२३९) में इनकी धरुन विट्टलादेवी राज्यशासन की सञ्चालिका नियत हुई। तत्पश्चात् गालिवाहन

शक ११६६ (ई० सन् १२६४) में इनका पुत्र प्रथम कामरायबंग राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इन्हीं की प्रेरणा पद्य प्रायना से श्रीमान् कविवर विजयवर्णी जी ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। उल्लिखित ये ऐतिहासिक बातें इनकी प्रतिपादित राजपरम्परा-वर्णन से भी अन्तरा मिलती हैं। इस अलंकार ग्रन्थ में गुण रीति दोष पद्य अलङ्कारादि के लक्षणों के जितने उदाहरण दिये गये हैं वे सभी अपने प्रेरक कामराय बंग के प्रशंसा-परक पद्यमय हैं। कवि के 'धीधीर-नरसिंह-कामरायबंगनेन्द्रशरदि दुसधिमकीर्त्तिप्रकाशके शृङ्खलार्याव चन्द्रिकानामि अलङ्कारसंग्रहे" इस अन्तिम वाक्य से भी उक्त राजा का प्रशंसा-परक काल्य लिखना ही सिद्ध होता है। कवि वर्णी जी प्रारम्भिक सातवें पद्य में सुप्रसिद्ध कन्नड़ कवि गुणवर्मा का भी स्मरण करना नहीं भूले हैं। इन्हीं के प्रारम्भिक अन्यान्य कई पद्यों से षगवादि की प्राचीन समृद्धि स्पष्ट मलकती है। बारहवें पद्य से कदम्बरराजवंश भी इस प्रांत का शासक रह चुका है—यह बात पुष्ट होती है। ग्यारहवें से १७वें तक के पद्यों में वीरसिंह पांड्यवंश पद्य कामराय की विशेष रूप से प्रशंसा की गयी है। वर्णी जी ने इस ग्रन्थ के कई पद्यों में छन्दोभंग न हो इस लिहाज से 'धीराय 'रायराट्' आदि संक्षिप्त संकेतों के द्वारा ही अपने आश्रयभूत कामराय का उल्लेख किया है। १९५ के पद्यगत "कादम्बरवंश-जलराशिशुधामयूख" इस कथन से तो यह बंगवंश 'गंग वंश न होकर 'कदम्ब' का वंश होता है—यह बात अवश्य विचारणीय है।

(२४) ग्रन्थ न० २३५
ख

त्रैवर्णिकाचार

कर्ता—श्रीधरसाहू

विषय—आवकाचार

भाषा—संस्कृत

सम्बाई १७ इन्च

चौडाई ७ इन्च

पत्रसंख्या ५१

प्रारम्भिक भाग—

अयोध्यते निरर्णानां शौचाचारविधिक्रम ।

शौचाचारविधिप्राप्तौ देहं संस्कृतमुदसि ॥१॥

संस्कृतो देह ध्वासौ दीक्षणाद्यभिसम्मतः ।
 विशिष्टान्वयजोऽप्यस्मै नेष्यतेऽयमसंस्कृतः ॥२॥
 असंस्कृता सुभूमिश्च नहि शस्यप्रवृद्धये ।
 सुवस्तुनिर्मितादशौ मलसद्गान्निहीक्ष्यते ॥३॥
 दीक्षणा जिनदीक्षात्र ततोहि परम तपः ।
 ततो दुष्कृतिनाशः स्यात्ततो हि परम सुखम् ॥४॥
 सुख वाञ्छन्ति सर्वेऽपि जीवा दुःख न जातुचित् ।
 तस्मात्सुखैषिणो जीवा संस्कारायाभिसम्मताः ॥५॥
 शौचमाचारवारोऽपि संस्कार इति भाषितः ।
 अस्मादेव वहिश्शुद्धिरदिता गृहचारिणाम् ॥६॥
 अन्तश्शुद्धिस्तु जीवानां भवेत्कालादिलब्धिता ।
 एषा मुख्यापि संस्कारे बाह्यशुद्धिरपेक्ष्यते ॥७॥
 बीजस्याङ्कुरशक्तिस्तु विद्यमानापि वृद्धये ।
 सुभूमिलेखातोयादिबाह्यहेतुरपेक्ष्यते ॥८॥
 देहद्वारविशुद्धिश्च स्नानमाचमनादिकम् ।
 सूतकाद्युपशुद्धिश्च शौचमित्यत्र भाषितम् ॥९॥
 आचारो बहुधा प्रोक्तो गर्भाधानादिभेदतः ।
 वक्ष्यतेऽसाविदानीन्तु शौचस्य विधिरुच्यते ॥१०॥
 x x x

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ २२, पंक्ति ४) —

अथ नत्वा जिनाधीशमनघ विश्ववेदिनम् ।
 ब्राह्मणादिविचर्यानामघभेदोऽभिधीयते ॥
 इज्यादि कर्म घटते नास्मिन्निति निरुच्यते ।
 अग्रमाशौचशब्देनाप्येतदेवाभिलष्यते ॥
 चतुर्विध भवेदेतद्वार्तवादिभिभेदतः ।
 आर्तव सौतिकं आर्तं तत्ससर्गजमित्यपि ॥
 आर्तव पुष्परजसि ऋतुश्चेत्यभिधीयते ।
 प्रकृत विकृत चेति स्त्रीणां तद् द्विविध भवेत् ॥
 मासे मासे समुद्भूत प्रायः प्रकृतमुच्यते ।
 द्रव्यरोगादिभिर्जातमकाले विकृत रजः ।

कालजे व्यहमाशौचं तद्भ्रजोदशनात्परम् ।

अथरात्रात्परं तच्चवेत्प्रभाताद्यधमिष्यते ॥

× × ×

अतिम भाग —

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वाणप्रस्थश्च मित्तुक ।

इत्याधमास्तु घत्वारो जैनानामागमोदिता ॥

तत्रोपनयादारभ्य समावतनपयन्तमुपनयनब्रह्मचारी । स्त्रीसेवा कुर्वाणो जुगुप्सया गुहसमन्ने
तन्निवृत्त आलम्बनब्रह्मचारी । विद्याहपूर्वकं निबुधनगरिप्रहारभ्मादिक्रियाप्रवृत्तो गृहस्थ ।
परिग्रहानुमत्पुद्गिनिवृत्ता वाणप्रस्था । वैराग्यदीक्षितो महाप्रतो मित्तु । इत्याधमल
क्षणम् ।

आदायाचारवाधिश्च सम्यग्ब्रह्मयुद्धप्रवृत्तामिराम (१)

मन्त्रं सेव्यो यर्षिभिर्वन्द्यमान यास्यत्यतो (१) ब्रह्मसौरास्यद तत् ॥

इति ब्रह्मसूत्रि विरचिते जिनसंहितासारोद्दारे प्रतिष्ठा (१) तिलकनाम्नि त्रैयर्षिकाचार्ये
(संप्रदे) गर्भाधानादिविवाहपयन्तकर्मणां मन्त्रप्रयोगो नाम पञ्चम पर्व समाप्तम् ।

इस त्रैयर्षिकाचार के कर्ता श्रीब्रह्मसूत्रि हैं । इसमें इन का कोह आत्मपरिचय नहीं है
किंतु इन्हीं के प्रणीत 'प्रतिष्ठासारोद्धार' नामक प्रतिष्ठा-ग्रन्थ में जो इनका परिचय उपलब्ध
होता है—वह इस प्रकार है —

पाण्ड्य देश में गुडिपत्तन नामका एक द्वीप था । वहाँ का शासक पाण्ड्य नरेन्द्र
था । यह वड़ा ही धर्मात्मा शूरवीर कला-कुशल और परिश्रमसेवी रहा । वहाँ घृषभ
तीर्थङ्कर का एक मनोह रत्न एक सुवर्णप्रणित मन्त्र था; उसमें विशाखनन्दी आदि अनेक
परम विद्वान् मुनिगण निवास करते थे । इसके बाद यह आगे सुप्रसिद्ध पुण्य-प्रयेता
जिनसेनाचार्य की आचाय परम्परागत गोविन्दमठ को ही अपना पूवपुरुष व्यक्तकर निम्न
रीति से अपनी वंशपरम्परा का उल्लेख करते हैं —

उक्त गोविन्दमठ के श्रीकृष्ण, सत्यवान्य देवखल्लम उदयभूषण हस्तिमल्ल और
यद्गमान नाम के छ लड़के थे । प्रख्यात कवि हस्तिमल्ल का पुत्र परिश्रम पाण्ड्य भी थे ।
यह अपने पिता के समान ही यशस्वी, धर्मात्मा एक शालमर्मज्ञ विद्वान् थे । पीछे यह
पाण्ड्य परिश्रम वशिष्ठ काश्यपादि गौतम अपने धनुषा-धर्या के साथ ह्योषिसल्ल देश में
जाकर रहने लग । यह ह्योषिसल्ल राजराज पश्चिमी घाटी की पहाडिया म कूर जिले के

मथुरागिरि तालुक में अङ्गुडि नामक स्थान से प्रादुर्भूत हुआ था। इसीका प्राचीन नाम गणकपुर रहा। यहाँ पर सल्ल नाम के सामन्त ने व्याघ्र से एक जैन मुनि की रक्षा करने के कारण पौयिसल्ल (होयिसल्ल) नाम प्राप्त किया। विद्वानों का कहना है कि प्रारम्भ में यह वज्र पहाड़ी था, पीछे विनयादित्य के उत्तराधिकारी बल्लाल ने अपनी राजधानी गणकपुर से चेलूर में हटा ली। द्वारसमुद्र (हल्लेवीडु) में भी उनकी राजधानी थी। इस वज्र के विष्णुवर्द्धन के समय में होयिसल्ल नरेशों का प्रभाव बहुत ही बढ़ गया था। इसी समय गगवाडि का पुराना राज्य भी सब उनके अधीन हो गया था और उन्होंने कई प्रदेशों को विजय-द्वारा हस्तगत कर लिया था। प्रारम्भ में विष्णुवर्द्धन जैन रहा, किन्तु पीछे बंगाल हो गया था। पर फिर भी इनकी तथा इनके परिवार-वर्ग की जैनधर्म से सदा मञ्जी सहानुभूति रही। होयिसल्ल राज्य पहले चालुक्य साम्राज्य के अन्तर्गत था, बाद नरसिंह के पुत्र वीरबल्लाल के समय में यह राज्य स्वतन्त्र हो गया। यह वज्र सत्रा से जैनियों का प्रधान पृष्ठ-पौषक रहा।

उल्लिखित राज्य की राजधानी ग्रन्थरुक्ता ब्रह्मसरि जी ने 'कृत्र-व्यपुरी' लिखा है। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों से इस वज्र की राजधानी सिर्फ तीन स्थानों में ही सिद्ध होती है, जिनके नाम क्रमशः (१) गणकपुर (२) चेलूर (३) और द्वारसमुद्र या हल्लेवीडु है। पता नहीं कि सरि जी द्वारा निर्दिष्ट कृत्रव्यपुरी कहाँ थी और कब इस राज्य के अन्तर्भूत हुई। संभव है कि द्वारसमुद्र को ही उन्होंने कृत्रव्यपुरी लिखा हो। क्योंकि एक जमाने में यह द्वार-समुद्र जैनियों का केन्द्र सा बन गया था। बल्कि कहा जाता है कि उन दिनों वहाँ माढे मात मां भव्य जिनमन्दिर थे और वैष्णव धर्म स्वीकार करने के बाद विष्णुवर्द्धन ने ही इन भव्य मन्दिरों को तहस-नहस कर दिया। वहाँ के जिनमन्दिरों के घुसावगोप से भी यह पता चलता है कि उल्लिखित घटना वास्तविक है। अब हल्लेवीडु में केवल आदिनाथ, शान्तिनाथ एवं पार्ष्वनाथ तीर्थङ्कर के तीन ही मनोह्र मन्दिर रह गये हैं, जो भारतीय शिल्पकला के आदर्शभूत बने हुए हैं। कविवर हस्तिमल्ल जी के सुपुत्र निर्दिष्ट पार्ष्वपरिडित के चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वज्रय नामक तीन पुत्र थे। इनमें चन्द्रनाथ और इनके परिवार पीछे हेमाचल (होन्नुह) में जा बसे। अवशिष्ट दो भाई भी अन्यान्य स्थानों में जाकर बस गये। चन्द्रप के पुत्र विजयेंद्र हुए और इन्हीं के सुपुत्र इस त्रयणिकाचार ग्रन्थ के प्रणेता परिडित ब्रह्मसूत्रि जी हैं।

सरि जी ने पर्वतक प्रतिष्ठाग्रन्थगत अपनी वज्र-प्रशस्ति में अपने पर्वजों का निवास-स्थान पाराड्य देशान्तर्गत 'गुडिपत्तन द्वीप' बतलाया है। वर्तमान तजोर जिलान्तर्गत 'द्वीपनगुडि' का ही यह प्राचीन 'गुडिपत्तन द्वीप' होना बहुत कुछ सम्भव है। मालूम होता है कि

लेखक की कृपा से ही 'दीपन' का 'द्वीप' लिखा गया है। क्योंकि वहाँ पर द्वीप का होना किसी तरह से सिद्ध नहीं होता। इस स्थान में जैनियों का प्रभाव अच्छा रहा है।

जैन समाज के कुछ विद्वान् इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मानने के लिये सहमत नहीं हैं। क्योंकि उनका कहना है कि जैन सिद्धान्त के प्रतिकूल आक्षेप तथा गो-दान आदि कथित बात इस में विधिरूप में पायी जाती हैं। उन विद्वानों का कहना है कि ब्रह्मसूरि जी के मूल पूज्य हिन्दू धर्मावलम्बी थे—इससे इनके रचे ग्रन्थ पर हिन्दुत्व की छाप पड़ गयी है। कुछ विद्वान् इस आक्षेप का उत्तर यह देते हैं—प्रत्येक धर्म पर देश काल आदि का बिना प्रभाव पड़े नहीं रह सकता इसलिये इस अनिवार्य नियमानुसार बहुत कुछ सम्भव है कि बहुसंख्यक हिन्दू समाज में अपनी सत्ता कायम रखने और हिन्दुओं से सदाबुद्धि प्राप्त करने के लिये तात्कालिक कुछ जैनग्रन्थ-कर्त्ताओं को कुछ आचार ग्रन्थों में आपद्धम के रूप में उनका उद्देश जैनधर्मके अनुकूल बता कर स्थान देना पडा होगा।

(२५) ग्रन्थ नं० २९०
ख

रत्नमञ्जूषा

कर्त्ता— X

नियम छन्द

भाषा—संस्कृत

लम्बाइ ८। इञ्च

चौडाइ ६।।। इञ्च

पलमल्या ६५

प्रारम्भिक भाग—

यो भूतमपमरदर्यययार्थवेद् देवात्सुखन्दमुकुटार्थितपदपय ।

विद्यानदीप्रमपवत एव एव त दीपान्दमपगण प्रणाममि धीरम् ॥

मायाका—मायाका इत्यस्य सप्तगुणत्विनस्य आकारः रुज्ञा भवति ककारो वा स्वरोन्त्यस्तदन्तस्य व्यञ्जनं चेतियचनात् । त्वचिमुखिया इत्याकारस्य भद्रविराट्त्विकिर इति ककारस्य । अत्रैव माया इति गुणद्वयस्य यकारः रुज्ञा भवति व्यञ्जनञ्च तदन्तस्येति यचनादेशाद्यिविति । पुनश्च त्रैव मा इति गुणत्रयस्य मकारः रुज्ञा भवति । इत्यर्थः च

तदन्तस्थेति वचनादेव । म इति अक्षरे एकस्मिन्नप्याद्यन्तवद्भावात् । सयोगे नपिमिति ।
अत्राह—नत्वाकाराद्यस्तेपामेवाक्षराणां रुक्ता यथा वृद्धिरादौजिति वृद्धिसङ्गा तेषामेवाक्षराणां
इति न तद्रूपसङ्गाकरणे प्रयोजनाभावात्तन्मात्राणाम् । यान्यत्र तेषु त्रिकेष्वक्षराण्युपदिष्टानि
तेषां सङ्गाकरणानि प्रयोजनमितितन्मात्राणां सर्वासां सङ्गास्ता प्रत्यवगन्तव्याः । अथवा
शालिनि मालयेदित्यत्र छेदवचन ज्ञापकमन्त्रेषां इति तन्मात्राणां सङ्गा इति । अदि तेषामेव
सङ्गा मायाका इति छेदवचनमनर्थकं भवति तस्मात्तन्मात्राकरणमेव ।

X X X X

मध्य भाग (पृष्ठ ५६ पक्ति ३०)

उपेन्द्रवज्रा णरे—यदि णरे इति न्यासो भवति, भवति उपेन्द्रवज्रा नाम ।

उपेन्द्रवज्रायुतपाराडवेषु स्थितेष्वपि रुपातपराक्रमेषु ।

पुराभिमन्यु यदि चेज्जयेनां जगद्भ्यो रक्षति कङ्कमन्यः ॥

इन्द्रमाला द्वयम्—यदीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रो सहैकस्मिन् श्लोके भवतः, भवति इन्द्रमाला नाम ।

अम्लानमाला सुरसुन्दरीभि वृतेन्द्रमाला चप्रवते दिवश्चेत् ।

कालेन नार्या इव भुक्तमाला मर्त्या वय कि जलबुद्बुद्वाभा ॥

दोधक लुपे—यदि लुपे इति न्यासो भवति, भवति दोधक नाम ।

कालविधाविव नाटकवृत्त दर्शयितु भुवि सर्वजनेभ्यः ।

अम्बररगमसौ गिरिकूटात् सूर्यनटः प्रविशन्निव भाति ॥

रथोद्धता तिलौ—यदि तिलाविति न्यासो भवति, भवति रथोद्धता नाम ।

सर्वभावविधितत्त्वदर्शिन सर्वसत्त्वहितधर्मदेशिन ।

अर्हतोऽहमधरागिनागिन सस्तुवे त्रिभुवनप्रकाशिनः ॥

स्वागता तिले—यदि तिले इति न्यासो भवति, भवति स्वागता नाम ।

∴ धर्मतीर्थकरमुख्य नमस्ते नाथ नष्टभवबीज नमस्ते ।

वद्धसर्वजनवृत्त नमस्ते हेमनाभजिनमान नमस्ते ॥

X X X X

अन्तिम भाग ।—

एकद्वयादिलगक्रियांकसमसख्यानेषु कोष्ठान्तरे-

ष्वेकादीन्द्रिगुणानयो विरञ्जयेत्तांश्वोर्ध्वमेकोनकान् ।

इत्यन्तावधिमेहरेप महित स्याद्धर्ममानाह्वय

कुन्दस्वेकलगादिवृत्तजननस्थान त्विह क्षायते ॥९॥ -

एकद्वयादिलगक्रियासगणानामानप्रमाणालयै
 मरुक्षमाधरवद्विरच्य खटिकोत्कीर्णरथाद्यालये ।
 वृत्त 'यस्य तदादिम द्विगुणयस्तस्याप्यध' स्थापये
 देकोनेन तदोपरि पगिलिखेदेव हि मैरक्रिया ॥१०॥

खण्डमेरुप्रस्तारो यथा—

सैकामेकगणौग्ज्वलामभिमतच्छन्दोऽत्तरागारिका
 मेकां धीणिमुपत्तिपन्नधरतोऽन्येकैकहीनाश्च ता ।
 ऊर्ध्वं द्विद्विपूर्वाममेलनमधोध' स्थानकेष्यालिखे
 देकच्छन्दसि खण्डमेरुमल पुनागचन्द्रोदित' ॥११॥

एतत्पद्योक्तक्रमेण प्रस्तारे कृते विवक्षितछन्दस' लगक्रियया सह तत् पूर्वस्थितसकल
 छन्दसां लगक्रिया' सर्वा' समापयन्तीत्यथ ॥

इनके नीचे प्रचार के तीन कोष्ठक भी हैं)

विगम्बर जैन साहित्य-भाण्डार में छन्दोग्रन्थ-सम्बन्धी अजितसेन के छन्द'शाला
 वृत्तवाद् एव छन्द'प्रकाश आशाधर के वृत्तप्रकाश चन्द्रकीर्ति के छन्द'कोप (प्राकृत) एवं
 वागम' के प्राकृतपिङ्गल सूत्र ये ही नाम मिलते हैं । परन्तु इन में अभीतक कोई ग्रन्थ
 मुद्रित नहीं हुआ है । अब रही प्रस्तुत पुस्तक 'रत्न मञ्जूषा की बात । पं० नाथूराम जी
 प्रेमी के द्वारा संगृहीत "विगम्बर जैनग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ" इस ग्रन्थतालिका में
 इसके कर्ता हेमचन्द्र कवि बतलाये गये हैं । परन्तु इस छन्दोग्रन्थके अन्तिम भाग के अन्तिम
 श्लोकान्तगत 'पुनागचन्द्रोदित' इस वाक्य से तो ज्ञात होता है कि पुनागचन्द्र या
 नागचन्द्र ही इसके प्रयोक्ता हैं । प्रेमी जी के कथनानुसार अगर इस 'रत्नमञ्जूषा' के रचयिता
 हेमचन्द्र कवि होते तो 'पुनागचन्द्रोदित' के स्थान पर बड़ी आसानी से 'धृद्धिमचन्द्रोदित'
 लिख देते । क्योंकि पसा करने से छन्दोमग का उन्हें जरा भी भय नहीं रह जाता था ।
 साधनाभाव से इस समय इसके कर्ता के बारे में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका ।
 यदि थोड़ी देर के लिये अर्थात् प्रेमी जी ने किस आधार पर इस का कर्ता हेमचन्द्र कवि
 लिखा है—यह बात जब तक स्पष्ट नहीं होती तब तक के लिये नागचन्द्र को ही इसका
 प्रयोक्ता माना जाय तो महाकवि धर्मजय वृत्त विपापहार स्तोत्र के संस्कृत टीकाकार कवि
 नागचन्द्र* की ओर मेरी इष्टि कुछ कुछ आकृष्ट हो जाती है । पर यह एक अनुमान

मात्र है। जब तक इस सम्बन्ध में कोई सबल प्रमाण नहीं मिलता है तबतक इसे कोई मानने को तैयार क्योंकर हो सकता है ?

अब रहा इस छन्दोग्रन्थ का विषय। यह ग्रन्थ छोटे छोटे आठ अध्यायों में विभक्त है। इस प्रति की मैसूर राजकीय 'प्राच्यपुस्तकालय' से मैंने ही कन्नड लिपि से नागराक्षर में प्रतिलिपि कराई थी। इसके अष्टम अध्याय का कुछ अग्र लुप्त सा ज्ञात होता है। इस लुप्तांश के बाद ही तीन पृष्ठों में मेरुसावन्धी प्रस्ताव के पद्यबद्ध लक्षण सकोष्टक दिये गये हैं। कवि ने इस ग्रन्थ में प्रायः प्रत्येक छन्द पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसके छन्दो-लक्षण पिंगलसूत्र के समान सत्रमय है जो नितांत स्वतन्त्र है। छन्दों के दिये गये दृष्टांतों में यत्न-तत्र जैतव्य की द्वाप सुस्पष्ट प्रतिभासित होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस के कर्त्ता काव्यशास्त्र के एक उद्भूत मर्मज्ञ थे। इसकी ग्रन्थान्य प्रतियाँ जहाँ तहाँ से अन्वेषण पत्र मिलान कर इस रत्नमृत 'रत्नमजूपा' के प्रकाशन से दिगम्बर जैनसाहित्य के एक अङ्ग की पूर्ति हो जायगी। ग्रन्थान्य पुस्तक-प्रकाशन-संस्थाओं और जैन परीक्षालयों को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। क्योंकि आजतक सभी जैन परीक्षालयों के पाठ्य ग्रन्थों में जैनेतर छन्दोग्रन्थ ही समाविष्ट होते आ रहे हैं।

(२६) ग्रन्थ नं० $\frac{२३७}{६}$

सरस्वतीकल्प

कर्त्ता—मलयकीर्ति

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६॥ इञ्च

चौड़ाई ६ इञ्च

पत्रसंख्या ७

प्रारम्भिक भाग—

वारहअ ग गिज्ञा वसणनिलया चरित्तवद्दहरा ।

चउदसपुव्वाहरणा ठावे वव्याय सुददेवी ॥

आचारगिरस सूत्रकृतवक्रां (सरस्वतीं) सकण्डिकाम् ।

स्थानेन समयोद्भूय (स्थानागसमयांनि ता) व्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम् ॥

एकद्वयाविलग्नित्यासगणनामानप्रमाणाद्यै
 मंसकृमाधरयद्विरच्य खणिकोत्कोर्षैर्याद्यालये ।
 वृत्तं न्यस्य तद्दक्षिणं त्रिगुण्यस्तस्याप्यधः स्यापये
 देकोनेन तद्रोपरि पगिलिखेदेव हि मैत्रिक्रिया ॥१०॥

खण्डमेकप्रस्तारो यथा—

सैकामेगगणो ज्वलामभिमत्च्छन्दोऽक्षरगारिका
 मेकां धीणिमुपक्षिपधरतोऽप्येकैकहीनाश्च ता ।
 ऊच्य द्विद्विपूर्वाक्रमेलेनमधोघः स्थानकेप्यालिखे
 देकच्छन्दसि खण्डमेकरमलः पुनागचन्द्रोदितः ॥११॥

एतत्पद्योक्तक्रमेण प्रस्तारे कृते विवक्षितछन्दसः लग्नक्रियया सह ततः पूर्वस्थितसकल
 छन्दसां लग्नक्रिया सर्वा समायान्तीत्यथ ॥

इनके नीचे प्रस्तार के तीन कोष्ठक भी हैं)

दिगम्बर जैन साहित्य-भाण्डार में छन्दोग्रन्थ सम्बन्धी अक्षितसेन के छन्दशास्त्र
 वृत्तयाद पत्र छन्दप्रकाश आशाधर के वृत्तप्रकाश चन्द्रकीर्ति के छन्दकोष (प्राकृत) एवं
 धम्मग के प्राकृतपिङ्गल सूत्र ये ही नाम मिलते हैं। परन्तु इन में धर्मितक कोई ग्रन्थ
 मुद्रित नहीं हुआ है। अब रही प्रस्तुत पुस्तक 'रत्न-मञ्जूषा' की बात। पं० नाथूराम जी
 मेरी के द्वारा सद्योत दिगम्बर जैनग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ इस ग्रन्थतालिका में
 इसके कर्ता हेमचन्द्र कवि बतलाये गये हैं। परन्तु इस छन्दोग्रन्थके अन्तिम भाग के अन्तिम
 श्लोकान्तर्गत 'पुनागचन्द्रोदित' इस वाक्य से तो ज्ञात होता है कि पुनागचन्द्र या
 नागचन्द्र ही इसके प्रणेता हैं। मेरी जी के कथनानुसार अगर इस 'रत्नमञ्जूषा' के रचयिता
 हेमचन्द्र कवि होते तो 'पुनागचन्द्रोदित' के स्थान पर बड़ी आसानी से 'अक्षितसेनोदित'
 लिख देते। क्योंकि पसा करने से छन्दोग्रन्थ का उन्हें जरा भी भय नहीं रह जाता था।
 साधनाभाव से इस समय इसके कर्ता के बारे में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका।
 यदि थोड़ी देर के लिये अर्थात् मेरी जी ने किस आधार पर इस का कर्ता हेमचन्द्र कवि
 लिखा है—यह बात जब तक स्पष्ट नहीं होती तब तक के लिये नागचन्द्र को ही इसका
 प्रणेता माना जाय तो महाकवि धनञ्जय-कृत विषापहार स्तोत्र के संस्कृत टीकाकार कवि
 नामचन्द्र* की ओर मेरी दृष्टि कुछ कुछ आकृष्ट हो जाती है। पर यह एक अनुमान

मात्र है। जब तक इस सम्बन्ध में कोई सबल प्रमाण नहीं मिलता है तबतक इसे कोई मानने को तैयार क्योंकर हो सकता है ?

अब रहा इस छन्दोग्रन्थ का विषय। यह ग्रन्थ छेदे छेदे आठ अध्यायों में विभक्त है। इस प्रति की मैसूर राजकीय 'प्राच्यपुस्तकालय' में मैने ही कन्नड लिपि से नागराक्षर में प्रतिलिपि कराई थी। इसके अष्टम अध्याय का कुछ अंश लुप्त सा ज्ञात होता है। इस लुप्तांग के बाद ही तीन पृष्ठों में मैरुसरवन्धी प्रस्ताव के पद्यबद्ध लक्षण सकोष्टक दिये गये हैं। कवि ने इस ग्रन्थ में प्रायः प्रत्येक छन्द पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसके छन्दो-लक्षण पिंगलसूत्र के समान सूत्रमय है जो नितांत स्वतन्त्र है। छन्दों के दिये गये दृष्टांतों में यत्न-तत्न जैनत्व की स्थापना सुस्पष्ट प्रतिभासित होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस के कर्त्ता काव्यशास्त्र के एक उद्भट मर्मज्ञ थे। इसकी अन्यान्य प्रतियाँ जहाँ तहाँ से अन्वेषण पत्र मिलान कर इस रत्नमृत 'रत्नमजूपा' के प्रकाशन से दिगम्बर जैनसाहित्य के एक अङ्ग की पूर्ति हो जायगी। अन्यान्य पुस्तक-प्रकाशन-संस्थाओं और जैन परीक्षालयों को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। क्योंकि आजतक सभी जैन परीक्षालयों के पाठ्य ग्रन्थों में जैनैतर छन्दोग्रन्थ ही समाविष्ट होते आ रहे हैं।

(२६) ग्रन्थ नं० २३७
ख

सरस्वतीकल्प

कर्त्ता—मलयकीर्त्ति

विषय—मत्तशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६॥ इञ्च

चौडाई ६ इञ्च

पत्रसंख्या ७

प्रारम्भिक भाग—

वारहभ्रम गिजा वसणनिलया चरित्तवद्दहप ।

चउदसपुव्वाहरणा ठावे वव्याय सुवदेवी ॥

आचारशिरस सूत्रकृतवक्त्रां (सरस्वतीं) सकण्डिकाम् ।

स्थानेन समयोद्भव (स्थानांगसमयात्रिं तां) व्याख्याप्रबन्धिदोर्लताम् ॥

धान्देयतां ज्ञातृकथोपासकाध्ययनस्तनीम् ।
 अन्तष्टुहासन्नामिमनुसरदांगताम् ॥
 मुनितम्बा मुजघर्नां प्रश्न प्राकरणाधिताम् ।
 त्रिपाकसूत्रकृष्ण्यचरणां चरणाश्वराम् ॥
 सम्यक्तवतिलकां पुत्रचतुर्वाधिभूषणाम् ।
 तावत्प्रकीर्णकोद्रीर्णचरूपज्ञाङ्कुरधियम् ॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पद्य ३ पक्ति ७) —

स्याद्वाक्कल्पतरुमूलविराजमाना रत्नत्रयाम्बुजसरोवरराजर्हसीम् ।
 अङ्कुरकीर्णरुचनुदशप्रवकायामाज्ञायथाङ्गमयधुमहमाह्वयामि ॥

शारदामिमुखीकरणम् —

अविरलशरमहोद्या प्रक्षालितसकलभूतलकलङ्का ।
 मुनिमिरुपासिततीर्था सरस्वती हरमु नो दुरितम् ॥
 ॐ ह्रीं धीं मन्त्ररूपे विबुधजननुते दधि दयेन्द्रय श्रे
 षञ्जयन्द्रावदते क्षपितवलिमते हारनीहारगौरे ।
 भीमे भीमाङ्गहासे भवमयहरयो भैरवि भीरु धीरे
 ह्रीं ह्रीं ह्रूं कारनावे मम मनसि सदा शारदे तिष्ठ देवि ॥

× × × ×

प्रतिपत्तयाम् । —

परमहसिमाचलनिगता सकलपातकपकत्रिचर्जिता ।
 अमितबोधपथपरिपूरिता विशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥
 परममुक्तिनिवाससमुज्ज्वलं कमलयाकृतयासमनुत्तमम् ।
 वहति या वदनाम्बुर्हं सदा विशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥
 सकलव्याङ्गमयसूक्ष्मिधरा परा सकलसत्यहितैकपरपथ्या ।

नापदतुम्बुदसेविता विशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥

मलयचन्दनचन्द्ररजःकणा प्रकरशुभ्रदुकूलपदावृता ।
 विशदहसकहापधिभूषिता विशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥
मलयकीर्णसिंहतामिति संस्तुतिं (पठति यो) सतत मतिमाह्वर ।
 विजयकीर्णसिंशुल्लतामादरात् स मतिकल्पलताफलमश्नुते ॥

इस 'सरस्वतीकल्प' के अन्तिम पद्य से इसके रचयिता मलयकीर्त्ति ज्ञात होते हैं। साथ ही साथ इसी पद्य से यह भी विदित होता है कि यह मलयकीर्त्ति प्रायः विजयकीर्त्ति-गुरु के शिष्य हैं। पर "विजयकीर्त्तिगुरुकृतमादरान्" इस चतुर्थ चरण का सम्बन्ध किसके साथ है—यह अभी ठीक नहीं समझ पड़ता। बहुत कुछ संभव है कि इस श्लोक की प्रतिलिपि करने में लेखक ने भूल करी हो। इसलिये जबतक इसकी शुद्ध प्रति नहीं मिलती तबतक सन्देह-निवृत्ति होती नहीं देख पड़ती।

अस्तु, 'पपिप्राफिका कर्नाटिका' जिज्ञ ८ के शिलालेख न० १०४ में एक विजयकीर्त्ति-गुरु का उल्लेख मिलता है। मलयकीर्त्ति के द्वारा प्रतिपादित विजयकीर्त्तिगुरु यदि यही हो तो उक्त शिलालेख के ही आधार में इनका समय सन् १३५४ अर्थात् १४ वीं शताब्दी सिद्ध होता है। अतः इस सरस्वतीकल्प के रचयिता मलयकीर्त्ति का समय भी लगभग यही होना चाहिये। अस्तु, अर्हदास-रचित भी एक 'सरस्वतीकल्प' सुना जाता है। वह इसमें भिन्न होना चाहिये। इस कृति के आदि और अन्त में 'सरस्वतीकल्प' लिखा मिलता है। मन्त्रशास्त्र में कल्प का लक्षण यों बतलाया है—जिन ग्रन्थों में मन्त्र-विधान, यन्त्र-विधान, मन्त्र-यन्त्रोद्धार, वलिदान, वीपदान, आह्वान, पूजन, विसर्जन और साधनादि बातों का वर्णन किया गया हो वे ग्रन्थ 'कल्प' कहलाते हैं।† प्रधानतया इस प्रस्तुत कृति को एक मन्त्र-स्तोत्र ही कहना चाहिये। फिर भी यन्त्रोद्धार, जाप्य पद्य होममन्त्र आदि का इसमें उल्लेख पाया जाता है—इसी में ज्ञात होता है कि इसके रचयिता ने कल्पनाम की सार्थकता समझी होगी। मन्त्रशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिये इसके निम्नलिखित कतिपय श्लोक उपयोगी हैं.—

“जाप्यकाले नमः शब्द मन्त्रस्थान्ते नियोजयेत् ।
तदन्ते होमकाले तु स्वाहा शब्द नियोजयेत् ॥
सवृन्तक समाधाय प्रसून ज्ञानमुद्रया ।
मन्त्रमुच्चार्य सम्मन्त्री मुञ्चेदुच्छ्वासासंखनात् ॥
महिपात्तगुग्गुलेन प्रविनिर्मितचणकमाद्वटिकानां ।
मधुरलययुक्तानां होमैर्वांगीश्वरी वरदा ॥
दिकालमुद्रासनपल्लवानां भेद परिष्कार जपेन् स एव ॥
न चान्यथा सिध्यति तस्य मन्त्र कुर्वन् सदा तिष्ठतु जाप्यहोमम् ॥

* देखें—मद्रास व मैसूर प्रांत के प्राचीन जैन स्मारक' पृष्ठ ३११

† म सशास्त्र के विषय में विशेष बात जानने के इच्छुक विद्वान् भास्कर भाग ४, किरण ३ में प्रकाशित 'जैनमन्त्र-शास्त्र' शीर्षक लेख देखें।

द्वात्रिंशत्सहस्रजाप्यैर्गाङ्गाहोमैर्न मिक्षिमुपयाति ।
 मन्त्रौ गुरुप्रभावात् क्षातयस्त्रिभुवने सार ॥
 अकारोऽनन्तवीयात्मा रषो विश्वात्रलोकद्रुक् ।
 हकार परमो वाधो विदुः स्यादुत्तम सुखम् ॥
 नक्षो विश्वात्मरुः प्रोक्तो विन्दुः स्यादुत्तम पक्वम् ।
 कलापायूपनिःस्यन्दीत्याहुर्ष्यं जिनोत्तमा ॥”

इसकी रचना साधारणतया अच्छी है ।

(२७) ग्रन्थ न० १५१

वज्रपजराधना-विधान

कक्षा— x

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६॥॥ इन्च

चौडाई ६ इन्च

पत्रसख्या ६

प्रारम्भिक भाग —

चन्द्रपुष्पधिव द्र च द्राक वज्रकातसंकाशम् ।

चन्द्रप्रमजिनमंवे कुन्देन्दुस्कारकीर्त्तिकान्तोशान्तम् ॥

ॐ ह्रीं चन्द्रप्रम जिनदेवागच्छ—

तीर्थोपनीतैर्धनसारशीतै पातप्रपाद्यं घुसृणाद्युपेतै ।

चन्द्रप्रमाभास्करदिव्यदेहं महामि चन्द्रप्रमतीर्थनाथम् ॥

ओं ह्रीं चन्द्रप्रमजिनदेवाय जलं मिश्रपामोतिश्वाहा ।

सुगन्धसारैर्घनगन्धसारैः सिताम्भारैः सितधामभारैः ।

चन्द्रप्रमाभास्करदिव्यदेहं महामि चन्द्रप्रमतीर्थनाथम् ॥ गन्धम्

शाक्यक्षतैरक्षतमौलक्ष्मीकणसविज्ञोपयत्तक्षकैः ॥

चन्द्रप्रमाभास्करदिव्यदेहं महामि चन्द्रप्रमतीर्थनाथम् ॥ अक्षतान्

x

x

x

x

(२८) ग्रन्थ न० ३४२
ख

मृत्युजयाराधना-विधान

कलां— ×

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

सम्बार् ई। इण्ड

चौडार् ई इण्ड

पत्रसंख्या ७

प्रारम्भिक भाग—

चन्द्रनाथभृत्तगणधरमृत्युजययन्त्रमित्येतेषामभिषेकं कृत्वा भूमिशुद्धिचत्वार्यभ्यान्तर
चन्द्रप्रभपूजा ।

चन्द्रपुरांश्चिचन्द्र चन्द्राक चन्द्रकान्तसकाशम् ।

चन्द्रप्रभजिनमचे कु^३दुस्कारकीर्तिकान्ताशान्तम् ॥

नानामणिप्रचयमासुरकण्ठपीठभृ गारनालकलितामलद्विभ्रतौवै ।

संसारतापविनिवारणहेतुभूत श्रीचन्द्रनाथपद्मभयुग यजेऽहम् ॥ (जलं नि०)

नाकाङ्गनाकरसरोरुमध्यवतिकपूरकुङ्कुमविमिथितविव्यगन्धै ।

मुक्तोपमानवगन्धरमास्मेतं श्रीचन्द्रनाथपद्मभयुगं यजेऽहम् ॥ (गन्धं नि०)

×

×

×

मध्य भाग (परपृष्ठ ३ पक्ति ७)—

यस्यार्थं कियते पूजा सुप्रीतो नित्यमस्तु ते

चन्द्रोऽब्जर्त्ता चक्रशरसिपाशां वामनिशूलेषु ऋषासिहस्तां ।

श्रीज्वालिनीं सार्धं धनुश्शतोच्चजिनानतां कौण्ठगतां यजामि ॥

×

×

×

अन्तिम भाग—

अत्यन्तमकथानसदेवस्यस्यार्थमिषन्ध्याप्रजिनेन्द्रमका ।

प्रह्लाणिकाया उररीकृताभ्यां सर्वापमृत्यु विनिवारयन्त्य ॥

०० ह्रीं क्रौं अष्टमातृकाम्यं पूर्यार्थं निर्वपामि स्वाहा ।

अयिमाविगुणैश्वर्यशालिन्येत्यष्टमातरः ।

याजकानां सुशास्त्रय सुप्रसन्ना भवन्तु तां ॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पाञ्जलिः । ॐ नमो भगवते देवाधिदेवाय सर्वोपद्रवविनाशनाय सर्वा-
पमृत्युञ्जयकारणाय सर्वमन्त्रसिद्धिकराय ह्रीं व्रीं क्रौं अस्य देवत्तस्य सर्वापमृत्युं घातय घातय
आयुष्यं वर्द्धय वर्द्धय ऋ व ह्नः पः हः भर्वां क्ष्वां ह सः असिआउसा अर्हन्नमः स्वाहा । १०८
मन्त्रपुष्पार्चनम् ।

इस 'मृत्युञ्जयाराधना' के प्रारम्भ में चन्द्रनाथ, श्रुत, गणधर एवं मृत्युञ्जय यन्त्र का अभिषेकपूर्वक भूमिशुद्धि, चत्वारि अर्घ्य तथा चन्द्रप्रभ स्वामी की पूजा अङ्कित की गयी है । वाद श्यामयन्त्र, ज्वालामालिनी यन्त्री की पूजा दी गयी है । इसके पश्चात् मृत्युञ्जय यन्त्र में लिखे जानेवाले बीजान्तरोके क्रमादि बतलाये गये हैं । साथ ही साथ इस यन्त्र की पूजा विधि भी निर्दिष्ट है । सर्वान्त में अष्टमातृका की पूजा देकर यह कृति समाप्त की गयी है ।

जैनसमाज में एक ऐसा भी पक्ष है जो आराधना ग्रन्थों को उपेक्षा-दृष्टि से देखता है । इसका कहना है कि ये जो आराधनायें हैं वे जैनियों के मौलिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं और कर्मसिद्धान्त के एकान्त अनुयायी जैनी इन आराधनाओं को मानने को तैयार नहीं हो सकते । साथ ही इसका यह भी कहना है कि ये आराधनायें जैनितर आराधनाओं के अनुकरण हैं । किन्तु दूसरे पक्ष का यह कहना है कि एक गृहस्थ जैनी अपने परिवार में आये हुए आगन्तुक उपद्रवों की शान्ति के लिये अगर इन आराधनाओं से लाभ उठाता है तो अनुचित नहीं है । अन्यथा कर्मसिद्धान्त के एकान्त अनुसरण का परिणाम यही होगा कि कच्चे दिलवाले जैनी अपने ऊपर आई हुई असाताजन्य दुर्घटनाओं को दूर करने के लिये आर्त्तावस्था में अन्यान्य तामसिक देव-देवियों की आराधना आरम्भ कर देंगे और यों करते-करते अन्ततः विपथगामी होने का उन्हें अवसर मिल जायगा । आज भी ऐसे अनेकों दृष्टान्त हम लोगों की नजरों से गुजरते रहते हैं । बहुत कुछ संभव है कि तम प्रकृतिक देव-देवियों की और लौकिक सिद्धि के लिये दौड़ पड़ने और चंचलचित्त वाले जैनियों को स्वधर्म में स्थिर रखने की दूर दर्शिता से ही कुछ ग्रन्थकर्त्ताओं ने आराधनाओं की सृष्टि की होगी । जब वे अपने धर्म का सैद्धान्तिक मर्म समझने लगेंगे तब तो आप ही आप ये आराधनायें इनसे दूर भाग खड़ी होंगी । व्यवहारिक दृष्टि से यह नीति लचर नहीं कही जा सकती क्योंकि पीने में सुविधाजनक होनेके लिये ही वैद्य कड़वी दवा में शक्कर मिला देते हैं । अस्तु अभी इसके कर्त्ता का पता आदि नहीं लग सका ।

(२६) ग्रन्थ नं० २४३
ख

सहस्रनामाराधना

कर्त्ता— X

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च

चौडाई ६ इञ्च

पत्रसंख्या ६०

प्रारम्भिक भाग—

सुत्रामपूजित पूज्यं शुद्ध सिद्धं निरंजनम्
 जमदाहविनाशाय नौमि धारण्यसिद्धये ॥ १ ॥
 तद्वक्त्रं नमस्कुर्वे शारदां विश्वसारदाम ।
 गौतमादिगुरुन् संप्रकव्शंनानमशिद्धितान् ॥ २ ॥
 पतेर्पां सुप्रसादेन रचयामि प्रपूजनम् ।
 सहस्रनामयुक्तस्य जितेन्द्रस्य गुणान्मुजे ॥ ३ ॥

X X X

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ ३५, पक्ति ७)

धृतकमलपरागै सग्जलैस्तीर्थजातै कनककलशशस्तै तापसन्तापनाशै ।
 सुरनिकरसुमैवस्नापितान्तै पयोधे सकलविमलबोध श्रीजिनं पूजयामि ॥
 ॐ ह्रीं जलं निर्बपामीतिस्वाहा ।
 मलयगिरिसुजातै सद्भवे कुङ्कुमाद्यैरविकुलकलितोद्यद्गुजितैरिन्दुयुक्तै ।
 सहजसुरभिदेहं मुक्तिकान्ताकृताम सकलविमलबोध श्रीजिनं पूजयामि ॥ (गन्धम्)
 धवलशङ्कपुजैमञ्जुलै पुरायपुञ्जैरिष कृतजनतोपैमृकमालिन्यदोषै ।
 क्षपरहितपदेशं(?) वसन्त्योपदेशं सकलविमलबोध श्रीजिनं पूजयामि ॥ (अस्रतान्)
 कमलबहुलजातीकेतकीचम्पकाद्यै सुरमिगुणसुदेवानन्द्यै सुप्रसन्नै ।
 दलितकुसुमचरणै सर्वविद्याप्रमाणां सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (पुष्पम्)
 दधिकृषिसहितान् शर्करापायसान् प्रसुरधरकवद्धैर्ध्वज्जनै सन्निवेशै ।
 सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (चक्रम्)

तुहिनजगृहरत्नैः निर्जितामर्त्यरत्नैः सकलसद्वृशपीतैः वातघातैरधूतैः ।
 विदितसकललोक दिव्यमान विलोक सकलविमलबोध श्रीजिनं पूजयामि ॥ (दोषम्)
 अग्ररुजवरधूपैर्धूपिताशामुखामैः अमरनिकरनाथानिष्टधूमैर्मनोहैः ।
 वसुविधदुरिताधदाहकं दाहमुक्तं सकलविमलबोध श्रीजिनं पूजयामि ॥ (धूपम्)
 वकुलजलबलीश (?) दाडिमस्वादुकाप्रक्रमुकसुफलपूराद्यै रनिन्द्यै फलौघैः ।
 शिवसुखफललब्धिं सर्वतत्त्वेद्भुद्धिं सकलविमलबोध श्रीजिनं पूजयामि ॥ (फलम्)
 अमलकमलगन्धाक्षुराणतरुडु (?) लपुष्पैश्चरुगृहमणिदीपैः धूपकृत्सत्प्रलार्थ्यैः ।
 शतमखनुतभेदारूपरत्ननयाढ्यं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (अर्घ्यम्)

×

×

×

×

अन्तिम भाग :—

विशालकीर्तिर्वरपुरायमूर्तिः शतेन्द्रसचचर्तिपादपद्मः ।
 श्रीमज्जिनेन्द्र'सहस्रनामा जिनेश्वर पातु स भव्यलोकान् ॥
 पदषष्ठिसुत्रोक्तपदप्रमाण त्र्यष्ट्याधिकं चात्र सहस्रयुक्तम् ।
 मद्दे द्विरष्टौ (?) च पदानिलुप्ता (?) पद्म च कृत्वाष्टदलाष्टक वै ॥
 इत्थ पुरोत्थ पुरुदेवयन्त्र सम्भाव्य मध्ये जिनमर्चयामि ।
 सिद्धादिधर्मादिजिनालयान्त पत्रेषु नामाङ्किततत्पदेषु ॥

इस 'सहस्रनामाराधना' में जिनसेनकृत सहस्रनामान्तर्गत प्रत्येक नाम के लिये प्रत्येक अर्घ का विधान पद्यमय अङ्कित है। यह ग्रन्थ दश परिधियों (मराडलों) में विभक्त है। प्रत्येक परिधि के प्रारम्भ में जिनेन्द्र का प्रत्येक अष्टक (पूजा) निर्दिष्ट है। साथ ही साथ प्रत्येक परिधि की समाप्ति में जयमाला भी अन्तर्भुक्त की गयी है। अर्थात् प्रत्येक परिधि के प्रारम्भ में जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, (अष्टक) उस परिधि के अन्तर्गत नामों के लिये अर्घ्य एवं अन्त में पूर्णार्घ और जयमाला है। इस हिसाब से दस अष्टक साधिकसहस्र अर्घ्य और दस जयमालायें हैं। इस में ग्रन्थकर्ता के विषय में कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु १म और ९म को छोड़ कर प्रत्येक परिधि के अन्त में कुछ हेर-फेर करके दिये गये निम्नाङ्कित पद्य अवश्य विचारणीय हैं.—

"मुनोन्द्रदेवेन्द्रसुकीर्तये तत् श्रीधर्मचन्द्र' कृतधर्मभूषः ।

सुरेन्द्रकीर्तिवरधर्ममूर्तिः वभुजिनेन्द्रा वरसवशान्त्यै ॥"

(द्वितीय परिधि का अन्तिम श्लोक)

“इत्थं स्तुतो जिनपररो जगदा विहतां भगव्यिष्टु नृणां पतवा (१) सुकर्ता ।
सद्धमचन्द्र इह धमसुभूपणालो देवेन्द्रकीर्तितयशा ह्यवर्ता सतां स ॥

(३५ परिधि का अन्तिम श्लोक)

“इति वरदुतिपू यो देवदेवेन्द्रधृन्वैर्धिगतसकललोको ह्यनरूपो जिनेन्द्र ।
प्रयपतु शुमलक्ष्मी धर्मचन्द्रो मुनीन्द्रस्तुतपद्मकमलोऽसौ धमभूपस्तु नयाम् ॥”

(४४ परिधि का अन्तिम श्लोक)

“श्रीधमचन्द्र धृतसि धुचन्द्रो धिमुकदोपावरधमभूप ।
मुनीन्द्रदेवेन्द्रयशस्वरूपं न पातु शश्वजिनसौख्यरूपं ॥”

(५५ परिधि का अन्तिम श्लोक)

“इतिस्तुतोऽभूत्त्रितयैकभूपणस्तुधमचन्द्राधितधमभूपण ।
मुनीन्द्रदेवेन्द्रयशस्वरूपं न पातु शश्वजिनसौख्यरूपं ॥

(६४ परिधि का अन्तिम श्लोक)

‘शुधर्मचन्द्रो जिनचन्द्रभूपो देवेन्द्रसत्कीर्तितपाद्पद्म ।
सुरेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रपूज्य पायात् स व श्रीजिनप पद्मिता ॥”

(७५ परिधि का अन्तिम श्लोक)

“संसारमुक्तो जिनधर्मचन्द्र सद्धर्मभूपो वरधर्ममूर्ति ।
देवेन्द्रकीर्ति कृतदेवकीर्ति पायाज्जिनो धो मरनाथपूज्य ॥”

(८५ परिधि का अन्तिम श्लोक)

विशालकीर्तिवरपुण्यमूर्ति शतेन्द्ररुचर्चितपाद्पद्म ।

श्रीमज्जिनेन्द्र सुसहस्रनामा जिनेश्वरः पातु स भयलोकान् ॥’

(१०५ परिधि का अन्तिम श्लोक)

परिधियों के लक्षित एक अन्तिम श्लोकों को खोर ध्यान देने से यह पता लगता है कि इसके कर्ता देवेन्द्रकीर्ति हैं और इन्होंने जिनेन्द्र भगवान् के विशेषणरूप में ध्यना, अपने शुक का एव प्रगुड का क्रमशः—धर्मचन्द्र धमभूपण देवेन्द्रकीर्ति इन नामों से उल्लेख किया है। देवेन्द्रकीर्ति के नामसे कई व्यक्ति हुए हैं इसलिये नहीं कहा जासकता कि ममुक देवेन्द्रकीर्ति ही इसके प्रणेता हैं।

(३०) ग्रन्थ नं० २४४
ख

कलिकुण्डाराधनाविधान

कर्त्ता— X

विषय—धाराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च

चौडाई ६ इञ्च

पत्रसंख्या १३

प्रारम्भिक भाग—

सत्पुष्पवाम्ना(?)प्रविराजितेन पुष्पेण पूरणेन सुपल्लवेन ।
सन्मङ्गलार्थं कलिकुण्डदेवमुपाप्रभूमौ समलङ्करोमि ॥

(कलशस्थापनम्)

शुद्धेन शुद्धहृदकूपवापीगङ्गातटाकादिसमावृतेन ।
शीतेन तोयेन सुगन्धिनाहं भक्त्याभिपिञ्चे कलिकुण्डयन्त्रम् ।

(तीर्थोदकामिपेक)

नीरे सुगन्धे कलमाक्षतौघैः पुष्पैर्हविभिर्वरधूपधूमैः ।
भास्वतफलार्घ्यैः कलिकुण्डयन्त्रं सपूजयास्यष्टतया सुभवत्या ॥

X X X X

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ ६, पक्ति ७)—

प्रणम्य देवेन्द्रनुत जिनेन्द्र सर्वज्ञमङ्गप्रतिबोधसङ्गम् ।
स्तोत्रे सदाह कलिकुण्डयन्त्रं सार्वं च विघ्नौघविनाशक्षम् ॥
नित्यं स्मरन्तोऽपि हितो (?) पि भक्त्या सदास्तुवन्तोऽपि जप सुमन्त्रम् ।
पूजां प्रकुर्वन् हृदये ददाति सच्चैप्सितं यच्छतु यन्त्रराजम् ॥
प्रहांगणे कल्पतण्डप्रसून चिन्तामणिश्चिन्तितगानदाने ।
गावश्च तुल्यश्च हि कामधेनुर्यस्यास्ति भक्ति कलिकुण्डयन्त्रे ॥
नमामि नित्यं कलिकुण्डयन्त्रम् सदा पवित्रं कृतरक्षणम् ।
रक्षत्रयाराधनभावलभ्यम् सुरासुरैर्बन्धितमाद्य मीढ्यं ॥

सिद्धिमसर्पाभिजलाग्निचौरैर्विपाद्योऽन्ये च समूहविघ्ना ।

ध्यात्वाद्यौ राजकुलोद्भवं मय भश्यत्यवश्यं कलिकुर्यादपूजया ॥

x x x x

प्रथम भाग—

कलिकुर्यादहनदत्तं योगियोगोपलक्षणम्

हाथिकुलकलिकुर्यादो ह्यहपादवप्रचयदम् ।

शिवसुखमभवद्वा हासवल्लीवसन्तम्

प्रतिदिनतद्दमोडे धधमानस्य सिद्धये ॥

इस 'कलिकुर्यादाराधना' के आदि में कलिकुर्यादपन्न एवं धीपाश्वनाथ की प्रतिमा का अभियेक, भूमिशुचि, पञ्चगव्य, और अक्षरि अर्घ्य निर्दिष्ट हैं। बाद पाश्वनाथ पूजा एवं इन्हीं की मन्त्रस्तुति घरगौरी मन्त्र और पद्मायती यक्षी की पूजा तथा इनके मन्त्र-स्तोत्र दिये गये हैं। इसके उपरान्त मंत्र लिखने की विधि और फल इत्यादि का निर्देश करते हुए प्रस्तुत यज्ञ की पूजा बतलायी गयी है। अन्त में यन्त्रीय मंत्र की स्तुति, धर्मस्य विपद्घातार्थं का अर्थ, धष्टमातृका की पूजा, मन्त्रपुथ और जयमाला लिखी गयी है। इसके कर्त्ता भी सभी अज्ञात ही हैं।

(३१) ग्रन्थ नं० १४१

गणधरवलयकल्प

कर्त्ता— x

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इंच

चौड़ाई ६ इंच

पत्र संख्या १

प्रारम्भिक भाग—

देवदत्तस्य नामाहकपिष्य वेष्टयेत् ।

ततोऽनाद्वतेन तस्याथ कर्मक्षयार्थं अर्थ्यान्त्यथ पद्मासनम् । शान्तिकपौष्टिकसारस्वताथ
भीकारासनम् । शशुचिनाथार्थं कूप्याग्निश्शयार्थं च स्कारासनम् । तत आर्त्तं ही अद् यतो

सिद्धेमसर्पाभिजलाब्धिचौरैर्विपादयोऽन्धे च समूहविघ्ना ।

व्याघ्यादयो राजकुलोद्भव मय नश्यत्यवश्य कलिकुर्यादपूजया ॥

x x x x

प्रथम भाग—

कलिलवहनवृत्तं योगियोगोपलक्षणम्

द्वाधिकुलकलिकुर्यादो दयदपाश्चप्रचण्डम् ।

शिवसुखमभवद्वा दासबलीवसन्तम्

प्रतिदिनमहमोडे वधमानस्य सिद्धये ॥

इस 'कलिकुर्यादाराधना' के आदि म कलिकुर्यादयन्त एव श्रीपाश्वनाथ की प्रार्थना का अभिप्रेक, भूमिशुद्धि पञ्चगुरूपूजा और चत्वारि आध्य निर्दिष्ट है। बाद पाश्वनाथ पूजा एवं इन्हीं की मन्त्रस्तुति धरणेन्द्र यज्ञ और पद्मावती यज्ञी की पूजा तथा इनके मन्त्र-स्तोत्र विद्ये गये हैं। इसके उपरान्त मंत्र लिखने की विधि और फल इत्यादि का निर्देश करते हुए प्रस्तुत यज्ञ की पूजा बतलायी गयी है। अन्त में यन्त्रीय मंत्र की स्तुति, यज्ञस्थ पिण्डाक्षरों-का अध्य, अष्टमातृका की पूजा, मन्त्रपुष्प और जयमाला लिखी गयी है। इसके कर्त्ता भी अपनी भद्रात ही हैं।

(३१) ग्रन्थ न० $\frac{२४५}{६}$

गणधरवल्लयकल्प

कां— x

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

सम्पाद ई। इन्ध

संपाद ई। इन्ध

पत्र संख्या १०

प्रारम्भिक भाग—

देवदत्तस्य नामाहकारेण्य वेष्टयेत् ।

ततोऽनाहतेन तस्याथ कर्मज्ञयार्थं अर्थप्राप्तयथ पञ्चासनम् । शान्तिकपौष्टिकसारस्वताथ श्रीकारासनम् । शत्रुविनाशार्थं क्रूरप्राथिवशरार्थं च इकासनम् । तत आँ ही अह यानो

घन्द्नागवृक्षपूरगुग्गुलान्नघृतादिभिः ॥ पायसान्नाक्षतैर्मिश्रं ब्रह्मवृक्षोद्भवादिभिः । सार्धं
 घामिश्रचन्दोर्म प्रतिघ्नाशांतिपौष्टिके ॥ इस विधि से हवनद्रव्य का उल्लेख कर पौष्टिकादि
 काय के लिये “वश्याकृष्टिस्तमननिषेधद्वेषचलनशान्तिकपुष्टी । कुर्यात् सोमयमामरहरामि-
 मवदग्निश्च तदिविभ्वदन ॥” इस प्रकार अलग अलग विशायें बतलायी गयी हैं । बाद
 में प्रत्येक कार्य के लिये समय आसन मुद्रा वीणाक्षर आदि का विशद विवेचन किया
 गया है । वश्याकरण कार्य में त्रिकोण, चतुष्कोण आदि भिन्न भिन्न कुण्ड तथा भिन्न
 भिन्न वण वाले पुष्पों की उपयोगिता लिखी गयी गयी है । किस किस कर्म के लिये किस
 किस अङ्गुली से जप करना विधेय है इस बात को मोक्षशान्त्योवशाकर्षेस्तम्भद्वेषापसारके ।
 अङ्गुष्ठमध्यमानामितजनीमिमणि चरेत् । यों अङ्कित किया है । अन्त में षोडशोपचार के
 द्रव्यों को गिना कर अग्निमण्डलों का लक्षण दिया गया है । अस्तु इसके कर्त्ता
 अज्ञात हैं पर निम्न लिखित तीन विद्वान् गणधरचर्य्य पूजा के कर्त्ता अब तक प्रसिद्ध
 हैं —(१) महारक धर्मकीर्ति (२) शुभचन्द्र (३) हस्तिमहल ।

(३४) ग्रन्थ न० २४६
 ख

प्रवचनपरीक्षा

कर्त्ता—नेमिचन्द्र

विषय—खण्डनमण्डन

भाषा—संस्कृत

सम्बार्ह ६। इच्छ

चौदार्ह ६ इच्छ

पत्रसंख्या ५८

प्रारम्भिक भाग—

त्रिलोकीतिलकायाहत्पुवराय नमो नमः ।

धाचामगोचराचिन्त्यबहिरभ्यन्तरधिये ॥

अथ निखिलजनचेतश्चमत्कारोजनिजातुमाथपरकमानुष्योपनतसकलभोगसाधनससिद्ध
 समिद्धामिमानोकसुखसुधाभ्योनिधिनिमज्जद्राजाधिपजमहारजाघमण्डलीकमहामण्डलीकाघ
 चक्रयार्त्तिसकलचक्रवर्तीन्द्राविपदलक्षणाभ्युदयलक्ष्मीलाभाय पुरुषार्थपराकाष्ठागतनित्यनिरुपम-
 निर्बाधपरमानन्दमन्दिरनिधेयससमधिगमाय चतुर्विधदुरन्तदुःखैकनिबन्धनाहःसहाराय इहो

देहिनः सुखासुखावाप्तिपरिहाररूपपुरुषार्थद्वयविगानकारण सद्धर्म शर्मकामाः समाराधयन्तु
भवन्तः । तथाथ पुरातनैर्निरूपितम्—

पापाद्दुःख धर्मात्सुखमिति सबंजनसुप्रसिद्धमिदम् ।
तस्माद्दिहाय पाप भवतु सुकीर्त्ति' सदा धर्मः ॥
X X X

मध्य भाग (परपृष्ठ २६, पक्ति ७)

अस्ति सर्वज्ञ' सुनिश्चितासंभवद्रुबाधकप्रमाणत्वात् सुखादिवदिति ।

न चेद् साधनमसिद्ध प्रत्यक्षादिनामन्यतमस्यापि प्रमाणस्य सर्वज्ञबाधकस्यासभवात्सदुक्तम् ।

सर्वज्ञत्व न चासिद्ध' कस्यचिद्बाधकात्यथात् ।

सर्वज्ञ बाधकाभावादेव वस्तुव्यवस्थितिः ॥

न तस्य बाधकं तावत्प्रत्यक्षमुपपद्यते ।

तस्याक्षजत्वाद्यत्तौ न विधिर्न निषेधनम् ॥

न चानुमानोपमान च युक्तमिष्टविधातत' ।

तथा हि खचरादीनां न स्यात् खगमनादिकम् ॥

तस्मान्तरविशेषेऽसौ यस्य सा सकलज्ञता ।

तथा खरविशेषश्चेदिष्टा तस्यापि शृंगिता ॥

न चार्थापत्तिरप्यस्ति सर्वज्ञाभावसाधनी ।

कोह्यर्थो' सभवी तेन विना यस्त प्रकल्पयेत् ॥

नाप्यागमेन सर्वज्ञ' कृतकेनेतरेण वा ।

बाध्यते कर्तृहीनस्य तस्यात्यन्तमसम्भवात् ॥

कर्तुरस्मरणादिभ्य' कर्त्रभावो न सिध्यति ।

अज्ञातकर्तृकैर्वाक्यैर्व्यभिचारस्य सभवात् ॥

न च कश्चिद्विशेषोऽस्ति पौरुषेयत्वसंभवी ।

अतीन्द्रियार्थसवाद' सर्वज्ञोक्तेऽपि सभवेत् ॥

विवाद्दविषयापन्न ततः शास्त्र सकर्तृकम् ।

दृष्टकर्तृकतुल्यत्वात्कलङ्कादिशास्त्रवत् ॥

तस्मात्कर्तृक शास्त्र नास्ति सर्वज्ञबाधकम् ।

कृतकञ्च द्विधा भिन्न सर्वज्ञेतरहेतुकम् ॥

असर्वज्ञत्वत तावन्नप्रमाणमतीन्द्रिये ।

सकलज्ञप्रणीत तु तस्य प्रत्युत साधनम् ॥

प्रस्तुतस्यानुमानस्य साधकत्वेन संभवात् ।
 प्रमाणपञ्चकामावोऽप्यखिलज्ञे न बाध्यते ॥
 तस्माद्दशोपचित्कश्चिदस्तीत्यागमसम्भवा ।
 प्रमाणा बाधकामाधाद्बुद्धिरक्षाद्विदुस्त्रियत् ॥

तदेव प्रमाणबलाद्दहानादिदोषरहित सामान्यतो यं सिद्धं स चार्हन्नेव सर्वज्ञ युक्ति
 शाल्माविरुद्धवाक्यात् ।

× × × ×

प्रतिम भाग ।—

इदममलमनल्पस्यात्ममीमांसितादे प्रवचननिकरस्यादाय षोडशाय सारम् ।
 रचितमुचितावाग्भिर्वैदिकाथैदिकानां प्रकृत्यितुमशक भेदमस्माद्दशानाम् ॥
 इति प्रवचनस्येह परीक्षा विहिता मया । अन्ययोग्यवचनेवाद्बुद्धेदानां प्रतिपत्तये ॥
 स्वललितमिदं विहाया-यत्पदं किञ्चिदाय प्रभवति बहु मन्तु बालकस्याद्वारान्ने ।

× × ×

एतद्वचननिर्मितं यद्य स्यात्प्रमाणमिति मास्म मन्यथा ।
 अथतस्त्विदं मृषोन्मृभाषितं जापर किमपि कल्पितं मया ॥
 परमाप्तुतदानेन प्रीणयद्विद्युधान् पर ।
 शरणं भक्तिमन्नेमिचन्द्रयज्ञिनशासनम् ॥

इस 'प्रवचनपरीक्षा' के कर्ता कवि नेमिचन्द्र हैं। दिगम्बर जैनप्रथकर्ता और उनके
 ग्रन्थ' इस तालिका म निम्नलिखित ग्रन्थ भी इन्हीं नेमिचन्द्र के द्वारा प्रणीत कहे गये हैं —

(१) द्विसन्धानका य की टीका (२) द्विसन्धान काव्य द्वितीय (श्लोक सं० ३०००)
 (३) उत्सवपद्धति (४) प्रतिष्ठातिलक (श्लोक सं० ६०००) (५) त्रैवर्णिकाचार (श्लोक सं०
 ३०००)। इनमें द्विसन्धान काव्य (द्वितीय) एवं उत्सवपद्धति ये दो ग्रन्थ मैंरे देखने में नहीं
 आये हैं। हां शेष ग्रन्थों को मैंने देखा है। त्रैवर्णिकाचार और प्रस्तुत प्रवचनपरीक्षा
 इनमें नामनिर्देश के सिवा भवन की प्रतियों में कवि नेमिचन्द्र का कुछ भी परिचय नहीं
 मिलता है। द्विसन्धान काव्य की टीका में निम्नलिखित दो श्लोक मिलते हैं अवश्य —

“जीयान्मृगेन्द्रो विनयेन्दुनामा सवित्सत्पाराजितकण्ठपीठ ।
 प्रज्ञीवचादीमकपोलमिच्छिं प्रमात्तरै स्वैर्नखरैर्विहाय ॥
 तस्याय शिष्योऽजनि देवनन्दी सद्ब्रह्मचर्यमतदेवनन्दी ।
 पदाम्बुजद्वन्द्वमनिन्धमच्य तस्योत्तमाङ्गेन नमस्करोमि ॥

इन श्लोकों से सिद्ध होता है कि कवि नेमिचन्द्र के प्रगुरु विनयचन्द्र एवं गुरु देवनन्दी थे। वल्कि निर्णयसागर प्रेस वर्क से प्रकाशित इसी छिसन्धान काव्य के नवीन टीकाकार प० वदरीनाथ जी ने इस नेमिचन्द्र को विनयचन्द्र का शिष्य लिखा है, यह इस नवीन टीकाकार की भूल है। क्योंकि विनयचन्द्र नेमिचन्द्र के गुरु नहीं थे किन्तु प्रगुरु। अब लीजिये 'प्रतिष्ठातिलक' को। 'सखाराम नेमिचन्द्र जैन ग्रन्थमाला' सोलापुर से मुद्रित इस ग्रन्थ के इस संस्करण में कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है। पर 'जैनहितैषी' भाग १२, पृष्ठ १६४ में श्रवणवेलोल-निवासी स्वर्गीय प० दोर्वेली शास्त्री के गृहग्रन्थालयस्थ इस प्रतिष्ठा-तिलक ग्रन्थ की एक ताडपत्राङ्कित प्रति पर से ली गई 'शाखाचतार' नामक ४५ पद्यों की एक लम्बी चौड़ी प्रशस्ति प्रकाशित हुई है। इस प्रशस्ति में इस कवि का पूर्ण परिचय मिल जाता है। इसमें ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्र ने अपने वंश आदि का स्पष्ट परिचय दिया है। प्रशस्ति में ब्राह्मणकुल की प्राचीनता को दिखलाते हुए उन्हीं ब्राह्मणों की सन्तान में अकलङ्क, इन्द्रनन्दी, अनन्तवीर्य, वीरसेन, जिनसेन, वादीभसेन, वादिराज आरं हस्तिमल्ल आदि अनेक विद्वानों का जन्म (?) लेने का कथन इन्होंने किया है और इन विद्वानों की वंशपरम्परा में अपने कुटुम्ब का क्रम विस्तार से बतलाया है। विस्तारभय से इस परम्परा को मैं उद्धृत नहीं कर सका। कवि नेमिचन्द्र ने अपने वंश को चोल राजवंश के द्वारा सम्मानित एवं अन्यान्य शाखा के मर्मज्ञ विद्वानों से अलङ्कृत लिखा है। जैसे—समयनाथ को तार्किक, राजमल्ल को कवि, चिन्तामणि को वादी और वाग्मी, अनन्तवीर्य को वटवाद-विशारद, पार्श्वनाथ को गीत आरं आगमशास्त्र का ज्ञाता (बहुत कुछ संभव है कि यही सगीत-समयसार के कर्ता हो), आदिनाथ को आयुर्वेद में निपुण, कौटिल्यराम को धनुर्वेद का वेत्ता, ब्रह्मदेव को बड़ा बुद्धिमान् तथा पट्कर्मकर्ण आरं देवेन्द्र को संहिताशास्त्र में निष्णात एवं राजमान्यतादि गुणों से सम्पन्न लिखा है। चन्द्रपार्य, ब्रह्मसूरि और पार्श्वनाथ इन तीन को कवि ने अपना मातुल बतलाया है। यह ब्रह्मसूरि वही हैं जिन्होंने प्रतिष्ठापाठ, त्रैवर्णिकाचार्यादि ग्रन्थों की रचना की है। नेमिचन्द्र के पिता देवेन्द्र और माता आर्यदेवी थीं। इन्हें आदिनाथ, नेमिचन्द्र और विजयप्प नाम के तीन पुत्र हुए। नेमिचन्द्र नाम का पुत्र ही प्रस्तुत कवि नेमिचन्द्र है। आपने अपने तीन भाइयों के सुपुत्रों का नाम-निर्देश करते हुए इन्हें भी विद्वान् लिखा है। नेमिचन्द्र जी ने इस ग्रन्थ में अपने को अभयचन्द्र का शिष्य स्पष्ट बतलाया है। इससे मालूम होता है कि छिसन्धान काव्य के टीकाकार देवनन्दी का शिष्य नेमिचन्द्र इनसे भिन्न है।

इस प्रशस्ति में इन्होंने अपने को 'सत्यशासन-परीक्षा' आदि ग्रन्थों का प्रयोक्ता बतलाया है। वह सत्यशासनपरीक्षा प्रस्तुत प्रवचनपरीक्षा ही मालूम होती है। राजसम्मानित

यह कवि नेमिचन्द्र स्थिरकदम्ब नामक नगर में रहते थे। पता नहीं है कि यह स्थिरकदम्ब किस स्थान का प्राचीन नाम है। कर्णाटक प्रांत में ही कहीं इसे होना चाहिये। साथ ही साथ इनके सम्बन्ध में यह कह देना भी आवश्यक है कि यह कवि नेमिचन्द्र जो गृहस्थ थे और लगभग १६वीं शताब्दी में मौजूद थे। इसमें कोई शक नहीं है कि यह एक प्रौढ कवि थे। इस प्रवचनपरीक्षा की श्लोक संख्या १००० मानी गयी है। इसकी भाषा विशुद्ध पद्य प्रसादादिगुणों से सम्पन्न है। किन्तु भवन की यह प्रति पत्र-तत्र अशुद्ध है।

इस प्रवचनपरीक्षा में ग्रन्थकर्त्ता ने निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला है —

(१) अहिंसाधर्म की प्रधानता पद्य जैनधर्म में ही इसकी परिपूर्णता (२) वेद की समालोचना पद्य मीमांसक, सांख्य आदि दर्शना की वेद बाह्यता तथा इनमें भी अहिंसा की मान्यता (३) अहन्धिर्मर्षे आदि धार्यों में अहन्त का और “न हिंस्यात् सवभूतानि” आदि धार्यों में अहिंसा का वेद में उल्लेख (४) वेद-प्रतिपादित कष्ट बातें अधार्मिक हैं यदि ये धर्मबाह्य नहीं हैं तो मीमांसक आदि ने ईश्वर के अस्तित्व का जो खण्डन किया है, यह भी धर्मबाह्य नहीं होना चाहिये आदि (५) वेद-प्रतिपादित अहन् आदि शब्दों का अर्थ अहन्त न करके इन्द्रादिक करना युक्तियुक्त नहीं है (६) वेद-प्रतिपादित अहिंसादि धर्मों को माननेवाले जैनों वेदबाह्य नहीं कहला सकते हैं (७) वेद का समीचीन बोध नहीं होने से यदि जैनी वेदबाह्य है तब बहुसंख्यक धैर्यिक मतायलम्बी भी वेदबाह्य ठहरेंगे अन्यथा आपस में वेदोक्त बातों पर इतना मतभेद क्यों उठ खड़ा हुआ? (८) जैनों के वेद उनके प्रतिपादक, उनमें वेदनाम पद्य संख्या की सार्थकता (९) अहिंसा की सर्वज्ञता तथा उनकी वेदप्रतिपादकता (१०) धर्म का भेद एवं गृहस्थ धर्म का वर्णन (११) पक्षेन्द्रिय जीवों के हिंसक गृहस्थ पक्षेन्द्रिय जीवों के हिंसक नहीं कहला सकते (पञ्चाक्षरीफलं यदग्रहि पञ्चनकारत । तद्वत्पञ्चाक्षताद्य न पञ्चैकान्नघातत) (१२) मांस जीव का शरीर है अवश्य पर जीव शरीर मांस हो भी सकता है और नहीं भी (मांस जीवशरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मांसम् । यद्वा निम्बो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्न वा निम्ब ॥) (१३) जैनों के बारह अङ्ग पूर्वापर अधिकृत हैं और वे कथञ्चित् पौक्येय-रूप हैं (१४) अपौक्येयता ही प्रमाण की सुलभिति नहीं है एवं वचन में प्रमाणता गुणविशिष्ट वक्ता के ऊपर निर्भर है। (१५) प्रणव (ॐ) पद्य यज्ञादिकर्म भी जैनवेदों में निर्दिष्ट है (१६) आत का यथाथ स्वरूप (१७) बारह अङ्गों का विद्वृत ध्यान (१८) जैनों में सभ्यावन्दन सकलीकरण गायत्री (अपराजितमन्त्र) तपण, आरु भी कथञ्चित् उपादेय है (१९) तिरपन क्रियाओं का ध्यान (२०) रिज का लक्षण पद्य कस्यय।

इस ग्रन्थ को आमूलग्रन्थ देखने से पता लगता है कि वेद तपण धारु, सभ्या पद्य

गायत्री आदि को कथञ्चित् जैनागमानुकूल सिद्ध करना ही ग्रन्थकर्त्ता का लक्ष्य रहा है। हाँ, इसमें यह विशेषता है कि इन शब्दों का अर्थ और प्रतिपादित विषय जैन आगम के अतिरुद्ध ही बतलाया गया है। मालूम होता है कि एक जमाने में इन चीजों का बडा चोलवाला था। इसी से जैनधर्म में भी यह सब कुछ है इस बात का परिदर्शन कराते हुए धर्म की रक्षा एवं सर्वमान्यता सिद्ध करने के लिये जैनग्रन्थकर्त्ताओं को भी इन चीजों की शरण लेनी पडी थी। धर्म पर कालदेशादि का प्रभाव पडना सर्वथा स्वाभाविक है। इस प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता। धर्म की रक्षा ही इन ग्रन्थकर्त्ताओं का मूल लक्ष्य रहा होगा इसलिये इनका यह कार्य सामयिक एव उपादेय कहा जा सकता है। इसके लिये एक वर्तमान दृष्टान्त को ही लीजिये—मेरे जानते राष्ट्रीय ध्वजाभिवन्दन एक कट्टर जैनी के लिये धर्मसगत नहीं हो सकता, फिर भी आजकल प्रायः श्रत्येक कार्य में इसे अपनाया जाता है। अगर इस समय इसका कोई विरोध करेगा तो वह अलाफिक ही नहीं प्रत्युत देशद्रोही करार दिया जायगा। इसी दृष्टान्त को विचारशील एक कट्टर जैनी को अपने सामने रख कर उल्लिखित ग्रन्थवर्णित बातों पर विचार करना चाहिये। अस्तु, इसमें अपनी बातों को पुष्ट करने के लिये ग्रन्थकर्ता ने आसपरीक्षा, गोभ्रमटसार, आदिपुराण, सागारधर्माभूत आदि ग्रन्थों के हवाले दिये हैं।

(३५) ग्रन्थ नं० २४७
ख

प्रतिष्ठाविधान

कर्त्ता—हस्तिमल्ल

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इंच

चौडाई ६ इंच

पत्रसंख्या १६

प्रारम्भिक भाग—

नमेऽर्हते सदा भूयादरिघातार्थजोऽर्हते ।

रहस्यभावतो लोकत्रयपूजाईभावत ॥

नद्येन्द्रनन्दिमुकुटोत्सवप्रतिष्ठाप्राम्गाविहृत्यमजित जिनदिव्यमूर्ते ।
तोयैमुव शुभतमैरमितो विशोष्य पात्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोधयित्वा ॥

× × × ×

मध्य भाग (पूर्वपष्ठ १०, पक्ति ६) —

इन्द्र यज्जधर शुचि शिखिकर वैवस्वत वृषिडनम्
रत्नोमुद्गरभृत्सुपाशमुशलि घृत्तायुध मास्तम् ।
यत्र शक्तिभूत त्रिशूलकुशलं कद्राधृत स्वस्तिकम्
शेष सधृतकुन्वमिदुमपि तान्यस्यापि विकपालकान् ॥

× × × ×

अंतिम भाग —

स्वस्तिश्रीसुखसिद्धिभृद्धिभिभव प्रख्यातय पूज्यता
कीर्तिं ज्ञेममगण्यपुरणमहिमा दीर्घायुरारोग्यवत् ।
सौभाग्य धनधान्यसम्पदमयं भद्रं शुभं मङ्गलम्
भूयाद्भव्यजनस्य भास्वति जिनाधीशे प्रतिष्ठापिते ॥

इति हस्तिमल्ल प्रतिष्ठाविधान समाप्तम् ।

यह हस्तिमल्ल-प्रतिष्ठा विधान मूडचिद्री से प्रतिलिपि करा कर आया है। इसमें कहीं भी ग्रन्थकर्ता का परिचय नहीं मिलता। परन्तु ग्रन्थ के आदि और अन्त में 'हस्तिमल्लकृत' लिखा मिलता है। अथर्व्य। इसी से इस प्रतिष्ठाग्रन्थ का कर्ता हस्तिमल्ल माना गया है। अथर्वपाथ-कृत 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' में निम्नलिखित यह श्लोक उपलब्ध होता है —

“धीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसमापितो
यं पूर्वं गुण्यभद्रसूरिषसुनन्दीन्द्रादिनन्दुर्जित ।
यद्वाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धीरित
स्तेभ्यस्स्वाहृतसारमार्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः ॥

इस श्लोक से यह बात सिद्ध हो जाती है कि हस्तिमल्ल ने भी एक प्रतिष्ठा-पाठ रचा है। अतः यह ग्रन्थ उन्हीं का प्रणीत कहने में कोई आपत्ति नहीं दिखती है। यदि यह प्रतिष्ठा विधान विक्रान्तसौरव एव मैथिलीकव्याण आदि नाटकों के प्रणेता प्रसिद्ध हस्तिमल्ल कवि का ही माना जाय तो इनका कुछ विशेष परिचय 'माणिक्यचन्द्र-ग्रन्थमाला' में प्रकाशित उक्त नामकग्रन्थों की भूमिका में मिलता है। इस भूमिका के लेखक धीयुत १०

नाथूराम जी प्रेमी हैं। इस पाणिडत्यप्रगी भूमिका में प्रतिपादित दों-एक बातों पर जो मेरा मतभेद है—यहाँ पर सिर्फ उसी का खुलासा कर देना मेरा ध्येय है।

(१) प्रेमी जी ने इस भूमिका में लिखा है कि कवि ने अपने पृथ्वी पिता के नाम के आगे 'स्वामी' तथा 'महार' पद को जोड़ा है, इसमें श्रात होता है कि इनके पिता साधु अथवा महारक रहे होंगे। पर मुझे यह बात अखरती है। क्योंकि अगर इनके पिता गोविन्द महाराज या महारक होते तो कवि उनके वीचानाम का उल्लेख अवश्य करता। बल्कि वह अपने पृथ्वी पिता के उस वीचानाम का ही उद्धरण सगर्भ करता। किन्तु हस्तिमहल अपनी कृतिया में "महारगोविन्दस्वामिसुनुना" इतना ही लिखकर चुप हो बैठने है। गोविन्द स्वामी या गोविन्द महाराज यह नाम बहुधा दक्षिणात्य जैनतर ब्राह्मणों में आज भी प्रचलित है। इस बात को प्रेमी जी भी मानने है कि गोविन्द महाराज जैन होने के पहले श्वन्मगोत्रिय हिन्दू ब्राह्मण थे। अब रहा 'महार' शब्द। यह शब्द पृथ्वी अर्थ में प्रयुक्त होता शोणों में बहुलता से पाया जाना है। कवि हस्तिमहल के लिये अपने शब्दों में पिता के नाम के आदि में ऐसे आदरसूचक शब्द का प्रयोग करना सर्वथा स्वाभाविक है। प्रेमी जी ने अपने उक्त पत्र को प्रमाणित करने के लिये एक आर प्रमाण उपस्थित किया है। आप का कहना है कि चिकांतकोरवीय प्रशस्ति में श्रीरमेन, जिनमेन, गुणभद्र आदि आचार्यपरम्परा में गोविन्द महाराज का उल्लेख मिलता है। मगर प्रेमी जी के इस प्रमाण के उत्तर में भी मेरी पहली दलील ही काफी मालूम पड़ती है। क्योंकि यहाँ भी उनका पूर्व नाम अर्थात् जैन होने के पहले का गोविन्द महाराज नाम ही दिया गया है, न कि जैन आगमानुसार परिवर्तित वीचानाम। हाँ, यहाँ पर यह प्रश्न उठ खड़ा हो सकता है कि गुणभद्रांत उक्त गुरुपरम्परा में गोविन्द महाराज का उल्लेख कैसे हुआ? मैं जानते इसमें कोई विशेष विचित्रता नहीं है। क्योंकि एक गृहस्थ जेनी भी किसी गुरुपरम्परा का अपने को अनुयायी बतला सकता है। इसके लिये कोई रुकावट नहीं है। इस सम्बन्ध में एक नहीं, अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। उन दिनों दक्षिण प्रांत में मेनगगीय आचार्यों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। अतः गृहस्थ गोविन्द महाराज ने भी इस आदर्शभूत गुरुपरम्परा को ही अपनी गुरुपरम्परा मान लिया। अब यह भी एक प्रश्न उठ सकता है कि जेनी होने के बाद गोविन्द महाराज ने अपना नाम क्यों नहीं बदल लिया। पर यह कोई नई बात नहीं है। क्योंकि आज भी जेनियों में बहुत से लोग कष्टर जेनी होते हुए भी हिंदू नाम ही धारण किये हुए हैं। इतना ही नहीं, खास कर दक्षिण में आज भी बहुत से जनवशों में वत्स, वशिष्ठादि हिंदू गोत्र-सूत्र ही चले आ रहे हैं। जनधर्म में दक्षिण होने के बाद भी उन्होंने अपने पूर्व गोत्र-सूत्रों का परित्याग नहीं

किया। इसके अतिरिक्त "तच्छिष्यानुक्रमे यातेऽसख्येये विश्रुतो भुवि। गोविन्दमह
इत्यासीद्विद्वान् मिथ्यात्ववर्जित ॥" प्रेमी जी के जिनसेनगुरुपरम्परा को पुष्ट करने वाले इस
श्लोक में गोविन्द मह को साधु या महान्क सिद्ध करने वाला कोई शब्द नहीं है।

प्रेमी जी ने उक्त हस्तिमल्ल के द्वारा रचित धिक्कांतकौरवीय नाटक के प्रथमाङ्क के अन्त
में प्रतिपादित—'श्रीधत्सगोत्रजनभूपणगोपमहृमेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात्।
नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहेध्वरेण श्लोकै शतै सदसि सत्कृतवान् बभूव ॥४०॥' और
इन्हीं के अज्ञापनद्वय नाटक में अङ्कित—"श्रीमत्पाण्ड्यमहेध्वरे निजमुजादण्डावलम्बीकृते
कर्णाटावनिमगडलं पद्मनानेकावनीशेऽवति। तत्प्रीत्यानुसरन् स्वबन्धुनिधैर्विद्वद्भिर्वाप्यै
सम जैनागारसमेतसंतरनमे (?) श्रीहस्तिमल्लोऽयसत् ॥ इन श्लोकों में उक्त त पाण्ड्यनरेश
को मधुरा के निकटस्थ पाण्ड्यदेशका शासक बतलाकर उल्लिखित हस्तिमल्लकविको इस
पाण्ड्य नरेश-द्वारा सम्मानित बताया है। पर 'राजावलिकये' में देवचन्द्र ने लिखा
है कि 'यह कवि हस्तिमल्ल उभयभाषाकविचक्रवर्ती थे। बल्कि इसी के आधार पर प्रेमी
जी का भी कहना है कि यह कवि हस्तिमल्ल कन्नड के भी कवि प्रमाणित होते हैं एवं इस
भाषा में भी इनको कोई रचना होनी चाहिये। किन्तु यह तो सबविदित बात है कि
मधुरा की प्रान्तीय भाषा सदा स तमिलु बली आती है। ऐसी अवस्था में कवि हस्तिमल्ल
को मधुरा के पाण्ड्यनरेश के आश्रित मानना ठीक नहीं जचता। अगर देवचन्द्र प्रति
पादित उभयभाषाकविचक्रवती का अर्थ सस्कृत एवं कन्नड भाषा ही माना जाय तो
मेरा अनुमान है कि हस्तिमल्ल के आश्रयदाता उक्त पाण्ड्यनरेश पाण्ड्यदेश के न होकर
वर्तमान दक्षिण कन्नडान्तर्गत कार्कळ के माने जा सकते हैं। यह राजपरम्परा भी
पाण्ड्यवंशीय ही था। बल्कि यह राजवंश शुरु से अन्त तक कट्टर जैनमतानुयायी ही
रहा। इस वंश में कई विद्वान् राजा भी हुए हैं तथा इन्होंने अनेक ग्रन्थकर्त्ताओं को
आश्रय भी दिया है।

दूसरी बात यह है कि प्रेमी जी जिस पाण्ड्यनरेश को हस्तिमल्ल कवि के सम्मानयिता
बतला रहे हैं, वह सुन्दर पाण्ड्य प्रथम के उत्तराधिकारी हैं। मुझे जहां तक ज्ञात है कि
यह सुन्दर पाण्ड्य जैन धर्म का एकान्त शत्रु था। ऐसी वंश में उसका उत्तराधिकारी एक
कट्टर जैन विद्वान् को आश्रय दे यह बात जरा खटकती है। 'कन्नडकविचरिते के मान्य
लेखक श्रीमान् स्वर्गीय नरसिंहाचार्य ने भी हस्तिमल्ल कवि को कन्नडकवि माना है।
इतना ही नहीं इन्होंने इस कवि के प्रणीत 'आविपुराण' नामक एक कन्नड ग्रन्थ का
खुलेख भी किया है। उल्लिखित बातों पर विचार करते हुए इस कवि को कार्कळ पाण्ड्य

नरेश का आश्रित मानना अधिक समुचित ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त ऊपर उद्धृत 'श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरे' इस श्लोक के द्वितीय चरण में अंकित—“कर्णाटावनिमण्डलं* पदानतानेकावनीशेऽवति” से भी मेरा कथन सर्वतो भाव से पुष्ट हो जाता है कि यह पाण्ड्यनरेश कर्णाटक देश के ही शासक थे न कि तमिलु प्रान्त के। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि कार्कल आज भी कर्णाटक प्रान्त के अन्तर्भूक्त है।

प्रेमी जी ने उक्त नाटकों की भूमिकाओं में हस्तिमल्ल कवि के परिचय में उद्धृत—
 “सम्यक्त्व सुपरीक्षितु मदगजे मुक्ते सरयाथापुरे ” “श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति य
 प्रख्यातवान् सूरिभि ” इन श्लोकों को अव्यपार्य कृत 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय'
 के बतलाया है। पर मुझे तो उक्त ग्रन्थ में ये श्लोक नहीं मिले। हां, इन्हीं हस्तिमल्ल
 के रचित अमुद्रित सुभद्रानाटिका के अन्त में ये दोनों श्लोक अङ्कित अवश्य हैं।

इसी 'प्रतिष्ठाविधान' के प्रारम्भिक भागान्तर्गत यह २य श्लोक विशेष विचारणीय
 है—“नम्रेन्द्रनन्दिमुकटोरुसर प्रतिष्ठां प्राग्भाविक्त्यमजित जिनेदिव्यमूर्त्तेः। तोयैर्भुव
 शुभतमैरभितो विशोभ्य पात्त्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोधयित्वा ॥” खास कर इस पद्य के
 प्रारम्भ में आये हुए इन्द्रनन्दि शब्द अत्यधिक द्रष्टव्य है। श्लोक कुछ अशुद्ध जान पड़ता
 है, इसी से ठीक सम्बन्ध नहीं बैठता। मैं इस बात की ओर संकेत करना चाहता हूँ,
 वह यह है कि इस प्रतिष्ठाविधान को इन्द्रनन्दिकृत प्रतिष्ठा-पाठ से अवश्य मिला लेना
 चाहिये। संभव है कि उसी की छाया लेकर इस प्रतिष्ठा-ग्रन्थ का प्रणयन किया गया हो।
 अव्यपार्य ने भी अपने जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय नामक प्रतिष्ठाग्रन्थ में इन्द्रनन्दि को प्रतिष्ठाग्रन्थ
 का प्रयोक्ता बतलाया है। वल्कि वह श्लोक ऊपर उद्धृत भी कर दिया गया है। अस्तु कवि
 हस्तिमल्ल १३वीं शताब्दी के अन्त में हुए हैं।



*इससे तमिलु एवं कर्णाटक दो अर्थ नहीं निकल सकते हैं।

क्रिया। इसके अतिरिक्त "तच्छिष्यानुक्रमे यातेऽसख्येये विद्युतो भुवि। गोविन्दमह
इत्यासीद्विद्वान् मिथ्यात्ववर्जितः ॥" प्रेमी जी के जिनसेनगुणपरम्परा को पुष्ट करने वाले इस
श्लोक में गोविन्द मह को साधु या भट्टारक सिद्ध करने वाला कोई शब्द नहीं है।

प्रेमी जी ने उक्त हस्तिमल्ल के द्वारा रचित विक्रान्तकौरवीय नाटक के प्रथमाङ्क के अन्त
में प्रतिपादित—“श्रीवत्सगोवर्जनमूपयणोपमहूप्रेमैकधामतनुजी भुवि हस्तियुद्धात्।
मानाकलाम्बुनिधिपाराइयमहेवरेण श्लोकै श्लै सद्सि सत्कृतवान् बभूव ॥४०॥ और
इन्हीं के अज्ञानापघनज्ञय नाटक में अर्द्धित—“श्रीमत्पाराइयमहेवरे निजभुजादण्डायलम्बीकृते
कण्ठादाघनिमयडलं पदनसानेकाघनीशेष्विति। तत्प्रीत्यानुसरन् स्वबन्धुनिवहैविद्वन्निपातै-
समं जैनागारसमेतसतरनमै (१) श्रीहस्तिमल्लोऽवसत् ॥” इन श्लोकों में उक्त त पाराइयनरेश
को मधुप के निकटस्थ पाराइयदेशका शासक बतलाकर उल्लिखित हस्तिमल्लकविको इस
पाराइय नरेश-द्वारा सम्मानित बताया है। पर ‘राजावलिकये’ में देवचन्द्र ने लिखा
है कि ‘यह कवि हस्तिमल्ल उभयभाषाकविचक्रवर्ती थे। बल्कि इसी के आधार पर प्रेमी
जी का भी कहना है कि यह कवि हस्तिमल्ल कन्नड के भी कवि प्रमाणित होते हैं एव इस
भाषा में भी इनकी कोई रचना होनी चाहिये। किन्तु यह तो सर्वविदित बात है कि
मधुप की प्रान्तीय भाषा सदा स तमिलु चली आती है। ऐसी अयस्था में कवि हस्तिमल्ल
को मधुप के पाराइयनरेश के आश्रित मानना ठीक नहीं जचता। अगर देवचन्द्र प्रति
पादित उभयभाषाकविचक्रवर्ती का अर्थ सस्कृत एव कन्नड भाषा ही माना जाय तो
मेरा अनुमान है कि हस्तिमल्ल के आश्रयदाता उक्त पाराइयनरेश पाराइयदेश के न होकर
वर्तमान दक्षिण कन्नडान्तर्गत काकल के माने जा सकते हैं। यह राजपरम्परा भी
पाराइयवशीय ही था। बल्कि यह राजवंश शुरु से अन्त तक कदूर जैनमतानुयायी ही
रहा। इस वंश में कई विद्वान् राजा भी हुए हैं तथा इन्होंने अनेक ग्रन्थकर्त्ताओं को
आश्रय भी दिया है।

दूसरी बात यह है कि प्रेमी जी जिन पाराइयनरेश को हस्तिमल्ल कवि के सम्मानयिता
बतला रहे हैं, वह सुन्दर पाराइय प्रथम के उत्तराधिकारी हैं। मुझे जहाँ तक ज्ञात है कि
यह सुन्दर पाराइय जैन धर्म का एकान्त शत्रु था। ऐसी दृशा में उसका उत्तराधिकारी एक
कदूर जैन विद्वान् को आश्रय दे यह बात जरा खटकती है। ‘कन्नडकविचरिते के मान्य
लेखक श्रीमान् स्वर्गीय बरसिंहास्त्राय ने भी हस्तिमल्ल कवि को कन्नडकवि माना है।
इतना ही नहीं इन्होंने इस कवि के प्रणीत ‘आदिपुराण नामक एक कन्नड ग्रन्थ का
उल्लेख भी किया है। उल्लिखित बातों पर विचार करते हुए इस कवि को काकल पाराइय

नरेश का आश्रित मानना अधिक समुचित ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त ऊपर उद्धृत 'श्रीमत्पाराङ्गमहीश्वरे' इस श्लोक के द्वितीय चरण में अंकित—“कर्णाटावनिमण्डलं* पदानतानेकावनीशेषवति” से भी मेरा कथन सर्वतो भाव से पुष्ट हो जाता है कि यह पाराङ्गनरेश कर्णाटक देश के ही शासक थे न कि तमिलु प्रान्त के। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि कार्कल आज भी कर्णाटक प्रान्त के अन्तर्भूक्त है।

प्रेमी जी ने उक्त नाटको की भूमिकाओं में हस्तिमल्ल कवि के परिचय में उद्धृत—
 “सम्यक्त्व सुपरीक्षितु मद्गजे मुक्ते सरयाथापुरे ” “श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति य
 प्रख्यातवान् सुरिभिः” इन श्लोकों को अर्थपर्य्य कृत ‘जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय’
 के बतलाया है। पर मुझे तो उक्त ग्रन्थ में ये श्लोक नहीं मिले। हाँ, इन्हीं हस्तिमल्ल
 के रचित अमुद्रित सुभद्रानाटिका के अन्त में ये दोनो श्लोक अङ्कित अवश्य हैं।

इसी ‘प्रतिष्ठाविधान’ के प्रारम्भिक भागान्तर्गत यह २य श्लोक विशेष विचारणीय
 है—“नन्नेन्द्रनन्दिमुकटोरुसर प्रतिष्ठां प्राग्भाषिकृत्यमजित जिनदिव्यमूर्त्तः। तोयैर्भुव
 शुभतमैरभितो विशोभ्य पात्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोधयित्वा ॥” खास कर इस पद्य के
 प्रारम्भ में आये हुए इन्द्रनन्दि शब्द अत्यधिक द्रष्टव्य है। श्लोक कुछ अशुद्ध जान पड़ता
 है, इसी से श्लोक सम्बन्ध नहीं बैठता। मैं इस बात की ओर सकेत करना चाहता हूँ,
 वह यह है कि इस प्रतिष्ठाविधान को इन्द्रनन्दिकृत प्रतिष्ठा-पाठ से अवश्य मिला लेना
 चाहिये। सम्भव है कि उसी की छाया लेकर इस प्रतिष्ठा-ग्रन्थ का प्रणयन किया गया हो।
 अर्थपर्य्य ने भी अपने जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय नामक प्रतिष्ठाग्रन्थ में इन्द्रनन्दि को प्रतिष्ठाग्रन्थ
 का प्रणेता बतलाया है। चल्कि वह श्लोक ऊपर उद्धृत भी कर दिया गया है। अस्तु कवि
 हस्तिमल्ल १३वीं शताब्दी के अन्त में हुए है।



*इससे तमिलु एवं कर्णाटक दो अर्थ नहीं निकल सकते हैं।

(३६) ग्रन्थ न० २४९
ख

श्रीकल्याण-मन्दिर

कथा—कुमुदचन्द्रावाय

विषय—स्तोत्र और यन्त्र मन्त्र

भाषा—संस्कृत (मूल तथा यन्त्र के विवरण
में प्राकृत एवं हिन्दी भी हैं)

लम्बाई ७ इंच

चौड़ाई ५ इंच

पक्षसंख्या ४४

प्रारम्भिक भाग—

कल्याणमन्दिरसुन्दरमवधमेदि भीताभयप्रदमनिन्दितमग्निपद्मम् ।
ससारसागरनिमज्जदशेषजन्तुपोतायमानमभिनम्य त्रिनेश्वरस्य ॥ १ ॥
यस्य स्वयं सुरगुर्कारिमाभ्युपशो स्तोत्रं सुविस्तृतमतिन विभुर्विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कप्रठस्मयधूमकेतोस्तस्पाहमेव किल सस्तवर्न करिष्ये ॥ २ ॥

श्रद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं शमो पास पास परायाण । ॐ ह्रीं अर्हं शमो क्वं कराप । मूल—
ॐ नमो भगवते मम ईप्सितां कायसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा । यन्त्र—कमलाकार पंचवींश—२५
पाखंडी मध्ये श्रद्धि मध्ये कल्प्य ऊपरि मूल दिन ६० जपै प्रहर २ नित्यप्रति १०० जपै ।
परत ऊपर, रक्त आसन, एक माला पूष दिग्मुख धूप कपूर चन्दन, मृगमद से लाल रस
की लक्ष्मी लाम मूल धीपाश्वर्नाथ चूडारत्न करै प्रहास्य पाले और पकान्त शुचि रहै ।

(आगे इसी मूल का यन्त्र दिया है) ॥ १ २ ॥

x

x

x

x

मध्य भाग (पर पृष्ठ २१, पक्ति १)—

स्वामिन् सुदूरभवन्मयं समुत्पतन्तो मन्ये ष्यन्ति शुचयः सुरचामरौघा ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुगावाय ते नूनमूष्यगतयं खलु शुद्धभावा ॥ २२ ॥

श्रद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं शमो तववत्पलाय । मूल—ॐ नमो परमावत्यै हर्मल्यु नम । यन्त्र—
चम्पक धृत्ताकार पत्र नव—९ मध्ये भद्राक्षराणि तदुपरि श्रद्धि, दिन २१, नित्य १००० जपै

चाग में अच्छा थोड़ा फलनि जपै, आसन ढाभ (कुज), माला तुलसी, मुख नैर्ऋत्य कोण,
धूप गुग्गुल, झंरीला घृत की देय गयो पुष्प नीपजै (कदम्बपुष्प) ॥ २२ ॥

(आगे चम्पक-वृक्षाकार में सुन्दर यत्न बना हुआ है) ।

X X X X X

अन्तिम भाग :—

जननयनकुमुदचन्द्रप्रभास्वरा स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा ।

ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्ष प्रपद्यन्ते ॥ ४४ ॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं नम । मन्त्र—ॐ नमो धरणेन्द्रपद्मावतीसहिताय श्रीं ह्रीं
पंं अर्हं नम । यन्त्र—गुलाव पुष्पवत् पत्र कर्णिका मध्ये ॐ कर्णिकायां ऋद्धि । तदुपरि
मत्र । दिन ४०, नित्य १००० जपै, लक्ष्मी प्राप्ति, आसन रक्त, माला विद्रुम, पूर्व मुख,
धूप चन्दन मुस्त, कपूर पलारस । प्रथम तो साधक जन ब्रह्मचर्य धारक हो, पञ्च अहिंसादि
धर्म का धारी हो, लघु भुक्ति, दयावान हो, पवित्रातें चर्माश्रित वस्तु घृत हींग आदि का
त्यागी हो मन्त्र सिद्ध करे । मत्र सिद्ध होने पर पद्मावती देवी का पूजन श्रावकाने भुक्त देय,
चार प्रकार सद्य गान दे । सर्व सकट श्लै, सर्वसिद्धि श्रीपाश्वरनाथ रत्न चूडा देय ॥ ४४ ॥

‘भक्तामर’ के ममान इस स्तोत्र में भी ऋद्धि, मन्त्र, यन्त्र पत्र साधनक्रम आदि प्रत्येक
पद्य के अन्त में स्पष्ट दिये गये हैं । ग्रन्थ में कर्षी मन्त्रादि विवरण-कर्ता का उल्लेख नहीं
मिलता है । श्रीकुमुदचन्द्रजी केवल इस स्तोत्र के प्रणेता हैं ।

(३७) ग्रन्थ नं० २५०
ख

सिद्धचक्र

कर्ता—ललितकीर्ति भट्टारक

विषय—पूजा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इन्च

चौड़ाई ४। इन्च

पत्र संख्या ११६

प्रारम्भिक भाग—

प्रणम्य श्रीजिनाधीन लब्धिमामस्त्यसयुतम् ।

श्रीसिद्धचक्रयन्त्रस्याच्चारामहन्त्रगुण स्तुत्रे ॥ १ ॥

- यजमान-लक्षण— विनीतो बुद्धिमान् प्रीतो न्यायोपासघनो महान् ।
शीलाद्विगुणसम्पन्नो यन्त्र सोऽत्र प्रशस्यते ॥ २ ॥
- याजक-लक्षण— दशकालादिभावज्ञो निमलो बुद्धिमान् घर ।
सद्वाक्याद्विगुणापेतो याजक सोऽत्र शस्यते ॥ ३ ॥
- आचार्य लक्षण— दशनज्ञानचारित्र्यै सयुतो ममतान्तग ।
प्राङ् प्रश्नसद्भ्यान् गुरु स्याच्छान्तिनिष्ठित ॥ ४ ॥
- मण्डप-लक्षण— निर्मल पृथुल घंगतारकातोरणान्वितम् ।
प्रलम्बपुष्पमालाढ्य चतुर्धा कुमसयुतम् ॥ ५ ॥
येरोपसहकसालतालमार्दलमिःस्वनै ।
आकुल, स्त्रैरगोताढ्य मण्डप कारयेदुद्युध ॥ ६ ॥
- सामग्री लक्षण— स्वजात्योत्कर्षिणी पुता नेत्रमा-सहारिणी ।
सामग्री शस्यते सद्भिर्निखिलानन्दकारिणी ॥ ७ ॥

X

X

X

गध्य भाग (पृषपष्ठ ६९ पक्ति १)

- जयमाल— देवाधीशैर्मद्रीशै कथिपतिभिरिदं प्रत्यह पू-यपादा
नर्हस्तिद्वानुगेहांलिबिधमुनिवरान् सयुपाध्यायसाधून् ।
दोपातीतारिष्ठान् निजसुगुणगणाम्भूपथैभूपितास्तान्
नत्वा द्रुगधोधवृत्तादिभिरपि सहितान्सस्तुषे तद्गुणान्प्यै ॥ १ ॥
सद्वन्तचतुष्टयगुणविलास हतधातिचतुष्टयकर्मपास ।
सकलातिशयाद्विसुगुणसमृद्ध त्यक(?)महन् जिन जय जय सुबुद्ध ॥ २ ॥
जय कर्माण्डककृतधैरदूर जय विश्वालोकनपरमेश्वर ।
जय जय सर्वोत्तमवसुसमृद्ध सिद्धाधिप जय जय श्रद्ध बुद्ध ॥ ३ ॥
जय पञ्चाचारधरणाधीर जय शिष्यानुग्रहकरणाधीर ।
स्थितकल्पदशाद्विसुगुणसमृद्ध जय सूरेश्वर सतत प्रबुद्ध ॥ ४ ॥
पकादशांगघृतकरदहार जय लब्धचतुदशपूववार ।
पथं ध्रुतजलनिधिगुणसमृद्ध त्वं पाठक जय सतत प्रबुद्ध ॥ ५ ॥
ध्मारमपरिहनिखिलमुक्त जय द्रुष्टिबोधचारित्ररक्त ।
जय मूलोत्तरगुणनिधिसमृद्ध जय साधो जय सततं प्रबुद्ध ॥ ६ ॥
जय सम्यग्दर्शनचञ्चुरज तपसा सह एतन्नयपथित ।
पर्यहारपरमगुणमेदपूर्णा सचितमुनिवरकृतकर्मचूर्ण ॥ ७ ॥

पञ्चैतान्परमैष्ठिन सुतपसा रत्नत्रयेणान्वितान्
 ससाराम्बुधितारकान् भुविजना ध्यायन्ति ये नित्यश ।
 त देवेन्द्रपद् नरेन्द्रपद्बीप्राप्ता गुणैर्भद्रकै
 सार्द्धं जन्मजरादिदुःखरहित पश्चाल्लभन्ते शिवम् ॥ ८ ॥
 × × ×

शान्तिम भाग—

श्रीकाण्डसद्ये ललितादिकीर्त्तिना भट्टारकेणैव विनिर्मिता वरा ।
 नामावली पद्यनिबद्धरूपिका भूयात्सतां मुक्तिपदाप्तिकारणम् ॥

इस 'सिद्धचक्रपूजा' के रचयिता काण्डासर्घीय भट्टारक ललितकीर्त्तिजी हैं । इन्होंने ही आदिपुराण की एक संस्कृत टीका भी लिखी है । इनके अतिरिक्त त्रिलोकसार-पूजा नामका एक और ग्रन्थ इनका मिलता है । प्रस्तुत ग्रन्थ सिद्धचक्रपूजा में रचयिता के नाम सद्य और पद् के सिवा और कोई विशेष परिचय नहीं मिलता । हां, आदिपुराण की टीका की निम्न लिखित प्रशस्ति में अपने गुरु का नाम दिया है ।

वर्षे सागरजागभोगिकुमिते मार्गे च मासेऽसिते
 पक्षे पक्षतिसत्तियौ रविदिने टीका कृतये वरा ।
 काण्डासद्यवरे च माथुरवरे गच्छे गगो पुष्करे
 देवश्रीजगदादिकीर्तिरभवत्ख्यातो जितात्मा महान् ॥
 तच्छिष्येण च मन्दतान्वितधिया भट्टारकत्व यता
 शुभद्वै(१) ललितादिकीर्त्यभिधया ख्यातेन लोके ध्रुवम् ।
 राजच्छीजिनसेनभाषितमहाकाव्यस्य भक्त्या मया
 सशोध्यैवमुपग्रतां बुधजनै शान्तिं विधायादरात् ॥

'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' में प० नाथूरामजी प्रेमी ने इनका समय वि० स० ६०११ दिया है । किन्तु उल्लिखित प्रशस्ति में दिये गये समय से इसका विशेष अन्तर पड जाता है ।

ललितकीर्त्तिजी का यह टीकाग्रन्थ ताडपत्राङ्कित कन्नडाक्षरमें भवन में मौजूद है । उन्होंने ने अपने पूज्य गुरु का नाम ऊपर श्रीजगत्कीर्त्ति देव लिखा है । प्राय यही जगत्कीर्त्ति 'पक्षीभावनोद्यापना' के रचयिता हैं । प्रस्तुत कृति की भाषा ललित एवं विशुद्ध है ।

(३८) ग्रन्थ नं० २५१
ख

लोकतत्त्व-विभाग

कला—धीस्तिहसुरि

विषय—भूगोल

भाषा—संस्कृत

सम्पाद १३ इव

चौदाई ८। इव

पत्रमत्या ७०

प्रारम्भिक भाग—

लोकालोकविभागज्ञान् भक्त्या स्तुत्या जिनेश्वरान् ।
 व्याख्यास्यामि समासेन लोकतरमनेकधा ॥ १ ॥
 क्षेत्रं कालस्तथा तीर्थं प्रमाणपुरुषैः सह ।
 चरितञ्च महसेपां पुराणं पञ्चधा विदुः ॥ २ ॥
 समन्ततोऽप्यनन्तस्य वियतो मध्यमाश्रित ।
 त्रिविभागस्थितो लोकस्तिर्यम्भोकोऽस्य मध्यग ॥ ३ ॥
 जम्बूद्वीपोऽस्य मध्यस्थो मन्दरस्तस्य मध्यग ।
 तस्माद्विभागो लोकस्य तिर्यग्भूर्धोऽधरस्तथा ॥ ४ ॥
 तिर्यम्भोकस्य बाहुल्य मेवायामसम स्पृतम् ।
 तस्माद्भूर्धो भवेद्भूर्धो ह्यधस्तादधरोऽपि च ॥ ५ ॥

× × ×

मध्यभाग (पूर्वपष्ठ ३७, पक्ति १२)

शुक्रो जीवो बुधो मौमो राहुरिष्टशनेश्वरा ।
 धूम्राग्निऋष्यानीला स्यू रक्त शीतश्च केतव ॥
 श्वेतकेतुजलाख्यश्च पुष्पकेतुरिति प्रहा ।
 प्रतिचन्द्र ग्रहा घते कृत्तिकादीनि भानि च ॥
 पद्तापा कृत्तिका प्रोक्ता आकृत्या व्यजनोपमा ।
 शकटोऽधिसमा ह्येवा रोहिण्य पचतारका ॥

मृगस्य शिरसा तुल्यास्तिस्त्र सोम्यस्य तारका ।
दीपिकावद्भवत्याद्रा पकतारा च सोमिता ॥
पुनर्वसोश्च पद्तारा व्याख्यातास्तोरणोपमा ।
अनुराधा पडेवोक्ता मुक्ताहारोपमाश्च ता ॥
वीणाशृंगसमा ज्येष्ठा तिस्त्रस्तस्याश्च तारका ।
मूलो वृश्चिकवत्प्रोक्तो नव तस्यापि तारका ॥
आप्य दुष्कृतवापीवच्चतस्त्रस्तस्य तारका ।
वैश्वस्य सिंहकुभाभाश्चतस्त्रस्तारका ध्रुवम् ॥
अभिजिद्गजकुभाभस्तिस्त्रस्तस्य च तारका ।
मृदगसद्वज्रो दृष्ट श्रवणश्च त्रितारक ॥
पञ्चतारा धनिष्ठा च पतत्पत्तिसमाश्च ता ।
एकादशशत तारा वारुणासेन्यवच्च ता ॥
पूर्वप्रोष्ठपदे तारे हस्तिप्रर्वतनूपमे ।
उत्तरे चोदिते तारे हस्तिनोऽपरगात्रवत् ॥
रेवती नौसमा तस्या द्वात्रिंशत्खलु तारका ।
अश्वनी पञ्चतारा स्यान्मता साश्वशिरस्तमा ॥
भरणीयोऽपि त्रिकास्ताराश्चुल्लीपापाणसस्थिता ।
सैकादशशत चैकसहस्रं स्वस्वतारका ॥
प्रमाणेनाहत कृत्तिकाद्वितारप्रमा भवेत् ।
नवाभिजिन्मुखास्ताराः स्वाति पूर्वोत्तरेति च ॥
द्वादशप्रथमे मार्गे चरन्तीन्द्रोर्मता इति ।
मघापुनर्वसू तारे तृतीये सप्तमे पथि ॥
रोहिणी च तथा चित्वा पण्डे मार्गे च कृत्तिका ।
विशाखा चाण्डमे चानुराधा च दशमे पथि ॥
ज्येष्ठा चैकादशे मार्गे शोषा पञ्चदशोष्टका ।
हस्तमूलत्रिक चैव मृगशीर्षद्विक तथा ॥
पुष्यद्वितयमित्यष्टौ शेषतारा प्रकीर्तिता ।
कृत्तिकासु पतन्तीषु मध्यं यन्त्यष्टमा मघा ॥
उदयन्त्यनुराधाश्च शेषेष्वेव तु योजयेत् ।
भरणी स्वातिरश्लेषा चाद्दशतिभिपक्तया ॥

ज्येष्ठेति पट् जघन्या स्युक्त्वाओत्तराक्षपम् ।
 पुनश्च विशाखा च रोहिणी चेति पट् पुन ॥
 अश्वनी कृत्तिका चानुपधा चिन्ता मया तथा ।
 मूलं पूर्वार्त्तिकं पुष्यं हस्तं श्रवणरिषती ॥
 मृगशार्षं धनिष्ठेति त्रिप्रपञ्चं च मध्यमा ।
 रविजघन्यये तिष्ठेत् सप्त द्वादशमांशकम् ॥
 पद्मिन् मध्यमोत्कृष्टे मे तद्द्वित्रिगुणं क्रमात् ।
 अग्निजिह्वाग्नेनेन सप्तशतचतुर्दशम् ॥
 सप्तपञ्चाशत्शून्यत्रिपण्णहर्त्तं विधुश्चरेत् ।
 चन्द्रो जघन्यनक्षत्रे दिनार्धं मध्यमर्त्तिके ॥
 दिवस चोक्तमे मे च तिष्ठेत् साधदिनं भुवम् ।
 योजनानां भवेत्तिसत् पष्टिश्च भवति क्रमात् ॥
 जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्रपरिमण्डलम् ।
 अग्निजिह्वात्कृष्टलक्ष्मणशक्ययोजनम् ॥
 घटिका अपि तासां स्युः समसंख्या हि मण्डले ।

x x x

धर्मिण्य माग—

युक्तं प्राणिकपारुणेन विमलैः सत्यादिभिश्च घृत-
 मिथ्यादधिकपापनिजयशुचिर्जित्वेन्द्रियार्थां धमाम् ।
 दग्धा दीप्ततपोऽग्निना विरचितं कर्मापि सिद्धं मुनि-
 सिद्धिं याति विहाय जन्मगहनं शापरुषिकीकृतम् ॥
 मन्वेभ्यः सुरमात्रुपौरुषस्यसि श्रीवर्धमानार्हता
 यत्पौरुषं जगतो विधानमस्मिन्नं ह्यार्तं सुधर्मादिभिः ।
 आचार्यावलिकागतं विरचितं तद्विसहसुरपिण्डा
 भाषायां परिवर्तनेन निपुणैः सम्मन्वितं साधुभिः ॥
 वैश्वे स्थिते रविस्तुते क्षयमे व जीवे

राजोत्तरेषु सितपद्ममुपेत्य वन्दे ।

धामे च पाददिकनामनि पाद्यापाण्ड्यं चाप्यु

शास्त्रं दुष्टं लिखितवान् मुनिसर्वानन्दी ॥

सवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मण ।
अशीत्यध्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥
पञ्चादशशतान्याहु पट्त्रिंशदधिकानि वै ।
 शास्त्रस्य सग्रहस्त्वेप छन्दसानुष्टुभेन च ॥

इति लोकविभागे मोक्षविभागो नामैकादशं प्रकरणं समाप्तम् ।

इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत और छन्द अनुष्टुप् है। इसमें जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, मानुपक्षेत्र, द्वीपसमुद्र, काल, तिर्यग्लोक, भवनवासिलोक, गति, मध्यलोक, व्यन्तरलोक, स्वर्ग एवं मोक्षविभाग नाम के ग्यारह अधिकार या अध्याय हैं। सन्नेप में यह त्रैलोक्यसार के ढग का ग्रन्थ है। इसके अन्तिम श्लोक ये हैं—

“वैश्वे स्थिते रविमुते वृषभे च जीवे,
 राजोत्तरेषु सितपक्ष्मपेत्य चन्द्रे ।
 ग्रामे च पाटलिक नामनि पाण(पाण्ड्य)राष्ट्रे,
 शास्त्रं पुरा लिखितवान्मुनिसर्वनन्दी ॥१॥”

“सवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मण ।
 अशीत्यध्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥२॥”
 “पञ्चादशशतान्याहु पट्त्रिंशदधिकानि वै ।
 शास्त्रस्य सग्रहस्त्वेप छन्दसानुष्टुभेन च ॥३॥”

उल्लिखित प्रथम श्लोक का यह अर्थ होता है कि जिस समय उत्तराषाढ नक्षत्र में शनि, वृषराशि में गुरु तथा उत्तराफाल्गुनी में चन्द्रमा था, एवं शुक्लपक्ष था (अर्थात् फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा थी) उस समय पाण (पाण्ड्य) राष्ट्र के पाटलियाम में इस शास्त्र का प्रणयन पहले सर्वनन्दी नामक मुनि ने किया ।

श्लोकगत पाटलियाम शब्द के फुटनोट में जैनहितैषी भाग १३, पृष्ठ ५२६ में पण्डित नाथूरामजी प्रेमी ने पाटलियाम को पाटलिपुत्र मान कर लिखा है कि ‘पाटलिपुत्र पटने का पुराना नाम है’। परन्तु वास्तव में यह पाटलियाम प्राचीन पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) न होकर प्राचीन पाण्ड्यदेशान्तर्गत वर्तमान कड्डलोर (Cuddalore) है ।† इसे ‘पेरियपुराण’ आदि ग्रन्थों में त्रिपुदिरिपुलियूर (Trippadiripuliyur) भी कहा गया है ।

† “Some contributions of South India to Indian Culture” By Prof Krishna Swami Iyengar,

क्योंकि उल्लिखित द्वितीय श्लोक का यह स्पष्ट अर्थ है कि 'कांची के राजा सिंह-वर्मा के राज्यारोहण के बादसर्वे सयत्सर और शक ३८० वें वर्ष में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ'। कांचीश राजा यह सिंहवर्मा पल्लववंश के तत्कालीन शासक हैं। अन्त लोकविभाग का रचनास्थान प्राचीन पांडुलिपुत्र अर्थात् वर्तमान पटना न होकर दक्षिण भारत का उक्त स्थान मानना ही सयुक्तिक है। दूसरी बात यह है कि उक्त श्लोक में जो 'पाण्डुराष्ट्र' शब्द आया है उसको कितने ही विद्वान् अभी तक पाण या घाण राष्ट्र के रूप में ही मानते आ रहे हैं। किन्तु वास्तव में यह पाण या घाण राष्ट्र न हो कर 'पाण्ड्य राष्ट्र' ही होना चाहिये, जिसकी राजधानी सिंहवर्मा के काल में भी कांचीनगरी ही रही। ऊपर दिये अन्त के तीसरे पद्य से सिद्ध होता है कि इस लोक-विभाग में अनुष्टुप् छन्द के हस्ता से १५२६ पद्य हैं। साथ ही साथ जिम्नलिखित पद्य तथा उक्त प्रथम पद्य के अन्तिम पाद से यह भी ज्ञात होता है कि इसके मूल प्राकृत के रचयिता मुनि सर्वनवी हैं। सिंहवर्मा केवल इसके संस्कृत भाषान्तरकार हैं। —

“अभ्येभ्य सुप्रमानुषोवसर्वासि धीवर्द्धमानार्हता
 यत्प्रोक्तं जगती विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभिः ।
 आचार्यबलिकागत विरचित तत्सिंहसूरर्पिणा
 भाषाया परिधर्तनेन निपुणै सम्मानित साधुभिः ॥

इस ग्रन्थ में जो शक ३८० [वि० स० ५१२] रचनाकाल दिया गया है, वह मूल प्राकृत लोकविभाग का है, न कि इस सिंहवर्माविरचित संस्कृत लोकविभाग का। संभव है कि इसका रचनाकाल या तो लिखा ही नहीं गया है या लेखकों के प्रमाद से छूट गया है। इस संस्कृत लोकविभाग में त्रिलोक-प्रवृत्ति और 'आदिपुराण आदि के अतिरिक्त 'त्रिलोकसार' ग्रन्थ के भी उद्धरण मिलते हैं। इसलिये निर्विषाद सिद्ध होता है कि यह लोकविभाग विक्रमोपम्य ग्यारहवीं शताब्दी के बाद का है। हाँ, इसका निश्चित समय अभी विचारणीय है।

उल्लिखित पत्तियों का आशय यह हुआ कि उपलब्ध यह संस्कृत 'लोकविभाग' अधिक प्राचीन नहीं है। प्राचीनता से उसका इतना ही सम्बन्ध है कि यह शक सषष्ट ३८० [वि० स० ५१२] के एक बहुत पुराने प्राकृत लोकविभाग का संस्कृत रूपान्तर है। परन्तु इस बात का नियत होना अभी बाकी है कि यह त्रिलोकसार से कितने समय पीछे बना। अगर इसके कर्ता धीसिंह सूरि जी के अन्य किसी ग्रन्थ का पता लगता तो इससे शायद इसका निर्णय हो जाता। मरे जानते सिंहसूरि-नामक ग्रन्थकर्ता दो-तीन हुए हैं। यह सिंहसूरि उनमें से अन्यतम हैं या भिन्न हैं इसका भी निर्णय होना आवश्यक है।

प्रस्तुत लोकविभाग के कर्ता सिंहसूरि जी ने अपनी इस कृति में अपनी गुरुपरम्परा का कुछ भी परिचय नहीं दिया है।

इसमें सन्देह नहीं है कि यह लोकविभाग जैनभूगोल के उन्नेयनीय ग्रन्थों में से एक है। बालिक संस्कृत साहित्य की दृष्टि में भी इसका महत्त्व कुछ कम नहीं है। क्योंकि यह ग्रन्थ अपनी सरलता पथ प्रज्ञ-सुन्दरता से रचयिता के मन्वृत-पाणिडन्व को अभिव्यक्त करने से घाज नहीं आता। किसी जैनप्रकाशन-मस्या को इसे प्रकाशित कर जैनभूगोल-संबन्धी उलफनों को मुलमाने में महायक घनना चाहिये।

(३७) ग्रन्थ नं० $\frac{२५२}{४}$

श्रीपुराण

कर्ता—सरलकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३ इञ्च

चौडाई ६ इञ्च

पत्र संख्या ३८

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमते सरलज्ञानसाम्राज्यपद्ममीयुषे ।
 धर्मचक्रभृते भर्त्रे नम ससात्मीमुषे ॥१॥
 पुराण मुनिमानस्य जिन चृपभमच्युतम् ।
 महत्तस्तत्पुराणस्य पीठिका व्याकरिष्यते ॥२॥
 अनादिनिधन कालो वर्तनालक्षणो मतः ।
 लोफमात्र स सूक्ष्माणुपरिच्छिन्नप्रमाणक ॥३॥
 वर्तितो द्रव्यकालेन वर्तनालक्षणो य ।
 कालः पूर्वापरीभूतो व्यवहाराय कल्पते ॥४॥
 उत्सर्पिण्यावसर्पिण्या द्वौ भेदौ तस्य कीर्तितौ ।
 उत्सर्पाद्वसर्पाञ्च घलायुर्देहवर्णणाम् ॥५॥
 कोटीकोट्यो दशैकस्य प्रमा सागरसख्यया ।
 शेषस्याप्येवमेवैष्टा तावुभौ कल्प इष्यते ॥६॥

X

X

X

क्योंकि उल्लिखित द्वितीय श्लोक का यह स्पष्ट अर्थ है कि कांची के राजा सिंह धर्मा के राज्यारोहण के बादसर्वे सवत्सर और शक ३५० वें वर्ष में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। कांचीश राजा यह सिंहधर्मा पल्लववंश के तत्कालीन शासक हैं अतः लोकविभाग का रचनास्थान प्राचीन पाण्डिपुत्र अर्थात् वर्तमान पम्पान होकर दक्षिण भारत का उक्त स्थान मानना ही सयुक्तिक है। दूसरी बात यह है कि उक्त श्लोक में जो 'पाण्यराष्ट्र' शब्द आया है उसको कितने ही विद्वान् अभी तक पाण्य या बाण्य राष्ट्र के रूप में ही मानते आ रहे हैं। किन्तु वास्तव में वह पाण्य या बाण्य राष्ट्र न हो कर 'पाण्यराष्ट्र' ही होना चाहिये जिसकी राजधानी सिंहधर्मा के काल में भी कांची नगरी ही रही। ऊपर दिये अन्त के तीसरे पद्य से सिद्ध होता है कि इस लोक विभाग में अनुष्टुप् छन्द के हिसाब से १५२६ पद्य हैं। साथ ही साथ निम्नलिखित पद्य तथा उक्त प्रथम पद्य के अन्तिम पाद से यह भी ज्ञात होता है कि इसके मूल प्राकृत के रचयिता मुनि सर्वनदी हैं। सिंहनदी केवल इसका सस्कृत भाषान्तरकार हैं —

“भव्येभ्यः सुरमानुषोक्तसर्वसि श्रीवर्द्धमानार्हता
यत्प्रोक्त जगतो विधानमखिलं ज्ञात सुधर्मादिभिः ।
आचार्यवलिकागत विरचितं तत्सिंहसूरपरिणा
भाषायाः परिपतनेन निपुणैः सम्मानित साधुभिः ॥

इस ग्रन्थ में जो शक ३८० [वि० स० ५१२] रचनाकाल दिया गया है, वह मूल प्राकृत लोकविभाग का है न कि इस सिंहनदीकृत सस्कृत लोकविभाग का। समझ है कि इसका रचनाकाल या तो लिखा ही नहीं गया है या लेखकों के प्रमाद से छूट गया है। इस सस्कृत लोकविभाग में त्रिलोक-प्रशस्ति और 'आदिपुराण आदि के अतिरिक्त 'त्रिलोकसार' ग्रन्थ के भी उद्धरण मिलते हैं। इसलिये निर्विवाद सिद्ध होता है कि यह लोकविभाग विक्रमीय म्यारहवीं शताब्दी के बाद का है। हाँ, इसका निश्चित समय अभी विचारणीय है।

उल्लिखित पंक्तियों का आशय यह हुआ कि उपलब्ध यह सस्कृत 'लोकविभाग' अधिक प्राचीन नहीं है। प्राचीनता से उसका इतना ही सम्बन्ध है कि वह शक सवत् ३८० [वि० स० ५१२] के एक बहुत पुराने प्राकृत लोकविभाग का सस्कृत रूपान्तर है। परन्तु इस बात का निश्चय होना अभी बाकी है कि यह त्रिलोकसार से कितने समय पीछे बना। अगर इसके कर्त्ता श्रीसिंह सूरि जी के अन्य किसी ग्रन्थ का पता लगता तो उससे शायद इसका निश्चय हो जाता। मेरे जानते सिंहसूरि-नामक ग्रन्थकर्त्ता दो-तीन हुए हैं। यह सिंहसूरि उनमें से अन्यतम है या मित्र है इसका भी निर्णय होना अवशिष्ट है।

प्रमनृत लोकविभाग के कर्त्ता सिंहसूरि जी ने अपनी इस कृति में अपनी गुरुपरम्परा का कुछ भी परिचय नहीं दिया है।

इसमें मन्द्हे नहीं है कि यह लोकविभाग जैनभूगोल के उल्लेखनीय ग्रन्थों में से एक है। चार्ल्स सस्कृत साहित्य की दृष्टि में भी इसका महत्त्व कुछ कम नहीं है। क्योंकि यह ग्रन्थ धरती मरलना पद्य शब्द-सुन्दरता में रचयिता के सस्कृत-पाण्डित्य को अभिव्यक्त करने में बाध नहीं आता। किसी जैनप्रकाशन-संस्था को इसे प्रकाशित कर जैनभूगोल-मंथनी उल्लेखनों को सुलझाने में सहायक बनना चाहिये।

(३७) ग्रन्थ नं० $\frac{२५२}{६}$

श्रीपुराण

कर्त्ता—सकलकीर्त्ति

विषय—पुराण

भाषा—सस्कृत

लम्बाई १३ इंच

चौड़ाई ६ इंच

पत्र संख्या ३८

प्राग्भिक भाग—

धीमते मरुलजानसाध्राज्यपदमीयुषे ।
 धर्मचक्रभृते भर्त्रे नमः ससारभीमुषे ॥१॥
 पुराण मुनिमानस्य जिन वृषभमच्युतम् ।
 महतस्तत्पुराणस्य पीठिका व्याकरिष्यते ॥२॥
 अनादिनिधन कालो वर्तनालक्षणो मतः ।
 लोकमात्रः स सृष्ट्माणुपरिच्छिन्नप्रमाणकः ॥३॥
 वर्तितो द्रव्यकालेन वर्तनालक्षणो यः ।
 कालः पृथ्वीपरिभूतो व्यवहाराय कल्पते ॥४॥
 उन्मपिराथाऽन्मपिराथा ह्यो भेदो तस्य कर्त्तितो ।
 उन्मपांशुऽन्मपांशुः यन्मयुर्द्वैतमगाम् ॥५॥
 कोटीकोटयोऽङ्गरुम्य प्रमा स्नागरुम्यया ।
 जेयम्याप्येयमेयेष तापुभो कल्प इत्यने ॥६॥

×

×

×

मध्य भाग (परपृष्ठ १६, पक्ति ११)

अथ कालागरूढामधूपधूमाधियासिते ।
 मणिप्रदीपिकोद्योतदूरीकृततमस्तरे ॥
 वासगण्डेऽन्यदा शिश्ये तल्पे मृदुनि हारिणि ।
 प्रियास्तनतटस्पर्शसुखमीलितलोचन ॥
 सन्न घातापनद्धारपिधानारूढधूमके ।
 केशसस्कारधूपोद्यन्नूमेन क्षणमूर्च्छितौ ॥
 विरुद्धोच्छ्वाससदौस्थित्यादन्त किञ्चिद्विवाकुलौ ।
 दम्पती तौ निशामध्ये दीर्घनिद्रामुपेतु ॥
 जम्बूद्वीपे महामैरोरुत्तरां दिशमाश्रिता ।
 सन्त्युदक्कुण्डो नाम स्वर्गश्रीपरिहासिन ॥
 नवमास स्थिता गर्भे एतन्नगर्मगृहोपमे ।
 यन्न दम्पतितामैत्य जायन्ते दानिनो नरा ॥

x x x

अन्तिम भाग—

मनःपययज्ञानमप्यस्य सद्यः समुत्पन्नवत्केवलं चानु तस्मात् ।
 तद्वैवामवद्भव्यता तादृशी सा विचित्रागिनां निवृत्ते प्राप्तिरत्र ॥
 परिचितयतिहसो घमवृष्टिं निर्विन्दन्
 नमसि फलनिवेशो निभलस्तुङ्गवृष्टि ।
 फलमधिकलमद्रयं भव्यशस्येषु कुयन्
 अहरद्विखिलदेशांश्रुद्धारदेवास्तमेव ॥
 विद्वत्य सुचिरं धिनेयजनतोपकृतस्वायुषो
 मुहूर्त्तपरिमास्थितौ विहितसत्क्रियौ विध्युतौ ॥
 तनुनितपथध्वनस्य शुणसागरसूक्तिं स्फुर-
 जगत्त्रयशिखामणिं सुखनिधिं स्वधाम्नि स्थित ॥
 सर्वेऽपि ते वृषभसेनमुनीशमुख्या
 सख्यं गता सकलजन्तुषु शान्तचिन्ता ।
 कालक्रमेण यमशीलगुणामिपूर्वा
 निर्वाणमापुमित शुण्ठिनो गणीन्द्रा ॥

यो नामेस्तनयोऽपि विभ्यविदुषां प्रज्य स्वयम्भूगिति
त्यक्त्याणोपपरिग्रहोऽपि सकल स्यामोति य ग्रन्थे ।
मध्यस्थोऽपि विनेयमत्वममिनोरेवोपकारी मतो-
निर्दानोऽपि बुधरुपास्यचरणो य. सोऽस्तु व' शान्तये ॥

इस 'श्रीपुराण' के मंगलाचरण अथवा अन्तिम भाग आदि में कहीं भी ग्रन्थकर्ता ने अपनी कुछ भी चर्चा नहीं की है। फिर भी यह ग्रन्थ वि० न० १४५६ अर्थात् १४वीं शताब्दी वाले सकलकीर्ति का माना जाता है। भट्टारक सकलकीर्ति जनमाहित्यक्षेत्र में घटे ही सकल लेखक माने गये हैं। चल्कि इनके प्रश्नोत्तरश्रावकाचारवि कुद्ध ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। 'ज्ञानार्णव' की प्रशस्ति में एक जगह इनके सम्बन्ध में यों लिखा मिलता है—
"भट्टारकरूपदारुढ सकलाद्यन्तकीर्तिभाक् । येन शारदाशुधि मभ्यक् वर्धितो निजलीलया ॥"
इसमें स्पष्ट सिद्ध होता है कि आप भट्टारकरूपदारुढ होते ही वृत्ति आसानी से जैन साहित्य-भाण्डार को भरने लगे। 'प्रश्नोत्तरमाला' में श्रीमसकलभूषण ने इनके "पुराणामुगयोत्तम-शास्त्रकारी" इस विशेषण के द्वारा भास्व स्मरण किया है। प्रभेचारी जिनदास जी ने अपने 'पद्मपुराण' तथा 'हरिवंशपुराण' में आपको "महाकवित्प्रादिकलाप्रदाता" कहा है। 'पाण्डव-पुराण' में भट्टारक शुभचन्द्र जी इनकी प्रशम्ना में या लिखा रहे है कि "कीर्ति. एता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्ता सकला पथिवा।" इसी प्रकार आर भी वृष्टत में ग्रन्थप्रगोताओं ने सकलकीर्ति को महान् ग्रन्थकार होने को लिखा है। इन की लेखनी वहुमुखी रही, अतः एक प्राय. प्रत्येक विषय पर इनकी रचना उपलब्ध होती है। इस नाम के एक दूसरे भी भट्टारक हुए हैं, जो कि सुगुणकीर्ति भट्टारक के पट्ट पर आसीन हुए थे। इनका समय उन्नीसवीं शताब्दी है। इनका उल्लेख "जैनहितोषी" भाग ११, अड्ड १२ में मिलता है। पर इस द्वितीय सकलकीर्ति जी के पाण्डित्य-द्योतक कोई प्रमाण दृष्टिगोचर नहीं होता है; इसीलिये इनकी इतनी प्रसिद्धि नहीं है।

प्रथम सकलकीर्ति जी पद्मनन्दी के पट्ट पर आरूढ हुए थे। इनके बाध क्रमशः इस पट्ट पर श्रीभुवनकीर्ति और श्रीज्ञानभूषण पट्टाधिकारी बने। कामराजकृत 'जयपुराण' की प्रशस्ति में इस सकलकीर्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित धान्य दिये गये हैं:—

"आचार्य कुन्दकुन्दारख्यस्तस्मादनुक्रमाद्भूत् ।
स सकलकीर्तियोगीशो ज्ञानी भट्टारकेश्वर ॥
येनोद्भूतो गतो धर्मो गुर्जर वाग्बरादिके ।
निर्गन्धेन कवित्वादिगुणानेवाहता पुरा ॥
तस्माद्भुवनकीर्त्तं श्रीज्ञानभूषणायो गिरात् ।
विजयकीर्त्तयोऽभूवन् भट्टारकपदेशिनः ॥"

एत पद्यों से हात होता है कि सकलकीर्ति जी ने गुजरात और बागड भादि देशों में जैवधर्म का अच्छा प्रचार किया था।

प्रस्तुत प्रथम प्रा मगलाचरण श्रीमद्भगवत्सिखलेनाचार्य हस्त महापुराण्य का अर्थों का ल्यों है। इससे अनुमान होता है कि श्रीपुराण्य का आदेश महापुराण ही है। इस मगलाचरण के प्रकृत रहस्य का पता लगाने के लिये श्रीपुराण्य का साधन्त सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसमें प्रथम तीर्थद्वार श्रीमादिनाथ का धरित चिह्नित है इसीलिये लोग इसे आदिपुराण्य भी कहते हैं। श्रीपुराण्य की रचनाशीली सरल, सुन्दर पत्र भावपूर्ण है।

(३८) ग्रन्थ न०-३५९

दशभक्त्यादि महाशास्त्र

कहाँ—मुनीन्द्र बख्त मान

विषय—भक्ति भादि

भाषा—संस्कृत

ल भाई ८। इन्च

चौडाई ६।। इन्च

पल्लसख्या १३२

प्रारम्भिक भाग—

नमः श्रीब्रह्म मानाय चिद्रूपाय स्वयम्भुवे ।
सहजात्मप्रकाशाय सतससारयेदिने ॥१॥
एतद्वेपसमुद्विच्छसमता भूतेषु सत्पाप्य
सर्वेषु प्रसदाजनेषु धिरति कापययद्धानि पदा ।
सहकिर्जिनसिद्धशास्त्रभुनिषु प्रख्यातयोगाहति
स्तत्सामायिकसमुत्ते यतिजने सजायते साधना ॥२॥
नामादि पद्विभ्र प्रोक्तं एतद्वेपादिकारणम् ।
तद्वर्जनं कदा मे स्यात् सामायिकमनुत्तरम् ॥३॥
सम्यक्तवद्धानस्युकसंयमान्धतपोयुत ।
परिग्रामं कदा मे स्यात् सर्वसाधनदूषणम् ॥४॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ८७ पंक्ति ६) —

यत्रं सदद्भशधर्मलक्षणयुतं ख्यातं जगन्मङ्गलम्
 विद्वल्लोकसमर्चितं सुशरणं ससारविष्वसकम् ।
 जीवन्मुक्तिसुखप्रदं निरुपमं ज्ञान्त्यादिशब्दोज्ज्वलम्
 भक्त्याह्वय ह्यपीठिकोपरि तले सस्थाप्य चाराधये ॥ १ ॥
 जलगन्धसदककुसुमैश्चरुप्रदीपैः सुधूपफलजिकरैः ।
 संपूजयामि यत्रं ज्ञान्त्यादिपदांकितं भक्त्या ॥ २ ॥
 गगाद्यद्भवनीयेण कजोत्पलसुगन्धिना ।
 ज्ञान्त्यादिपदसंयुक्तं यत्रं प्रज्ञालयाम्यहम् ॥ ३ ॥
 नारिकेलोदकैः स्वच्छैः सर्वहृत्तापहारिभिः ।
 ज्ञान्त्यादिपदसशोभि यत्र सस्नापये मुदा ॥ ४ ॥
 कवलीकृतपीथुषैर्धवल्लुरसैः शुभैः ।
 ज्ञान्त्यादिपदसंशोभि यत्रं सस्नापये मुदा ॥ ५ ॥
 सन्ततकनकद्रावसकाशैः पुष्कलैर्घृतैः ।
 ज्ञान्त्यादिपदसशोभि यत्रं सस्नापये मुदा ॥ ६ ॥
 पयोभिः पूर्यिमाचन्द्रचन्द्रिकाविशदैरलम्
 ज्ञान्त्यादिपदसशोभि यत्र सस्नापये मुदा ॥ ७ ॥
 सतानिकांचितैः स्निग्धैर्दधिभिः सारगन्धिभिः
 ज्ञान्त्यादिपदसशोभि यत्र सस्नापये मुदा ॥ ८ ॥
 कुम्भैश्चातुष्टयैः शुद्धैः क्षम्मालारंजिताननैः ।
 स्नापये यन्नममलं ज्ञान्त्यादिपदभूषितम् ॥ ९ ॥
 वासनाप्रकृतिगन्धबन्धुरैर्वारिभिर्मलगाणोपनोविभिः ।
 ज्ञान्तिमुख्यपदराजिरजित स्नापये प्रविपुलं गुरुयंक्षम् ॥ १० ॥
 मध्येकणिकमग्न्युजस्य गुरवः पचापि पत्त्यकिते
 यस्य श्रीद्वदले ज्ञान्मादिपदयुक्धर्मा सुशर्मप्रदाः
 तिष्ठन्ते मुनिराजवृन्दमहितं चूर्णैश्चित पञ्चभिः
 तद्यत्रं परिपूर्णलक्षणयुतं भक्त्या समाराधये ॥ ११ ॥

अभित्तम भाग :—

बलात्कारगयाम्भोजमास्करस्य महाद्युते ।
 श्रीमद्देवेन्द्रकीर्त्याख्यमद्भारकशिरोमयो ॥ १ ॥
 शिष्येण धातशास्त्रार्थस्वरूपेण सुधीमता ।
 जिनेन्द्रवरण्डै तस्मरयाधीनचेतसा ॥ २ ॥
 वधमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दावधन्धुना ।
 कथित दशमस्त्यादिशासनं भव्यसौख्यदम् ॥ ३ ॥
 शाके वेद्वराभिधचन्द्रकलिते सवत्सरे श्रीच्छवे
 सिंहप्राथमिके प्रभाकरशिवे कृष्णाग्रमीशासरे ।
 ऐद्विद्ययां दशमकिपूवकमहाशास्त्रं पदार्थोऽज्वलम्
 विद्यानन्धुनिस्तुतं न्यरथयत् सद्गुरुमानो मुनि ॥ ४ ॥
 विद्वत्कवीन्द्रमुनिभूपतिसञ्जनानां यावत्समस्ति एतन्ना पुण्योत्तमानाम् ।
 श्रीवर्द्धमानमुनिराजहृति कृतार्थां तिष्ठत्वरं जगति तावद्वनमशक्ति ॥ ५ ॥
 शलाकापुष्पाब्जन्दे सवकममहीमवान् ।
 विद्यानन्धुपदाधीशान् कृष्णादेवेन्द्रबन्धितान् ॥ ६ ॥
 जैना श्रीवसुधेश्वरा जयविदोऽमात्या सदा सञ्जना
 विद्वांसं कवयो जयन्तु गमका सद्भाविनं प्राधिका ।
 विप्रा श्रीमुनिवद्वमा धृतगुणाधारा मनोजेव
 कान्ता पुनसमन्विता जिबगृहा विम्बारत्र निर्मापिता ॥ ७ ॥
 वर्धमानगुणाधारं शम्भार्थालङ्कतिस्कृतम् ।
 महाशास्त्रमिदं पूतं पठतां मङ्गलं तदा ॥ ८ ॥
 व्याख्यातनां लेखकानां श्रोतॄणां वृत्तधारिणाम् ।
 द्यावमविशिष्टानां गुणपद्मानुपागिणाम्
 मुनिवृन्दारकाणां च प्रदेयान्मुक्तिसम्पदम् ॥ ९ ॥
 वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दावधन्धुना ।
 लिखित दशमस्त्यादिदर्शनं जनतायकृत् ॥ १० ॥

इस ग्रन्थ का नाम 'दशमस्त्यादिमहाशास्त्र' है । इसके लूक में सामायिकपूवक सिद्ध
 मक्ति, भूतमक्ति, धारित्र पद्य योगमक्ति आदि प्रसिद्ध दशमकियां अङ्कित हैं । ये मक्तियां
 मुनीन्द्र वर्द्धमान जी की अपनी रचना है । साहित्य की दृष्टि से भी रचना बुरी नहीं है ।
 बल्कि कहीं-कहीं के पद्य बड़े ही श्रुति-मधुर हैं । हाँ, प्रति अशुद्ध होने से जहाँ-तहाँ कति

में शैथिल्य का भ्रम होना स्वाभाविक है। कुछ भी हो ग्रन्थकर्ता संस्कृतभाषा के मर्मज्ञ थे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। सर्व-प्रथम स्थालीपुलाकन्याय से ग्रन्थगत विषयों पर एक बार सरसरी नजर डालना मैं आवश्यक समझता हूँ।

प्रस्तुत कृति में भक्तियों के अतिरिक्त स्तोत्र, पूजन, गुर्वावली आदि भक्त्यतिरिक्त विषय भी गर्भित हैं, इसीलिये ज्ञात होता है कि ग्रन्थकर्ता ने इसका नाम 'दशभक्त्यादिमहाशास्त्र' रक्खा है। क्योंकि 'आदि' शब्द में बहुत बातों का समावेश हो जाता है। 'आचार्य-भक्ति' में प्रत्येक तीर्थङ्कर के गणधरों की सख्यादि भी कवि वर्द्धमान जी ने दे डाली है। साथ ही साथ इस 'आचार्यभक्ति' के अन्त में प्रतिपादित "वर्द्धमानमुनिन्द्रेण विधानन्दार्यवन्धुना। आचार्यभक्तिः कथिता जिनसेनार्यसम्मता ॥" इस पद्य से यह 'आचार्य-भक्ति' जिनसेनाचार्यसम्मत ज्ञात होती है। इसे जिनसेनकृत कृतियों से मिलान करने से यह घात स्पष्ट हो सकती है। 'निर्वाण-भक्ति' के अन्त में श्रीरामचन्द्रजीका सम्मेशिखर से मुक्त होना वर्णित है। यह मत प्रचलित 'निर्वाण-काण्ड' के प्रतिकूल है। 'उत्तरपुराण' आदि ही इस मत का आधार मालूम होता है। 'चैत्यभक्ति' के प्रकरण में ग्रन्थ-रचयिता ने अकृत्रिम जिनालयों के सिवाय कृत्रिम जिनालयों में भल्लातकी-पुर—गेरुसोप्पेस्थित श्रीपार्श्वनाथ, सगीतपुर—हाडुहल्लिस्थित श्रीचन्द्रप्रभ, भट्कलस्थ श्रीपार्श्वनाथ, वसुपुरस्थ श्रीआदिनाथ, वरांगस्थित श्रीनेमिनाथ, कार्कलस्थित श्रीगोम्म-देश्वर, वेणुपुर—मूडविट्टीस्थित श्रीचन्द्रनाथ, श्रवणवेलोलस्थ श्रीगोम्मदेश्वर, कनकाचलस्थ श्रीपार्श्वनाथ,* होयसलवशराजार्चिवत (विजय) पार्श्वनाथ और वर्द्धमान,† कोपणक्षेत्रस्थ (सागरदत्तपूजित-) श्रीचन्द्रप्रभ और (लक्ष्मेश्वरपूष्पतिदत्तिणावर्त्तशखोत्य-क्षेमदेवार्यसस्तुत-) श्रीचन्द्रप्रभ आदि जिनमन्दिरों की स्तुति की है। एक जमाने में उल्लिखित गेरुसोप्पे, हाडुहल्लि, भट्कळ, कनकाचल या कनकगिरि और कोपण आदि स्थान अपने सर्वोच्च उन्नति के शिखर पर आरोह हो जैनधर्म के केन्द्र पव लीलाभूमि बने हुए थे। बल्कि उन दिनों गेरुसोप्पे, भट्कळ आदि कई स्थानों को जैनराजधानी के रूप में ही रहने का सौभाग्य प्राप्त था। इन क्षेत्रों में आज भी यत्न-तत्न लुप्त-प्राय प्राचीन जैनकीर्तियों के स्मृति-चिह्न बिखरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। वह जैनप्रतापादित्य का मध्याह्नकाल था। खैर, आज भी उक्त क्षेत्रों पर वर्द्धमान जी के द्वारा निर्दिष्ट उक्त जिनचैत्यालय प्राय उन्हीं नामों से जीर्ण-शीर्ण दशा में वर्तमान हैं। गेरुसोप्पे, भट्कळ, हाडुहल्लि इन स्थानों के विगेष परिचय के लिये उत्तर कन्नड जिला के गजेट्टियरों का अवलोकन करना चाहिये। कोपणक्षेत्रस्थ चन्द्रप्रभ या चन्द्रनाथ-जिनालय आज भी उसी नाम से विश्रुत है। बल्कि इसका उल्लेख Epigraphia Indica,

* इन्हें 'नागार्जुनप्रतिष्ठापित' पव 'धर्मचन्द्रमुनिवन्दित' बतलाया है। यह नागार्जुन क्षीपूज्यपाद जी के भोजे हैं।
† ये समन्त हलेवीडु या द्वारसमुद्र के मन्दिर हैं।

Part V January 1931, P 94 में प्रकाशित केल्लविय सवाशिवनायक के एक ताम्र शासन में भी मिलता है। उसका सारांश यों है—इस (धर्म) के प्रतिकूल चलनेवाला जैनी बेलोलस्थ गुम्फनाथ, कोपणस्थ चन्द्रनाथ ऊर्जयन्तगिरिस्थ नेमिनाथ भादि जिनप्रतिमाओं को फोड़ने के पाप भागी हंगे।

अस्तु अब पाठकों का ध्यान प्रस्तुत विषय पर आकृष्ट करता हूँ। कवि वरद मान जी के द्वारा प्रस्तुत कृति के क्रमशः पृष्ठ ३५ एवं ५७ पर दिये गये निम्न लिखित कुछ पद्य भवस्य भवलोकनीय तथा विचारणीय हैं—

“मातयश्चशास्त्रमत्यदुभुतपरमतमिच्छासमीमांसित तद्
भाष्य मद्वाकलङ्कप्रकटितविभवं रामसेनीयमुद्रुषम् ।
सुख तस्वायसञ्च स्फुरति जिनकथाचारशास्त्रं बिलोक
प्रक्षमिमे हृदीद्वे तदिह बहिरहो यत्किमप्यस्तु किं मे ॥”

X X X

“अनन्त जिननिर्वाणो भुनिसुव्रतज्ञमनि ॥
उपदेशश्च नास्माक जिनसेनार्यशासने ।
अमाथास्यामरालौ धामन्तजिज्जिननिवृत्ति ॥
सजाताप्यनगारकेवलिविभो श्रीरामचन्द्रस्य वै
भीदफाल्गुनशुक्लपक्षविलसच्चातुर्दशीवास्तरे ।
पूर्वाह्णे कुलशैलमस्तकमणौ सम्भोगिर्व्यग्रकौ
शास्ता निवृत्तिरज्जलक्ष्मणमते सीतावनीधीपते ॥

भाग ५२ के पूर पृष्ठ से क्रमशः किसी किसी की कुछ कृतियों का उल्लेख करते हुए वरद मान जी ने भद्रबाहु, कुन्दकुन्द, समन्तभद्र भकलङ्क, विद्यानन्दी माणिक्यनन्दी प्रभाचन्द्र* पूज्यपाद (जिनदत्तरायप्रणत) सिद्धांतकीर्ति वरद मान† धामुपूज्यवली, (विष्णुवद नपूजित) श्रीपाल पाक्षकेशरी नेमिचन्द्र (धामुगडरायपादाच्चितपादपद्मसैदान्तिकसार्वभौम) माधवचन्द्र (किशवार्यस्तुत्य) अमयचन्द्र जयकीर्ति, जिनचन्द्र, इन्द्रनन्दी वसन्त कीर्ति, विशालकीर्ति शुभकीर्ति, पद्मनदी माधवन्दी कटासिंहनन्दी पद्मप्रभ वसुनारी, मेघचन्द्र धीरजदी, धनज्ञय धादिराज, धमभूपण (विद्यानदस्वामिसूनु) सिंहकीर्ति

*इन्हें अमोघवृत्तिन्यास के रचयिता लिखा है, परन्तु संभवतः न्यास के प्रणेता प्रभाचन्द्र इनसे भिन्न हैं। देखें—‘विगम्बर जैनग्रन्थसर्ता और उनके ग्रन्थ’।

†इन्हें होयसळ राज्यसंस्थापक एवं उस राजवंश को व्रत और विद्या प्रदान करने वाला लिखा है।

मेरुनन्दी, वर्द्धमान, प्रभाचन्द्र, अमरकीर्ति एवं विशालकीर्ति इन ग्रन्थकर्त्ताओं का स्मरण किया है। इसी प्रकरण में आगे भट्टारक सिंहकीर्ति, विशालकीर्ति, विद्यानन्द, देवेन्द्रकीर्ति तथा अपनी बड़ी प्रशंसा की है। उन प्रशंसात्मक पद्यों में से कुछ पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं जिनसे कुछ ऐतिहासिक परिचय प्राप्त हो :—

“राजाधिराजपरमेश्वरदेवरायभूपालमौलिलसदंघ्रिसरोजगुग्म ।
 श्रीवर्द्धमानमुनिवल्लभमौढ्यमुख्य श्रीधर्मभूषणसुरखी जयति क्षमाढ्य ॥
 विद्यानन्दस्वामिन सूनुवर्य सजातः स सिंहकीर्तिवतीन्द्र ।
 ख्यात श्रीमान् पूर्णाचारित्रगात्रो दानस्वभूधेनुमन्दारदेश्य ॥
 वाभात्यश्वपतेर्दिनेशतनयो गगाढ्यदेशावृत
 श्रीमड्डिल्लिपुरेड्महम्मदसुरित्नाणस्य माराकृते ।
 निर्जित्याशु सभावनौ जितगुरुवौद्धादि + + + व्रजम् ।
 श्रीभट्टारकसिंहकीर्तिमुनिराट् नाट्यैकविद्यागुरु ॥
 विशालकीर्तिवादीन्द्र परमागमकोविद् ।
 भट्टारको बलात्कारगणाधीशो महातपा ॥
 सिकन्दरसुरित्नाणप्राप्तसत्कारवैभव ।
 महावादिजयोद्भूतयशोभूषितविष्टप ॥
 श्रीविरूपाक्षरायस्य श्रीविद्यानगरेशिन ।
 सभायां वादिसन्दोह निर्जित्य जयपत्रकम् ॥
 स्वीकृत्य च महाप्रज्ञावलेन बुधभूभुजै ।
 मत सरस्वतीमूलशासन वा सदोऽज्वलम् ॥
 देवप्पदराडनाथस्य नगरे श्रीमदारगे ।
 प्रकाशितमहाजैनधर्मोऽभाद्रभूसुरार्चिवत् ॥
 विशालकीर्ते श्रीविद्यानन्दस्वामीतिशब्दत् ।
 अभवस्तनय साधुर्मल्लिरायनृपार्चिवत् ॥
 आगमत्रयसर्वज्ञ कवित्वगुणभूषित ।
 नानोपन्यासकुशलो वादिमैधमहामवत् ॥
 स्वामिविद्यादिनन्दस्य भारतीभाललोचनम् ।
 सुरुदेवेन्द्रकीर्त्यायी जातो भट्टारकाप्रणी ॥”

“कावेरीसारिदम्बुवेष्टनलसच्छीरंगसत्पत्तने

लक्ष्मीवल्लभरगनाथमहिते श्रीवीरपृथ्वीपते ।

भास्थाने विबुधमज्ज विजयवासुदेर्विजित्यावनौ

विद्यानन्दमुनीश्वरो विजयते साहित्यचूडामणि ॥

सार्थ्यं सख्यास्रगन्ध कपिलकुलमल हीनकापालिकालिम्

योगं चोद्वेगधेग कलयति बलिषैशैलिक शोषिताङ्गम् ।

धार्वाक खर्वगर्वं नृपसदसि सदा बुद्धमन्यषुद्धम्

माह स्रष्ट धितेने बुधवर भवतो धाम्बधृष्टी मुनीन्द्र ॥”

(पर पृष्ठ ६६)

‘वीरश्रीवरदैवपायनृपते’ सद्भागिनेयेन वै

पद्माबाकलगमधारिबिद्युना राजेन्द्रवन्द्यामिणा ।

श्रीमत्सालुवकुष्णादेवघरणीकान्तेन भक्त्याचितो

विद्यानन्दमुनीश्वरो विजयते स्याद्वावविद्यापति ॥

× × × ×

यो विद्यानगरीधुरीणविजयश्रीकृष्णरायप्रभो

रास्थाने विदुषां गय समजयत्पञ्चाननो वा गजम् ।

सद्भागिर्नखरैकेशचविमलज्ञानाय तस्मै नमो-

विद्यानन्दसुधोश्वरोय जगति प्रख्यातसत्कीर्तये ॥

× × ×

विद्यानन्दस्वामिनोऽभूत् सधर्मा विख्यातोऽयं नेमिचन्द्रो मुनीन्द्र ।

भूवप्राताम्भोजवैकासकारो शास्त्राम्भोरशिसवृद्धिकारी ॥

पौंड्रुधुपार्श्वनाथस्य वसतीं श्रीत्रिमूमिकाम् ।

ह्रस्वा प्रतिष्ठां महतीं सन्तनोतिस्म भक्ति ॥

विद्यानन्दस्वामिन पुण्यमूर्तेर्जीयात्सुतु श्रीविशालाविकीर्ति ।

विद्वद्वन्द्यं स्वशास्त्रागतारो माधवादीमेन्द्रसघातसिद्ध ॥

(पूर्व-पर पृष्ठ ६८)

“जीयात्प्रकीर्त्याख्यमद्भारकशिरोमणि ।

विशालकीर्तिभोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोषिव ॥

अमरकीर्तिमुनिर्विमलशयं कुसुमचापमहाचल्लभभूत् ।

जिनमताष्टतारितमात्र यो जयति निर्मलधर्मगुणाधय ॥

विद्यानन्दार्थतनयो भाति शास्त्रधुरन्धरः ।
 वादिराजशिरोरत्नं विद्यानन्दमुनीश्वरः ॥
 विशालकीर्त्तिमुनिराट्पट्टोदयमहीभृत ।
 देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो बालार्क इव भासते ॥
 श्रीभैरवेन्द्रवंशाब्धिपाण्ड्यराजसमर्चित्वत ।
 देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो विद्यानन्दमहोदयः ॥
 देवेन्द्रकीर्त्तिः सिद्धार्थस्तद्वाणी प्रियकारिणी ।
 धीर्मास्तदुदितो वर्णी वर्द्धमानो न किं भवेत् ॥
 वर्द्धमानो बुधाराध्यो नवमश्रावकाप्रणीः ।
 शुद्धद्वन्द्वबोधचारित्रो जिनेनो जयतात् भुवि ॥
 कर्णोत्तंसितपारिजातकलिकासौरभ्यसौखासिकी
 भारत्या शरदिन्दुनि सृतसुधासारासनाधार्सिनी ।
 नृत्यद्धूर्जट्टिजाटकोदितटिनी कल्लोलसंलापिनी
 जेजीयाद्भुवि वर्द्धमानसुखिनः शास्त्रार्थवाग्बैखरी ॥
 निर्भ्रमात्मनिबन्धनोपकरणो निर्वाणवाङ्मन्वितो-
 घाह्यार्थविगमाभिलापरहितो दूरीकृतोत्कल्पन ।
 स्वच्छन्दस्ववशोपसाधितमना भद्रांगलक्ष्मणपरम्
 क्षित्या मत्तमहाकरीव जयति श्रीवर्द्धमानो मुनि ॥
 ख्यात श्रीवर्द्धमानोऽभाद्वीतससारविभ्रम ।
 क्षातानुयोगशास्त्रार्थो जातरूपादिनिस्पृह ॥
 भाति श्रीवर्द्धमानोऽसौ चूतशायकसुदनः ।
 नूतसद्गुणसन्तानस्पृतचिद्भावनामति ॥
 देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रचरणाम्बुहृद्वयम् ।
 मन्मानसे सदा स्थेयात् विबुधध्रमराश्रयम् ॥
 देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजपदास्तुरेणुर्दीर्घिभूतनिबहस्य सदा बुधानाम् ।
 उच्चाटनप्रवणचूर्णवशां समप्रां लक्ष्मीवशीकरणचूर्णवशां च याति ॥
 × × × ×
 “देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजतनूभवेन श्रीवर्द्धमानमुनिना विदितानि भान्ति ।
 पद्यानि सद्गुणयुतानि महोज्ज्वलानि विद्वत्कवीन्द्रगलकर्णविभूषणानि ॥
 वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्थवन्धुना ।
 देवेन्द्रकीर्त्तिमहिता निर्मिता गुरुसन्ततिः ॥”

(पर पृष्ठ ६९ से ७१ पर पृष्ठ)

इसके आगे पर पृष्ठ ७१ पंक्ति ३ से फिर कन्नडभाषा में विद्यानन्द का स्तुति-रूप में स्मरण किया गया है। विद्यानन्द जी का यह स्तुतिरूप स्मरण बद्ध मान जी के द्वारा लिखे गये नगरतालुक के ४६वें शिलालेखान्तर्गत स्तुति का ही प्रतिकरूप है। बल्कि इस शिलालेख के अन्यान्य पद्य भी यत्र-तत्र इस ग्रन्थ में उद्धृत किये गये हैं। उक्त स्तुतिरूप स्मरण में विद्यानन्द ने नजराय शहर के नजिदेवराज सातवेन्द्रराज केशरि विक्रम, साल्लुवमल्लिराय, गुळुपाल साल्लुवदेवराय नगरिराज्य के राजा, विक्लिने के नरसिंहराज, कारकळ के भैरवराज नरसिंहकुमार कृष्णराज इन की सभाओं में और इसी प्रकार श्रीरंगपट्टण, विदिने, कोपण, बेळगोळ और गेळसोपे में धाविजनों का पराजय किया था, इसी का उल्लेख है। स्वर्गीय भार० नरसिंहाचार्य का अनुमान है कि विद्यानन्द जी मल्लतकीपुर अर्थात् गेळसोपे के रहनेवाले थे और इन्होंने कन्नड भाषा में काव्यसार के अतिरिक्त एक और ग्रन्थ रचा था जिसका समर्थन नगरतालुक के उक्त शिलालेखान्तर्गत "अर्थव्येष्टितवसुधा। कर्णो पमगुळुपालनास्थानदोळे। कर्णाद्वृत्तकृतिय। धर्मिसि जसवडेदे धाविविद्यानन्दा ॥" इस पद्य से होता है। इस शिलालेख से यह भी भ्रमगत होता है कि देवराय के भागिनेय पद्य पद्याम्बापुत्र साल्लुव कृष्णदेवराय के द्वारा आप सम्मानित हुए थे। बल्कि पतद्विपयक पद्य ऊपर उद्धृत किया जा चुका भी है। साथ ही साथ इस शिलालेख में इनकी वध-परम्परा धों दी गयी है। विद्यानन्द इनका पुत्र विशालकीर्ति विशालकीर्ति का पुत्र देवेन्द्र कीर्ति और इनके पुत्र बद्धमान। यही बद्ध मान प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता है।

एक बात यह है कि भार० नरसिंहाचार्य जी ने विद्यानन्द का समय विजयनगर के शासक नरसिंह के पुत्र धर्सी नगरतालुक के शिलालेख में अंकित कृष्णदेवराय के काल के आधार पर ई० सन् १५३३ अनुमान किया है। परन्तु इसी प्रस्तुत ग्रन्थगत स्तुति में प्रतिपादित 'शाके षड्विंशत्तमवन्त्रकलिते संवत्सरे शवरे। शुभद्रावणभाक्कृतान्त धरणीतुम्भैमेये एवौ ॥ कर्किस्ये सगुरौ जिनस्मरणयो बादीन्द्रवन्दार्चित। विद्यानन्द-मुनीश्वरः स गतवान् स्वर्गं विद्यानन्द ॥" इस पद्य से शास्त्रिवाहन शक १४६३ ई० सन् १५४१ में विद्यानन्द का स्वर्गस्थ होना स्पष्ट सिद्ध होता है। अस्तु, इनके विषय में आगे कुछ विशेष प्रकाश डालना श्रेयसे है।

आगे पर पृष्ठ ८० से पर पृष्ठ ८४ तक अश्विषय के नाचार्यों की नामावली यों दी गयी है :—

धरसेन, समन्तमद्र, आर्यसेन अजितसेन, धीरसेन, जिनसेन, धादिराज, गुणमद्र ॥

॥—इन्हें 'धरारथमुनिपति वनय' लिखा है।

लोकसेन, आशाधर,^१ कमलभद्र^२, नरेन्द्रसेन, धर्मसेन, रविपेण, कनकसेन, व्यापाल, रामसेन^३, माधवसेन, लक्ष्मीसेन^४, जयसेन, नागसेन, मतिसागर^५, रामसेन, सोमसेन। मुनीन्द्र वर्द्धमान जी ने अपने को भी इस नन्दिसद्य को परम्परा में बतलाया है। उल्लिखित गुर्वावली का अन्तिम पद्य यह है—“वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यवन्धुना। जिनश्री-नन्दिपेणोत्थमुन्यादिस्तवन कृतम्” ॥ इन पद्य से कवि वर्द्धमान जी का यह अभिप्राय ज्ञात होता है कि नन्दिसद्य की उत्पत्ति नन्दिपेणसे हुई है। पर अन्यत्र माघनन्दी,से मानी गयी है^६।

आगे पूर्व पृष्ठ ९० के अन्त से ग्रन्थकर्त्ता ने भट्टाकलङ्क की वंश-परम्परा यों बतलायी है—
कुन्दकुन्द, विजयकीर्त्ति, इनका पुत्र श्रुतकीर्त्ति,^{*} श्रुतकीर्त्ति का पुत्र विजयकीर्त्ति, इनका पुत्र पद्मप्रभ, पद्मप्रभ का पुत्र भट्टाकलङ्क जिनका अपर नाम चन्द्रप्रभ देव भी विख्यात था। इसके बाद इन्होंने अरुलङ्क, विजयकीर्त्ति आदि की स्तुति दी है। उनमें से कुछ इति-हासपरक पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं -

“श्रीमन्मादनयेल्लपत्तितपतेः सत्पट्टदत्तावलः

सवीक्ष्याशु परीत्यथ मदम्बरो भक्त्या च वकापुरं।

पद्मास्य शममेयिवान जिनपतिभ्यानैकतानोऽवना

स श्रीमानकलङ्कयोगितिलको रेजे नृपालार्चितः” ॥

(पर पृष्ठ ९१)

“श्रीदेवरायनृपणोखरवन्धपाद स्याद्वादशाखजनितामलहृत्प्रमोदः।

भट्टाकलङ्क मुनिपो जनसाधुवादो चाभाति भव्यजनताकृतसत्प्रसादः ॥

तस्याकलङ्कदेवस्य सधर्माण तपोगुणा।

चन्द्रप्रभादिमुनय सजातास्साधुवन्दिताः ॥

श्रीचन्द्रप्रभदेवसेवनपर शब्दाम्बुधिं गाहते

श्रीचन्द्रप्रभदेवसस्तवरतः तर्कामृत सेवते।

१—इन्हें ‘चेलविस्रुप्रशरीर’ (१) ‘मालवपतिवन्ध’ एवं ‘सूरि’(१) लिखा है। पर इनको मुनि एवं सूरि लिखना भ्रामक है।

२—इन्हें ‘कोशीपतिनत’ लिखा है।

३—इन्हें योगशास्त्र का प्रणेता बतलाया है।

४—इन्हें पेनगोंडे के ‘नरसिंहरायसेवित’ लिखा है।

५—इन्हें मालवेन्द्र की सभा में बौद्धों को पराजित करनेवाला और ‘पैगुद्वीपादिवन्ध-पादाम्भोज’ लिखा है।

६—देखें—‘जैनसिद्धान्तमास्कर’ भाग १, कि० ४।

* इन्हें त्रैविद्यचक्रेश्वर’ एवं ‘सास्वेत्रावनिपालपूजितपद’ लिखा है।

धीचन्द्रप्रभवेवसन्नतिमति पूजयत्वमालम्बते
धीचन्द्रप्रभवेवसन्नतिमति पुण्यप्रजे वर्तते ॥”

(पूर्व पृष्ठ ९२)

“स जयति जयकीर्तिर्जनदेशीयमूर्तिर-
जिनपदकजभृङ्गस्त्यक्तसारसग ।
सुचरितयतिभद्रः सवधिधाधिचन्द्र
सकलगुणसमुद्रं पुष्पकोकयङ्कद्रं ॥
मास्यद्भङ्गकल पुरं जिनगृहैर्विस्राजितं बाहुना ।
धीमत्सालुषदेवरायनृपतेमूनाभिजालेपिनां ।
नौद्रौणीनिबिताग्धिमण्डितमिदं सरसितं सपदा
निधूतालकमगजमनिलय देशोऽमषत्तौलवे ॥
तत्र भङ्गकले धीमानकलेकमुनीश्वरं ।
अतिप्रह्वस्यस दोग्धराजीववनभास्करं ॥
शरत्कालमिवात्मानं सौगधरं विलोक्य च ।
मति प्रायोपगमने कृतवान्वस्तुत्ववित् ॥
सल्लेखनापरं पश्चाच्चतुःसधसमज्ञतं ।
धीमत्पञ्चमहाशब्द स्मरन्प्रायान् मुमोच स ॥
शले सस्यारम्बुधीन्दुरुचिरे सवत्सरे शोभये
मासे चाश्विनसप्तके बुधयुते कृष्णाष्टमीवासरे ।
पुष्पके मिथुने जिनेन्द्रवरध्यानावलम्बी ययौ
स धीमानकलकदेवसुखिराट नाकालय धीरधी ॥
तस्याकलकस्थे तत्रमो विनयान्वितं ।
आसीद्विजयकीर्त्यार्षो जगन्कारसन्निभ ॥
अकलकसुखी(धी)शाधिस्सुतिपाचनमानस ।
जीयात् विमलकीर्त्यार्यं कृतधर्मप्रमाणं ॥
द्यौपशमसम्पूणाधारितौदारविग्रहं ।
पाल्यकीर्तिमुनीर्जायावकलकपद्मिथं ॥
सत धीपालकीर्त्याख्यमुनेर्यानघर्नजये ।
प्रसूनासिमहाबोरो नित्यं कर्णायते सराम् ॥

वाग्देव्या हारयष्टिर्वा ससुवर्णा गुणोज्ज्वला ।
 मुक्तामया सुवृत्ताभा चन्द्रमन्यार्थिका परा ॥
 श्रीचन्द्रप्रभयोगिराजतनुजो देशीगणाप्रसर
 प्रद्युम्नोद्भुरचापखण्डनपटु सद्धर्मधौरैयकः ।
 ध्यानध्वस्तसमस्तपापपटलः सद्गव्यकजांशुमान्
 भाति प्रोन्नतसयमो विजयते श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः ॥
 श्रीसगीतपुराप्रभागतिलके निर्वाणभूभृत्यरम्
 श्रीचैत्यालयमुद्घलक्षणयुतं योऽनन्तजित्स्वामिनः ।
 पूजां नित्यमहोन्नतां च महतीं सम्यक् प्रतिष्ठां मुदा
 शास्त्रोक्त्या व्यतनोत् स भाति जगति श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः ॥
 ध्याने यस्य मतंगजा हरिकुलैः क्रीडन्ति वाजिबजाः
 सत्तासैरिभसंकुलैर्विषधरा मण्डूकजालैर्भृशम् ।
 पञ्चास्याश्च कुरङ्गपाकनिचयैरेकेन्द्रियाः सत्फलैः
 स क्षोणीश्वरपूजितो विजयते श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः ॥
 श्रीरंगद्रगमध्ये विबुधनृपसभामूर्षिते भूसुराढ्ये
 प्रोद्बुधं वादिवृन्दं जिनपतिवदनप्रोत्यवाणीबलेन ।
 जित्वा साहित्यमूर्त्तिर्विपुलतरतपाः सन्ततं सत्कृपाद्
 श्रीमान् देशीगणेशो जयति विजयकीर्त्तिः कवीन्द्रद्रुमश्री ॥
 वीरश्रीवरदेवरायनृपतिः साहित्यविद्यापति
 सगीतामृतवार्धिवर्द्धनसुधासूतिजिनेज्यामतिः ।
 जीवन्नाणमुखव्रतादिसुरतिः श्रीपुष्पापाकृतिः
 शौर्यत्यागविवेकधैर्यवसतिर्वाभाति भूमण्डले ॥
 पातु श्रीवर्द्धमानो जिनपतिरनिश दानशूरव्रताढ्यम्
 विद्वत्कर्णावतसीरुतगुणकुसुमं चार्थिनां पारिजातम् ।
 शास्त्रांचाराकयोगीश्वरचरणसरोजातभृगु स्मराम्भम्
 नागप्यश्रेष्ठिन श्रीजिनमुखनिरत कुंभणश्रेष्ठिपुत्रम् ॥”

(पर पृष्ठ ९२ से पर पृष्ठ ९४)

आगे पूर्व पृष्ठ ९५ से कुन्डकुन्द, चारुकीर्त्तिः * श्रुतकीर्त्तिः, विजयकीर्त्तिः, अकलङ्क इत्य

*—इन्हें 'मन्त्रवादीश्वर' और 'बहालराय-विजुत' लिखा है ।

†—इन्हें 'देशीगणविभूषण' लिखा है ।

शुक्लपरम्परा का फिर प्रशंसापरक स्मरण किया गया है। यहाँ भी अकलङ्क का अपरनाम 'चन्द्रप्रम' दिया है।

इस प्रकार की पुनर्कृतियाँ ग्रन्थ में पर्याप्त हैं। फिर भी इनमें इतिहास-सम्बन्धी जो तात्त्विक बातें हैं वे उपेक्षणीय नहीं हैं। इसी प्रकार में पुनः उनके अर्थात् अकलङ्क के शिष्य नेमिचन्द्र की स्तुति अङ्कित है। इसमें इन्हें कर्जयन्त तीर्थाटन के द्वारा पुण्य-संचय करनेवाला भी लिखा है। पञ्चात् अकलङ्क का नियास-स्थान एवं स्वर्गादीहय समय आवि यों अङ्कित है—

“चन्द्रप्रमसुखी(धी)शोभ्य शुक्लजाञ्चितकम् ।
अतिष्ठत्सुखेशस्थमगीतनगरे चिरम् ॥
अन्येषु रस्मिन्कायादौ निममत्व च भाषयन् ।
ह्युमाभिसधिना चासूनत्यज्जत्यरमायवित् ॥
शाके पञ्चशपाग्धिशीतगुमिते संवत्सरे नन्दने
मासे मार्गशिरे सरुष्पाधिधुजध्रीसतमीवासरे ।
मन्याह्वे जिनपावसस्मरणत् सल्लेखनासंयुत
धीचन्द्रप्रभयोगिराद् प्रतिययौ नाकाल्यं शुद्धम् ॥

बाद साल्खुशयेषय के द्वारा सुशासित तौळयदेशान्तर्गत संगीतपुर एवं तनस्थ जैन भावकों की कवि वर्द्धमान जी ने बड़ी तारीफ की है। साथ ही साथ इस प्रकार के अन्त में यह उल्लेख किया है कि शिष्य नेमिचन्द्र ने शुक्लकि से प्रेरित हो धार्मिक भावकों के द्वारा प्रदत्त द्रव्य से विशाल मण्डप में शिलालेखपूर्वक अकलङ्क के समाधिस्थान पर एक अत्यन्त मनोहर 'नियोधिका' भी बनवायी थी। इस प्रकार का अन्तिम श्लोक यह है—

“वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना । कृताकलङ्कयोगीन्द्रचन्द्रप्रमशुक्लस्तुति ॥”

आगे पृष्ठ ९८से काण्ठीय के मुनियों के नाम यों अंकित हैं—कुन्दकुन्द जगत्सिंह-
नन्दी इन्द्रनन्दी, गुणचन्द्र, कनकचन्द्र, माधवचन्द्र, रामचन्द्र, मुनिचन्द्र, सकलचन्द्र
माधवचन्द्र, बालचन्द्र महर्षिक मुनिचन्द्र, सकलकीर्ति भाजुकीर्ति, देवकीर्ति, इनके

१—कनकचन्द्र और माधवचन्द्र को गुणचन्द्र का पुत्र बतलाया है। साथ ही साथ यह भी लिखा है कि एक बार जयकेशरी राजा का मदीनमत्त राजेन्द्र इन माधवचन्द्र जी को देखकर रात हो गया था।

२—इन्हें 'जाबालिगपुरराजाञ्चितकाण्ठीयमुख्य' भावि अनेक विशेषणों द्वारा स्मरण किया है।

३—इन्हें 'चन्द्रगुमिपुराधीराचन्द्रशुक्लपाञ्चित' बतलाया है।

४—इन्हें गेरुसोपेनिवासी लिखा है।

५—इन्हें 'मुनिचन्द्रतनय' कहा है।

शिष्य अनन्तकीर्त्ति, धर्मकीर्त्ति, कल्याणकीर्त्ति, चन्द्रकीर्त्ति आदि। उक्त देवकीर्त्ति के पद्य पर क्रमशः भानुमुनि, कनकचन्द्र, देवकीर्त्ति'। इस प्रकरण का अन्तिम पद्य निम्न लिखित है —

“वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यवन्धुना ।

कार्णार्णगमुनीन्द्रोरुस्तवन सत्प्रकीर्तितम् ॥”

पश्चात् पूर्व पृष्ठ १०१ से नन्दिसद्य बलात्कारण की गुर्वावली निम्न प्रकार में दी गयी है —

वर्द्धमान भट्टारक^१, पद्मनन्दी, श्रीधराचार्य, देवचन्द्र, कनकचन्द्र, नयकीर्त्ति, रविचन्द्रदेव, श्रुतकीर्त्तिदेव, वीरनन्दी, जिनचन्द्रदेव, भट्टारक वर्द्धमान, श्रीधर, वासुप्रज्य, उदयचन्द्र, कुमुदचन्द्र, माघनन्दी, वर्द्धमान, माणिक्यनन्दी^२, गुणकीर्त्ति, गुणचन्द्र, अमनन्दी, सकलचन्द्र, गरुडविमुक्त^३, त्रिभुवनचन्द्र, चन्द्रकीर्त्ति, श्रुतकीर्त्ति, वर्द्धमान, त्रैविद्यवासुप्रज्य, कुमुदचन्द्र, नेमिचन्द्र, बालचन्द्रमुनिस्तुत भुवनचन्द्र । इसके बाद अन्त में बलात्कारण के मुनियों की स्तुति वादी, वाग्मी, मन्त्रपटु, ग्रन्थरचयिता, राजसम्मानित, प्रखरतपस्वी आदि अनेकानेक विशेषण-द्वारा की गयी है। इस गुर्वावली का अन्तिम श्लोक यह है —

“वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यवन्धुना ।

नन्दिसद्यमुनीन्द्राणां स्तवनं सत्प्रकीर्तितम् ॥”

कार्णार्णग-स्तवन के उपरांत ग्रन्थरुर्त्ता ने दुर्जनो की निन्दा एवं सज्जनो की स्तुतिपूर्वक कुछ उपदेश दिया है। इसी प्रकार में तौलब, केरळ होयसळ सिंहल आदि देशो की स्त्रियों का शृङ्गारात्मक वर्णन अवलोकनीय है, जिसे देखकर कामशास्त्र में वर्णित भिन्न भिन्न देश की स्त्रियों की रूप-रेखा-स्मृति-पथारूढ हो जाती है —

“देहोऽलकारहीनो विधुसमवदन वीटिकारागशून्यम्

चालाप श्रोत्रवज्रो भ्रमरनिभकच पुष्पसन्धोहदूर ।

नीवी सद्बलवर्जा परिमलरहिता कामकेलिश्च शय्या

चञ्चन्मञ्चादिरिका प्रभवति नितरां तौलवीनां वधुनाम् ॥

नित्यस्नानयुता शिवार्चनपरा कामाङ्गनासन्निभा

श्रीखण्डांशुकशोभिताङ्गकचय कर्णाढ्यमुक्ताफला ।

१—इन्हें भानुकीर्त्ति के उत्तराधिकारी एवं 'केरलाधीश्वरपूजित' बतलाया है।

२—इन्हें 'होयसलसन्मानराजाश्वितपदाम्बुज' लिखा है।

३—इन्हें 'मालवेन्द्रप्रपूज्य' कहा है।

४—इन्हें 'मन्त्रवादि-पितामह' बतलाया है।

पावद्व द्वभुजाग्रहेमबलया संभोगसक्ता सदा
 पुमावाभिनयाच्च केरलजनुष्कान्ता विमान्ति चित्तौ ॥
 द्वायसलदेशजातयनिता कनकोज्वलरत्नभूषणा
 धारिजलोचना निषिद्धपीनपयोधराश्चाख्यक्षस ।
 सारमृदूकिहासपरिगर्मितम मथकेलिकोविदा
 भान्ति विचित्रनेत्ररुचिरा सुविलेपनधीटिकाप्रिया ॥
 द्वीपे सिंहलनाम्नि सागरतटा सद्बृषमुकाफला
 शैला निमलपद्मरागमण्योऽरण्यानि सेमानि च (?) ।
 तद्देशोद्भवविश्वधामनयना श्रीपद्मिनीजातिजा
 राजन्ते महिषा सदागतमताचारास्तदुत्पत्तिका ॥
 श्रीमन्ते फलपल्लवैर्विगपिन सत्येन भूषल्लभा
 ताक्ययेन सुमानदेश्यवनिता मूलैर्गुणैरुत्तरै ।
 योगीन्द्राश्च पटोपकारकर्यौ सन्तो जना आवकै
 धर्मा श्रीजिनमापिता कथिबुधै शालाणि पूतानि वै ॥”

(पर पृष्ठ १०९ से पूर्व पृष्ठ ११०)

आगे खन्वनपट्टी-सम्बन्धी चन्द्रप्रभपूजन एवं जीवदयाष्टमी संबंधी मुनिस्तुवतपूजन दिये गये हैं। मुनिस्तुवतपूजन के अंत में भङ्कित—“वक्ष मानमुनीन्द्रेण विधानंवार्यंभुना । महाजीवदयाष्टम्यां निर्मित पूजना विधि ॥” इस पद्य से इस ग्रन्थ में गर्भित भक्त्यतिरिक्त मित्र मित्र स्तुतियाँ, गुर्वावलियाँ तथा पूजनादि धर्ममान की की अन्यान्य समय की कृतियाँ हैं और ये सब सप्रहृष्य में धमर रह जायँ इस ख्याल से प्रकलित कर दी गयी हैं—यों अनुमान करना निमूल नहीं कहा जा सकता । इसी से इसमें यज्ञ तल पुनरुक्तिर्यों पत्र अप्राकरणिक का ख्याल हो जाना अस्वाभाविक नहीं है ।

पृथ पृष्ठ ११२ से पृथ पृष्ठ ११५ तक जो विद्वत्स्तोत्र भङ्कित है उसमें निम्न लिखित विद्वानों की प्रशंसात्मक गाथायें हैं—माशाधर, अमयचन्द्र, देवरस, हरिमह, ब्रह्मसूरि, नेमिचन्द्र ।

१—इन्हें ‘सर्वोर्विपत्तिपूजिताग्रियुगल’ लिखा है ।

२—इन्हें ‘धमशर्माभ्युदय’ एवं ‘राधवपाण्डवीय’ के दिव्यणकार बतलाया है ।

३—इन्हें ‘न्यासतर्कविशारद श्रुतकीर्त्यार्थपादपकजपद्मपद्’ कहा है ।

४—इन्हें देवपाय के पुत्र अमयचन्द्र सूरि के निकट ‘प्राचीतसंश्रान और विजयावनी शतनयश्रीदेवरायचित’ लिखा है ।

जिनदेव, भेम्मडिभट्ट^१, गुम्मटदेव^२, परिडितार्य^३ लोलम्बरस^४, आद्यपार्य^५, चन्द्रपार्य^६, कल्याणनाथ^७, धर्मशेखर^८, अमयचन्द्रसूरि^९, आदिनाथ^{१०}, अध्यापक पार्श्वदेव^{११}, उपाध्याय देवरस^{१२}, गुम्मटदेव, अनन्तपरिडित^{१३}, चौडरस^{१४}, समन्तभद्र^{१५}, मंत्री चेतसरस^{१६}, देवरस^{१७}, इन्हीं का अनुज अनेकगुणगणालंकार साछुवमल्लिराय के शास्त्रविद्यागुरु देवरससूरि, इनका पुत्र अनेकगुणमण्डित, साछुवदेवराय के आस्थान-भूषण, विद्यानन्द-शिष्य एव साहित्यरत्नाकर बोम्मरस ।

इस प्रकार का अन्तिम पद्य यह है—“वद्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानद्वार्यबंधुना । रचितं विदुषां स्तोत्रं सज्जनानामभोष्टदम् ।”

पूर्व पृष्ठ ११५ की अन्तिम पंक्ति से पूर्व पृष्ठ १२४ तक इस में जो श्रावकों का स्तुति अङ्कित है, इस स्तुति में निम्न लिखित व्यक्तियों का सवात्सल्य स्मरण किया

- १—इन्हें ‘विजयावनीशतनयश्रोदेवराय’ के ख्यातिप्राप्त आस्थानकवि बतलाया है ।
- २—इन्हें अमयचन्द्रसूरि के पुत्र लिखा है ।
- ३—इन्हें ‘पद्माम्बाअमयचन्द्रसूरितनय’ और ‘नारसिंहनृपतिस्तुत्य’ आदि विशेषण-द्वारा स्मरण किया है ।
- ४ इन्हें ‘तर्कशास्त्रप्रवीण’ एवं ‘उपाध्यायपदाधीशसूरिपुत्रसमञ्जित’ कहा है ।
- ५ इन्हें ‘जगद्धन्ध, सुकुमारचरित्रेश, परवादिविदारक’ लिखा है ।
- ६ इन्हें ‘आयुर्वेदविधानज्ञ’ बतलाया है ।
- ७ इन्हें ‘नेमिचन्द्रतनय, संगीतकलाप्रवीण’ आदि लिखा है ।
- ८ इन्हें ‘कल्याणनाथसहोदर, शब्दतर्कागमामिज्ञ’ कहा है ।
- ९ इन्हें ‘कल्याणनाथतनय सास्त्रेन्द्रनृपास्थानप्राविष्कृतमहोदय’ लिखा है ।
- १० इन्हें ‘वृषस्तुत्य, वादिविजयो, मल्लिरायनृपस्वान्तसरोजातप्रभाकर’ बतलाया है ।
- ११ इन्हें ‘अमिनंदनमदृसुतु, बोम्मरसानुज’ लिखा है ।
- १२ इन्हें ‘नृपस्तुत्य’ कहा है ।
- १३ इन्हें ‘कविश्रीपतिमातुल’ बतलाया है ।
- १४ इन्हें ‘उपाध्यायतनुसभव’ लिखा है ।
- १५ इन्हें ‘वेणुपुरम्बयजनार्चित, तौलवाधीशचन्द्र्यांत्रिचन्द्रिमा’ आदि लिखा है ।
- १६ इन्हें ‘विद्यानंदमुनीन्द्रनिकटाधीतदर्शन, संगीतपुरसास्त्रेन्द्रभूपालास्थानभूषण, पद्मवाक्य-प्रमाणज्ञ, वाद्यद्विकुलिशायुध’ आदि बतलाया है ।
- १७ इन्हें कवि और आगमका मर्मज्ञ लिखा है ।

गया है—

मन्त्री जैतरस', मन्त्री नागरस', मन्त्री देवरस', दशडनाथ बैचप', सकप्य', मल्लुप नायक' बोंमिश्रेष्ठी' ।

आगे प्रन्थ में अनेकगुण मण्डित, स्मरनिभ, योगीन्द्रसेवापर, विद्यानन्दमहोदय, शुद्धाहापविदाननिरत, मुक्तारक्षपरीक्षणोत्तमनिपुण, विद्वत्कवीन्द्रद्रुम सारत्नयवेदी, परहिता चारमहामागी ज्ञानचारित्रनिलय, पद्य सम्यक्चरत्नाकर, आदि विशेषणों से प्रशसित वेणुपुरीय—भूडबिद्रीय भव्य धावकों की रक्षा वहाँ के श्रीचन्द्रप्रभ एवं श्रीपाश्वनाथ किया करें यों अपनी शुभकामना कवि बद्धमान जी ने वरसायी है । इसी प्रकार में वहाँ की अर्थिकाओं का भी गुणवर्णन किया गया है । बाद इसी प्रकार गेहस्तोत्रे, भद्रकळ पद्य संगीतपुर के भव्यभायकों की भी पर्याप्त प्रशंसा की है ।*

१—इन्हें 'प्रधानतिलक दवरायप्रभुदुर्गाधीश्वरवन्दित, सम्यक्त्वचूडामणि, विप्रकुला म्बरमणि सर्वज्ञसत्रापर, सहानपूजाधिक, नानाशास्त्रविचक्षण मुकवितासीमन्तिनी-मल्लम, सव्युत्त भुतकीर्तिदेवयतिराट्पावावापुष्पन्धय आदि अनेक विशेषणों द्वारा स्मरण किया है ।

२—इन्हें 'मन्त्रितिलक, सौजन्यरत्नाकर सर्वज्ञपादद्वयोसवायत्तमहोदय' लिखा है ।

३—इन्हें 'कृतश्रीजिनमंदिर, सारत्रयसुधासिंघुपारटश्या, बिरुगपधरणीशपालनीय' बतलाया है ।

४—इन्हें 'जिनचरणसरोजद्वैतपूजाहिराज जनवृन्दप्राणरक्षामुकुन्द, श्रीदेवरायधरणीश्वर दक्षमाम्य सद्धमसाधितमहापरलोकसार्थ कीर्तिपरिभूपितदिग्बघूटि' आदि कहा है ।

५—इन्हें 'वीरश्रीविजयावनीशतनयश्रीदेवरायप्रभुभेष्टिपदंगत, विख्यातदानाधिप, धर्मभूषण गुरुपदान्बुजातद्वयीरोलम्ब, जिनवल्लभ' लिखा है ।

६—इन्हें 'भक्तिराजनरायमहामात्य, जिनपादाचनासक्त' बतलाया है ।

७—इन्हें 'श्रीरत्नराजविजयावनिपालमौलि, श्रीतौलवेश्वरनृपार्चितपादपीठ, श्रीवीरसन मुनिपादनिधानदीप, विबुधप्रजकल्पभूज, विद्यानन्दव्रतिपतिपदाराधनासक्तचित्त विद्वत्सन्ध, सकलमुवनख्यातकीर्ति साद्विलस, जिनपतिमताचारवान्, चातुरंगप्रवीण' कहा है । साथ ही साथ इनके नामके पूर्व में 'टंकशाला' यह पद दिया गया है जिससे यह बात सिद्ध होती है कि यह बोंमिश्रेष्ठी टंकशाला के अभ्यर्तृ थे ।

४ इसके बाद एक श्लोक यों मिला है जिसमें रेखांकित पद अवश्य विचारणीय हैं —

"वीरश्रीन्द्रनेन्द्रवदितपदा कृवन्तु मध्यावलेर्-
वाकृसिद्धिं वृगायाख्यनेत्तरचित्तश्रीचेत्यधामस्थिता ।
धीरायमयायकेश्वरवास्तद्वाग्निनेयाप्रिम
प्रोयश्रीजिनगायकस्तुतगुणास्तीर्थङ्गुप मङ्गलम् ॥"

पश्चात् कुम्भराण श्रेष्ठि-पुत्र नागण्य श्रेष्ठी की बडी प्रजंमा की गयी है। आगे पुन क्रमश निम्नाङ्कित व्यक्तियों के नाम स्मरण किये गये हैं —

सगरस, ' अगतग श्रेष्ठी, ' नारग श्रेष्ठा, ' मल्लि श्रेष्ठी, ' जिनवत्त, ' भोजन श्रेष्ठी, ' विजयराण, ' लम्बप, ' पायण्य, ' नेमि श्रेष्ठी, ' नेमराण श्रेष्ठी, ' गुग्मि श्रेष्ठी, ' नागण्य, ' तम्मराण, ' गुम्मटदेव, ' विजयण्य, ' आत्रिनाय, ' नेमिचन्द्र, ' परिडत

१—इन्हें 'सालुवमल्लिरायनृपतेमन्त्रीश्वर, श्रीमान, विनिमित्तजिनावाम, महामत्यवाक, पूजादानपुरस्सरोरुद्दय, जैनन्द्रशास्त्रादर, वीगनृसिहरायधरणीद्प्रातेद्वमागयोदय' कहा है।

२—इन्हें 'जिनधर्ममहामति, त्रियम्यकमहामाल्यचन्दनश्रेष्ठयनृद्भव' बताया है।

३—इन्हें 'विभु, श्रावकाचारसद्व्रभूप्यमद्दहृदय' लिखा है।

४—इन्हें 'नागिश्रेष्ठितनूभव, गुणनिधि, महानतीर्थेशिना मुक्च, जिनराजपूजनविधिब्या-सक्तचित्तोत्सव, विद्यानन्दमुनीन्द्रसेवनपर, मद्धर्मकनीगृह, इन्दुकल्पयश' व्यक्त किया है।

५—इन्हें 'मगिश्रेष्ठिसुगर्भेत्यनागिश्रेष्ठितनूद्भव' लिखा है।

६—इन्हें 'कृतनेमिजिनालय, गेरुसोपेपुरीमध्यराजित' बताया है।

७—इन्हें वरिणेश, दयाधर्मकोश, कविवुधसुरधेनु, पायण्यश्रेष्ठिसुनु, जिनमुनिकजभृ ग, सक्तकान्ताप्रसङ्ग, यतिवृत्त, पात्रसन्त्यक्तवित्त' कहा है।

८—इन्हें 'पायकापतिपायण्यप्रमुसुत, श्रेष्ठीश्वर, वारिण्य्यादिकृताप्रवीण, सत्यात्रलेप, पायप-वारिण्यामज, प्रव्यक्तपुरयोदय' लिखा है।

९—इन्हें 'जयति विजयकीर्ति पादसंवाह्यचित्तो धनपतिनिभवित्त' पोपितानेरुपात्र'। प्रथितगुरुचरित्र कामसकाशगात्रो जनजलजविमित्र पायपो जैननेत्र ॥' कहा है।

१०—इन्हें 'देविश्रेष्ठयनुजात, गुणाकर, सुवनस्तुत' लिखा है।

११—इन्हें 'गुम्मणश्रेष्ठ्यनुत्पन्न, दयाविशिष्टसद्धर्मवार्धिपीयूषदीधिति' बताया है।

१२—इन्हें 'मन्त्रिसंघविपुत्र, दयानिधि, व्रतशीलतपोनिष्ठ, चारुदर्शन, कहा है।

१३—इनकी माता नागरसी, पिता श्रेष्ठी तम्मराण, देव वृषभेश्वर, व्रत-गुरु नेमिचन्द्र व्रती, शिचारागुरु विद्यानन्द बताया गये हैं। इन्होंने दो मन्दिर भी बनवाये थे।

१४—'श्रीशं नागरसीशदुग्णविमोर्गर्भाधिधराकाविधु

सर्वहामलपूजनात्तविभव सौजन्यरत्नाकर ।

आहारादिसमस्तदाननिरत ससारसौख्योदय

पायात्तम्मराणनामधेयवणिज श्रीवद्धमानो जिन ॥' कहा है।

१५—इन्हें 'कुम्मणश्रेष्ठिनन्दन, दयाविशिष्टसद्धर्मवार्धिपीयूषदीधिति' लिखा है।

१६—इन्हें 'करणिक्कतिलक' बताया है।

१७—इन्हें दशरथ की उपमा दी गयी है।

१८—इन्हें 'चिन्नरायपट्टणराज्यश्रीसुराञ्ज, मन्त्रिकुञ्जर, चतुर्विध-महादान' लिखा है।

विजयप्य, 'गुम्मय,' देवरस ' धरणिपण्डित लुम्मय ' गुम्मि भेष्ठी, ' विजयनगरवासी, ' गुम्मि भेष्ठी, ' चेन्न भेष्ठी देवरसो मल्लि भेष्ठी, ' ' गुम्मट भेष्ठी ' ' नेमराय भेष्ठी ' '

१—इन्हें 'आयुर्वेदविशारद, मूनुत वेवेन्द्रानुजनंजरायनृपमुप्राप्तोद्घसपद्व्रज, देवरसाख्य पण्डिततनूजात, द्विजामेसर, काश्यपगोत्रज, स्मरसम, गोविन्दराजस्तुत' कहा गया है।

२—इन्हें 'अमचवादीपत्तनभीमुकुन्द, कृतजिनपतिगोह, अमात्यवर्य, विबुधजनवसन्त, जैनविप्रावतंस, परबलमधुकृष्ण, कामरूप' बताया है।

३—इन्हें 'निरञ्जनार्थतनय, प्रमजनसुतप्रम, रायसभाप्रार्च्यमहोदय, बोम्मरसानुज, द्विज कुलसोमामलभीसुधासूति, दानमरुन्नदीपरिहृतप्राहोरज सद्दति, पार्श्वैजिनेन्द्रपादयुगलीकज प्रसूनातिथि, मन्त्रि-तिलक, सम्यक्त्वपूतव्रत, सोममूपालसन्मन्त्री, द्विज, हरवेप्रामसन्मध्यकृत पूतजिनालय' लिखा है।

४—इन्हें 'आयुर्वेदविधानज्ञ, श्रीमान्, वीरपृथ्वीरासचिव, धमवत्सल' बताया है।

५—इन्हें 'बलगावेनगराधीश, महाप्रभु जिनेन्द्रधर्मनिरत, मुनिसवाविचक्षण' कहा है।

६—इन्हें 'विद्यानगरे निर्मापितजिनालय, वैश्यकुलामणी मृदुवचा, नागाविकावल्लभ, अश्वनीजनस्तुतगुण, सदानकृत्' लिखा है।

७—'विजयनगरवासा वैश्यवशाक्तसा जिनपतिपदपूजासत्त्वचित्ता विमान्ति । अनुगत-पुरुषस्था कामिनीपुत्रयुक्त परहितसुचरित्रा दानपूजाप्रसंगा' ॥

८—'विद्यानन्व्रतिपतिपदारधनासत्त्वचितो विद्वत्सन्ध सफलभुवनख्यातकीर्तिगुणाढ्य । सादित्यक्षो जिनपतिमताचारवान् टंकरालाभोम्मिभेष्ठी जयति भुवने चातुरगप्रवीण ॥'

९—इन्हें 'हरियणसहजात, सफलगुणसमेत, धर्मवार्च्यत्रिजात, जनविनुतचरित्र लपदा नार्हविच' लिखा है।

१०—'श्रीमत्या जन (चेन्न)-वाणजस्य कृतिन सद्धर्मसशोभिनो दौहित्री जिननेमिनाथ वसतेरमे जिनार्वाङ्कितं । मानस्तम्भमलं चकार रमणी सीमन्तमुक्त्रमणिलौह देवरसी सवम्भु वण्डकृषित्तोत्सवानन्दिनी' ॥

११—इनके विषय में लिखा है कि मागोदु क पति, धनसम्पन्न मल्लि भेष्ठी ने नेमि तीर्थङ्कर का चैत्यालय बनवाया।

१२—इन्हें 'देविभेष्ठिसहोदर, कविनुत, धमालिंगितविभद् जिनपतिभीपादसेवापर' लिखा है।

१३—इन्हें 'गुम्मन्भेष्ठीपनुज क्षमादिनिलय भेष्ठीश जिनवशानभ सपद्म, पुत्रपौत्रान्वित' बताया है।

दुग्गाय श्रेष्ठी, ' चोम्मराण श्रेष्ठी, ' सालुव नायक, ' कामराण-देवरस, " होत्रप नायक, ' हैवया नायक, ' तिम्मराण नायक, ° पवराण श्रेष्ठी, ° सराणामरि नायक, ° पायराण श्रेष्ठी, ' °

१—इन्हें 'अंगजाम, जिनेन्द्रपूजासुरराजकल्प, जैनशास्त्रप्रीण, अत्र्याहृतपुण्यसार्थ' कहा गया है।

२—“दुम्भारूपाममध्ये कृतजिनसदनो चोम्मराणश्रेष्ठिवर्य
शास्त्राह्यानां यतीना कमनगु . यजा जेमनाथं प्रमोदात् ।
त्रिंशत्संख्यायुताना प्रशामितवृजिना शालिज क्षेत्रमुच्चै ।
प्रादात् पूजाव्रताह्यो वणिजकुलमणि भवर्गमोक्षाप्रथे व्रं ॥

३—“भावुनायकरुपुत्रोऽमात् श्रीमान सालुवनायक. ।
दानपूजाप्रसक्तात्मा गुरुराजाघ्निकित्तमान ॥
सगीतनगरे श्रीलो ब्रह्मिश्रेष्ठि-जिनालयम ।
सतनोतिस्म तोपेण तान्नमच्छादित वरप ॥”

४—इन दोनों अधिकारियों ने एक जिनमन्दिर का निर्माण कराया था ।

५—“श्रीद्वं होत्रपनायक गुणनिधि प्रजाधनानन्दिनम
कारुण्यामृतपूर्णपात्रमवनौ विद्वज्जनै समुत्तम ।
जैनेन्द्रामलशास्त्रनिश्चितमहाजीवादिभावस्थितम
पायात्संगरनिर्जितारिनिकर श्रीवद्वं मानो जिन' ॥”

६—“श्रीमत्सालुवकृष्णदेवनृपते मंवाप्तसद्वेभवो-
धीमाञ्जीवदयापरो नयविदामप्रेसर मौख्यमाक् ।
भव्यो हैवराणनायक कृतमहाजैनप्रतिष्ठोन्मवो-
योगिस्वान्तकजाशुमान् विजयते सम्यक्त्वचूडामणि ॥”

७—“श्रीतिम्मनायक कृपापरपूण्यमूर्ते श्रीकृष्णदेवनृपदक्षिणवाहुकल्प ।
विद्वत्कवीन्द्रसुरभूरुह जीवभूमौ प्रद्यु भ्र्याणवनितानयनाब्जमित्र ॥”

८—“पद्माकरपुरस्थ श्रीपादशैशो मन्त्रिशेखरम ।
पद्मराणश्रेष्ठिनं पायाद्विनिर्मितजिनालयम ॥”

९—“रामराजनृपामालोऽभात्सराण रिनायक ।
जिनप्रतिष्ठासद्दानसघपूजादिभासुर ॥”

१०—“पायिश्रेष्ठितनूभुवो जिनगृहं वेद्यातटाके वरम्
पश्चात्पोम्बुचनान्नि पञ्चवसती कृत्वा पुने पाम्तरि । (?)
जीर्णोद्धारविधानतो जिनमहायज्ञं ध्वजाद्यङ्कितम्
भवत्या पायणवाणिजो व्यरचयत् सत्सघपूजां च स ॥”

पाश्व श्रेष्ठी, शुम्भि श्रेष्ठी, तिम्भि श्रेष्ठी' बौम्मराज । इस प्रकरण के अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है — जिनशासननिष्ठाता सदा सत्कमकमठा । जैनद्विजा सदापथा जयन्ति कस्यापरा ॥ यद् मानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना । दानपूजागुणाख्यानां भावकानां स्तुति कृता ॥

श्लोक १२३ पंक्ति ४ से तुल्यदेशान्तर्गत मूढबिहारे के श्रीचन्द्रनाथ से तत्स्य मर्षों की रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है । इस प्रकरण में कविबद्ध मान जी ने मूढबिहारे को स्वयं तुल्य कह कर वहाँ के भावकों को धनवान् धीमान् रूपवान्, शुद्धचारिणधारक, मुनिसेवा सक्त, सागारधमनिरत, मजनमुनि-आज्ञाधारक रागद्वेष विमुक्त यथ त्यागप्रिय भावि विशेषणों से स्मरण किया है । साथ ही साथ चन्द्रनाथ या त्रिभुवनचूडामणि चैत्याख्य की बड़ी प्रशंसा की है । वहाँ के पाश्वनाथ-मन्दिर की प्रशंसा करना भी शक्य नहीं भूले है । इस प्रकरण का अन्तिम पद्य यह है —

यद् मानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।

श्रीवेणुपुरकान्तानां भावकानां स्तुति कृता ॥

बाद पद्य श्लोक १२६ से देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्द देवरससूरि यद्य इनके कुटुम्ब की प्रशंसा की है—

“श्रीमान्देवेन्द्रकीर्तिसंपत्तिपतिमुकुटो मन्त्रवादीभसिंह

साहित्याम्बोजसूर्यो विमलतरतप श्रीसमालिंगिताङ्ग ।

१—“श्रीपाश्वश्रेष्ठिन पायाञ्जिनेन्द्रो गुम्भपापजम् ।

दानपूजादिव्यास्तस्वापतेर्यं महाधियम् ॥”

२—“कोटीश्वरानुजापुत्रो शुम्भिश्रेष्ठिशुष्पाकर ।

दानपूजाविनिरतो राजते जनतास्तुत ॥”

३—“वैविश्रेष्ठ्य गजात सकलगुणनिधिर्जनसत्सघबन्धु

चेन्नादेव्या पदाब्जाद्वितयसमुत्तर. सगरामगतजा ।

तिम्भिश्रेष्ठिजिनेन्द्रमलमत्तनिरत श्रीदयाधर्मकोश

मन्त्रीश शक्तियुक्तो जगति विजयते सत्यवान्दानशूरः ॥”

४—बौम्मान्वापत्तिपाण्ड्यमूपतनय श्रीवद् मानोदय

सद्बुद्धोदयशैलबालतरणि सदानचिन्तामणि ।

सर्वभ्रामलपादयुग्मसरसीजातद्विरफ सदा

जजीयान्दुवि धोम्मराजनृपतिनारीमनोजाह्वति ॥”

विद्यानन्दार्यसूनु कविविबुधमहापाणिजातो विभाति

प्रायो भूताचलेन्द्र परहितनिरत शारदाकणपूर. ॥

श्रीकृष्णारायमहजाच्युतरायमालिचिन्यस्नपाद्रुमल कमनीयम्रप्ति ।

देवेन्द्रकोत्तिलुखिराष्ट जयति प्रसिद्ध स्याद्वाद्दशाग्रमकराकरशीतगेत्रि ।

x y x x

'यो विद्यानगरीशुरीणाविजयश्रीकृष्णारायप्रभो

आस्थाने विदुषां गण ममजयत पञ्चाननो वा गजम ।

महाग्निखरैकदात्तविमलशानाय तस्मै नमो

विद्यानन्दसुखीश्वराय जगति प्रख्यातमन्कीर्त्तय ॥

वाग्देवी वदनास्तुजे नयनयो कृष्णार्जुनां मन्करं

स्वर्धनुर्हृदये मरुज्जिनपति मन्तिष्ठने राजते ।

पादे कूर्मकलानिधिप्रभृतयो रोमालिकायां कर्णा

यस्य श्रीविजयाम्बिका वरगुणा मा विश्वदेवाकृति ॥''

x x x x

जोषात् साल्लवमद्विरायनृपते मच्छास्त्रविद्यागुरु

सर्वशोषिततत्त्वनिश्चितमति साहित्यविद्याधर ।

भारद्वाजविशालगोत्रतिलरु स्याद्वाद्दशास्त्राकृति

श्रीमान् देवरसाख्यसूरिरिमलाचाराप्रणी. सन्नुत. ॥

तस्य देवरसाख्यस्य विद्वद्वाजशिरोमयो. ।

सेय त्रिवर्गनिष्पत्ये विजयास्तीन्महोयसी ॥

तयोर्वा विजयादेवरसीपाध्याययोरभूत् ।

सुतो बोम्मरसो नाम नीतिविक्रमयोरिव ॥

तत्पुत्रो जनताप्रिय परहितः सद्दर्शनालङ्कृत

श्रीमत्साल्लवदेवरायनृपतेरास्थानिकाभूपणा ।

विद्यानन्दसुखीन्द्रपादसरसीजातद्वयेन्दीवरौ-

जीयाद्बोम्मरसो विचक्षणवर साहित्यरत्नाकर ॥

x x x x

तस्याभवत् बोम्मरसस्य पत्नी गुणाश्रया निर्मलवृत्तरम्या ।

मुकामया हारलतेव कान्ता कण्ठास्पद देवरसी लतांगी ॥

नील श्रीविक्र' प्रवालमधरो वज्रञ्च वन्तावलि
 धैर्यं वक्षर कलैवरमिदं सत्पुष्परागौ मणि ।
 यस्या शोणकगन्धियुग्मममल भृङ्गारसजीवनी
 सा रत्नप्रतिमेव भाति तद्वयी श्रीदेवरस्यम्बिका ॥
 कुम्भौ पीनपयोधरौ मलिनीकावक्त्र पताका क
 पर्ण पाणितल सुतयडुलचयी वन्तावलिस्तोर्याम् ।
 हेमस्तम्भसङ्कतमूर्युग घाघ च हृद्य धवो
 यस्या मङ्गलदेवतेव धनिता सा देवरस्यावभौ ॥
 तस्या वियोगविधुर' परमाथसिद्ध्यै देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजपदाम्बुजा
 सागरवाहवार्मा दीक्षां जिने प्रगदितां धरमाश्रयेऽहम् ।"

इसके आगे कन्नड भाषा में कवि बहू मान ने अपनी प्रशंसा लिखी है। बल्कि उल्लिखित देवेन्द्रकीर्त्ति विद्यानन्द भादि की प्रशंसापरक स्तुति तथा परिचय भादि में भी कन्नड भाषा प्रयोग में लाई गयी है। पश्चात् कुछ ऐतिहासिक पद्य जो प्राप्त होते हैं वे यथावत् नीचे उद्धृत कर दिये जाते हैं

"श्रीकृष्णा कुम्भशर्जं गजपुरे श्रीधमराय यथा
 पट्टेऽस्यापयदीश्वरेन्द्रनरन् श्रीरंगरायात्मजम् ।
 जामाता भुवि कृष्णारायनृपते श्रीरामराजस्तथा
 श्रीपट्टेऽन सदाशिव नरपतिं विद्यापुरेऽस्यापयत् ॥
 नेतार्या रघुरामचन्द्रनृपति' सिन्धोस्तटे प्राविहे
 रामेश समतिष्ठपत्त्रलु यथा कर्णादेशे कलौ ।
 श्रीविद्यानगरे सदाशिवमहाराय नृसिंहप्रभो
 न्मत्त गुरुरामराजनृपतिस्त राजमौलि तथा ॥
 शीयादीश्वरनारसिंहतनयश्रीकृष्णारायप्रभो
 धाता योऽजनि रगरायनृपति पृथ्वीवराहाङ्कित ।
 तस्यासौ तनुज सुपुण्यतिलक श्रीरामराजाञ्जित
 सौषोपाळबल सदाशिवमहारायो जिनेन्द्रमूढम् ॥
 मन्दे श्रीरंगराजकृतिपतिकलमं धर्षयन्तीहपुण्यम्
 पुत्र जामातर वा परिवृढमधनौ मानुल देव च ।

विद्वांसस्ते कवीन्द्रा कुवलयसुखद श्रीवर रत्नकान्तम् ।
तेजस्वीन च विश्रायानगुगानिरत रामराजावनोशम् ॥'

x x x x

“रजे पाण्ड्यमहीमहेन्द्रमहिर्षी श्रीभेरुचाम्ना सती
सर्वभाङ्गिमरोजपुजनपरा पुण्यायुधश्रीनुज ।
साल्वश्रीगुरुरायभरवन्पुश्रीदेवरायप्रभो
पद्माम्नाप्रजमगिरायनृपते श्रीगामचन्द्रस्यजा ॥
वीरश्रीवरदेवराजकृतमन्त्रागापुत्रोत्सवो-
विद्यानन्दमहोदयंकनिलय श्रीमगिराजाञ्जित ।
पद्मानन्दन . . . कृष्णचिनुत श्रीवर्द्धमानो जिन ।
पायात्माळुवकृष्णादेवनृपति श्रीशोऽर्द्धनारीश्वर ॥”

x x x

“पञ्चार्हन्त प्रमाणा सकलगुणयुता मोक्षदो जैनधर्मो-
धान्य जैनेन्द्रवक्त्रोद्गतमवनिहित बन्धुरा जैनविम्बा ।
भास्वज्जैनालया श्रीसदनमुक्कल कृष्णादेवचित्तीन्द्रम्
रत्नन्तोद्धप्रताप कृतजिनसद पद्मलाम्बाकुमारम् ॥”

x x x

“बलात्कारगणाम्भोजभास्करस्य महाद्युते ।
श्रीमद्वेनेन्द्रकीर्त्याख्यमद्वारकशिरोमणे ॥
शिष्येणा ज्ञातग्राह्यार्थस्वरूपेणा सुधीमता ।
जिनेन्द्रचरणाद्धेतस्मरणाधीनचेतसा ॥
वर्द्धमानमुनीन्द्रेणा विद्यानन्दार्यवन्धुना ।
कथित दशभक्त्यादिशासन भव्यसौख्यदम् ॥”

इसके बाद ग्रन्थरचनाकाल यों अङ्कित है —

“शाके वेदखराग्निचन्द्रकलिते संवत्सरे श्रीछुवे
सिंहश्रावणिके प्रभाकरशिवे कृष्णाष्टमीवासरे ।
रोहिण्य्या दशभक्तिपूर्वकमहागण्य पदार्थोज्ज्वलम्
विद्यानन्दमुनिस्तुत व्यरचयत् सद्बर्द्धमानो मुनि ॥”

ऊपर उद्धृत इस ग्रन्थ के जहाँ तहाँ के पद्यों से विश्व पाठक सहज ही समझ गये होंगे

कि इस ग्रन्थ को इतिहास में कितना धनिष्ठ सम्बन्ध है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ग्रन्थ में प्रतिपादित प्रत्येक बात पर सावधानता से विचार करने पर कई नवीन बातों पर प्रकाश पड़ेगा और एक सुन्दर महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ तैयार होगा। खास कर उत्तर कन्नड़ जिला के जैन इतिहास निर्माण में इस ग्रन्थ से पर्याप्त सहायता मिल सकती है। किन्तु ग्रन्थ-प्रतिपादित सभी बातों को सप्रमाण खोज पर्व सिद्ध करने के लिये विशेष समय सापेक्ष है। पर इस समय के पास इतना समय नहीं है। अतः मैं एकमात्र अन्वेषण शील सावकाश विद्वानों से ग्रन्थगत बातों पर प्रकाश डालने के लिये अवश्य सावर अस्तुरोध करूँगा।

ग्रन्थ-रचयिता कवि वद्व मान जी ने इसमें अपने पूर्वज विद्यानन्द और देवेन्द्रकीर्ति को कई स्थानों पर बड़ी प्रशंसा पद्य स्तुति की है। यह विद्यानन्द वही विद्यानन्द है जिनके सम्बन्ध में 'जैनपण्डित्वेरी' भाग ४, न० १ म डा० सालेटोर का 'Vadi Vidyananda A Renowned Jaina Guru of Karnataka' शीर्षक एक महत्त्व-पूर्ण विस्तृत लेख अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुका है। विद्व लेखक ने इनके बारे में अपने गवेषणा-पूर्वक लेख में अद्भुत विवेचन किया है। विद्यानन्द विजयनगर साम्राज्य के समसामयिक हैं। मैसूर राज्यान्तर्गत नगर तालुक के हुन्नुष नामक स्थान में इनसे सम्बन्ध रखनेवाले कई शिलालेख मौजूद हैं। आप नन्दिसिद्ध के कुन्दकुन्दान्वय के अनुयायी थे। इस अन्वय में समन्तभद्र, पूज्यपाद आदि बड़े बड़े लोकविभूत ध्यानार्थ हो गये हैं। विद्यानन्द एक अद्वितीय वादि-विजयी थे। मित्र-मित्र राजसमाजों में जाकर इन्होंने जो जय-लाम प्राप्त किया था उन सब का विस्तृत परिचय अनेक शिलालेखों में मिलता है। वद्वि वद्व मान जी ने अपने इस प्रस्तुत ग्रन्थ में भी शिलालेख-गत कतिपय पद्यों को जहाँ-तहाँ उद्धृत किया है। डा० सालेटोर ने भी पूर्वोक्त अपने लेख में इनकी विजययात्रा-सम्बन्धी बातों पर ही अधिक प्रकाश डाला है। नजिदेवराज केशरिधिक्रम आदि जिन जिन राजाओं की समाजों में विद्यानन्द जी ने वाद-द्वारा यश प्राप्त किया था वे अमुक वंश के, अमुक राज्य के पद्य अमुककाल के राजा थे इन सब अट्टिल बातों को सप्रमाण सिद्ध करने की आपने सफल चेष्टा की है।

विद्यानन्द केवल वादी ही नहीं थे; प्रत्युत एक प्रवीण समालोचक तथा सुदृढ़ कवि भी थे। शिलालेख में इनके गद्य के लिये महाकवि बाण की उपमा दी गयी है। इन्होंने धार्मिक क्षेत्र में अच्छा काम किया था। गेरुसोन्ने में तो इनका एकछत्र आधिपत्य था ही। साथ ही साथ कोपण, धवणबेल्लोल आदि स्थानों में भी विद्यानन्द जी ने उल्लेखनीय कार्य किया है। वद्व मान जी के द्वारा सिंहकीर्ति देवेन्द्रकीर्ति विशालकीर्ति पद्य विद्यानन्द

(२५) ये चारो विद्यानन्द के 'सूनु' या 'तनय' कहे गये हैं। मालूम नहीं होता है कि उक्त ये विद्वान् विद्यानन्द के आत्मज और शिष्य दोनो थे या केवल शिष्य। शिष्य के लिये भी सूनु, तनय आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है अवश्य, फिर भी इन चारो विद्वानों के परिचय में आये हुए खास कर 'सूनु' 'तनय' इन शब्दों को देख कर इन्हे आत्मज और शिष्य दोनो अनुमान करना युक्ति-विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। इन चारो का सन्निह उल्लेख आगे कर दिया है। इस 'दशभक्त्यादिशास्त्र' में स्मरण किये गये देवरायक, कृष्णराय, अन्वुतराय, मल्लिराय, रामराय, रगराय नृसिंह, सगिराय, सदाशिव, पद्माम्बा और भैरवाम्बा आदि ये सभी व्यक्ति विजयनगर-राज-घराने के हैं।

डा० सालेतोर का कहना है कि साल्व मल्लिराय, देवराज, कृष्णराज और सगिराय ये चारो तोळव देशान्तर्गत सगीतपुर अर्थात् हाडुहळ्ळि के साल्व या साल्व-वश के हैं। सगीतपुर, वेणुपुर पव गेरुसोण्पे इन तीनो स्थानो में इनकी राजधानियां थीं। पर यह निश्चित-रूप से कहना कठिन है कि अमुक व्यक्ति अमुक स्थान में राज्य करता था। हाँ, सगिराय का लडका इदगरस सगीतपुर में ही राज्य करता था। नगरी राज्य का भी गेरुसोण्पे से सम्बन्ध था। देवराज और कृष्णराज से विद्यानन्द का साक्षात् सम्बन्ध था। पद्माम्बा देवराज की बहन तथा कृष्णराज की मां थी। उस समय गेरुसोण्पे पव सगीतपुर में भी तोळव देशके समान अलिऱ्कट्टु अर्थात् भगिना के मामा का उत्तराधिकारी होना यह प्रथा जारी थी। इसी से कृष्णराज को मामा देवराज का राज्य मिला था। भैरवाम्बा का विवाह पाण्ड्यराज से हुआ था। डा० सालेतोर विद्यानन्द का अस्तित्व ई० सन् १५०२ से १५३३ मानते हैं। परन्तु मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४६३ ई० सन् १५४१ में हुआ था।

ऊपर अन्यान्य परिचयात्मक पव प्रशसापरक पद्यो में ग्रन्थकर्ता के द्वारा स्मरण किये गये देवराय (ई० सन् १४२९—१४५७) से प्रणुत धर्मभूषण, विद्यानन्द के 'सूनुवर्य', वतीन्द्र, महादानी, निष्कलङ्क चारित्र के आराधक, कर्णाटक की ही राजसभाओं में नहीं, दिल्ली के सुल्तान महमूद के राजदरवार में भी बौद्धों को हरानेवाले पव नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञ भट्टारक

✽ राय और राज ये दोनो शब्द समानार्थक हैं, इसीलिये कोई 'राय' लिखता है और कोई 'राज'।

† यह दिल्ली के सुल्तान महमूद या मुहम्मद तुगलक होना चाहिये। मुसलमान बाद-शाहों में यह बहुत ही विद्वान् और योग्य शासक था। उसे हिन्दुओं की धर्म-मान्यताओं के प्रति भी सम्मान-भाव था। यह इस्लाम और अरस्तू के सिद्धान्तों का अच्छा जानकार था। उसे तत्त्ववेत्ताओं से वाद करने का भी व्यसन था। इसकी तर्कशक्ति देख कर अच्छे अच्छे तार्किक विद्वान् भी आश्चर्यित हो जाते थे। अत इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं, यदि सिद्धान्त

सिंहकीर्ति धार्वाङ्ग परमागमकोविद महातपस्वी सिकन्दर सुल्तानके द्वारा सम्मानप्राप्त महारक विशालकीर्ति, अपने ज्ञानबल से विद्यानगर (विजयनगर) के स्वामी विरूपाक्षराय (६० सन् १४६५—१४७५) की सभा में धार्वाङ्गों को जीतकर विजय पत्र को प्राप्त करनेवाले, अरगनगर के द्वायडनाथ (दायसराय) द्वायप्प' के दरबार में जैनधर्म के महत्व को प्रका

जी ने सुल्तान मुहम्मद तुगलक के दरबार में प्रसिद्धि प्राप्त की हो। दिल्ली के सुयोग्य सुल्तान के द्वारा निमन्त्रित किये गये तत्त्ववेत्ताओं में यह भी एक होंगे और इन्होंने सन् १३२६ एवं १३३० ई० के मध्य सम्मान प्राप्त किया था यह अनुमान करना निम्न नहीं कहा जा सकता। (देखें—'भास्कर' भाग ४, किरण ४, में प्रकाशित डा० सालेतोर का दिल्ली के सुल्तान और कर्नाटक के जैनगुरु शीर्षक लेख) पर एक बात है कि डा० सालेतोर 'पद्यावती-वस्ति' के शिलालेखनाथ पाठ को इस अर्थगत पाठ के समान रख कर इस पर फिर एक बार विचार करने का कष्ट उठाये। क्योंकि सिंहकीर्ति के परिचय को व्यक्त करनेवाले इस पद्य में कुछ शब्द ऐसे हैं जिन पर विचार करना अवशिष्ट है। प्रस्तुत ग्रन्थ के पद्य में 'महम्मद सुरिप्राण' शब्द स्पष्ट मिल रहा है जो कि उक्त शिलालेख में डा० सादव के कथनानुसार केवल 'मूद सुरिप्राण' पाया जाता है। साथ ही साथ शिलालेख में जहाँ 'बगाल्यदेशाश्रत' पाठ है यहाँ 'गंगाढ्यदेशाश्रत' है। इसका अतिरिक्त भी दोनों पाठों में और भी अन्तर है। उक्तका पाठ था है—'वामाति अश्वपलेडिने ततनयो बगाल्यदेशाश्रतभीमद्विह्लीपुरे मूवसुरि प्राणस्य माराकृते निर्जित्याश्रु सभावन्म जितगुरु पौद्वादिवादिब्रज श्रीमद्वारकसिंहकीर्ति मुनि य

शैक-विदा-गुरु (पद्यावती-वस्ति का शिलालेख)

"वामात्यश्वपलेडिनेशतनयो गंगाढ्यदेशाश्रत

श्रीमद्विह्लीपुरे महम्मदसुरिप्राणस्य माराकृते ।

निर्जित्याश्रु सभावन्म जितगुरु (जितगुरुओं) पौद्वादिवादिब्रजम्

श्रीमद्वारकसिंहकीर्तिमुनिराद् नाट्यैवविद्यागुरु ॥" (वशमकत्यादिशाल)

के यह सिकन्दर दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर सूर होना चाहिये। साथ ही साथ यह भी निश्चित है कि सन् १५५४ में जब सुल्तान सिकन्दर सूर दिल्ली का शासक हुआ संभव है कि इसी साल में विशालकीर्ति जी इसका दरबार में आये हों और सुल्तान ने इनका सत्कार किया हो। सिकन्दर का समय १४६८—१५५४ ई० है। विशय बात जो जानना चाह थे देखें—डा० सालेतोरक 'भास्कर' भाग ४, किरण ४ में प्रकाशित दिल्ली के सुल्तान और कर्नाटक के जैनगुरु।

। विजयनगर का दायसराय (द्वाडनाथक) गिरिनाथ का पुत्र दायप द्वाडनाथ था। यह अरग का शासक था। दायप मल्लिकार्जुन या इम्मडि दायय एव विजयनगर के दूसरे सम्राट् विरूपाक्ष के राज्यकाल में अरग का शासन करता था। (देखें भास्कर भा० ४, किरण ४)

करनेवाले एवं तत्रस्थ ब्राह्मणों से प्रजित, अञ्चुतराय (ई० सन् १५३०-१५४२) तथा मल्लिराय (ई० सन् १४५१-१४६५) से सम्मानित, आगमत्रयसर्वज्ञ, महाकवि, विविधो-पन्यासविवक्षणा, कार्कळ के पारग्वरारज के द्वारा समर्पित तथा विद्यानन्द के पुत्र भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति, विद्यानन्द स्वामी के सधर्मा, पोम्बुच्च मे पार्श्वनाथमन्दिर को बनवा कर बड़े समारोह से प्रतिष्ठा करानेवाले नेमिचन्द्र, विद्धन्ध, सभी शाखों के ज्ञाता और महावादी, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्त्ति, विशालकीर्त्ति के सधर्मा अनेक गुणभूषित अमरकीर्त्ति, शास्त्रधुरन्धर, विद्यानन्द के पुत्र विद्यानन्दमुनीश्वर, वकापुर म नृप मादन पल्लव के मदनोन्मत्त प्रधान गजेन्द्र को अपने तपोबल से शान्त करनेवाले, स्याह्लादमर्मज्ञ एवं राजशिरोमणि देवराय (ई० सन् १४२९-१४५१) से बन्ध अकलङ्क, इनके सधर्मा तर्कव्याकरणदि शास्त्रों के पारगामी चन्द्रप्रभदेव, सर्वगुणालङ्कृत जयकीर्त्ति, जनता के लिये कल्पवृक्ष-तुल्य अकलक-तनय विजयकीर्त्ति, अनेक धर्मप्रभावना-सम्बन्धी कार्य करनेवाले, अरुलंक के शिष्य विमल-कीर्त्ति, महातपस्वी एवं अरुलकपद्म-प्रिय पालयकीर्त्ति, विद्वयी समुज्ज्वलगुणसम्पन्ना, चारित्रवती आर्यिका चन्द्रमती,संगीतपुर (हाडुहळिळ) में अनन्तनाथ स्वामी का सुरम्य एवं भव्य चैत्यालय को बनवा कर शास्त्रीय विधि में प्रतिष्ठा करनेवाले, अन्यान्य राजाओं से प्रजित, देशीयगण के योगिराज एवं चन्द्रप्रभतनुज नेमिचन्द्र, श्रीरगपट्टण में बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों से अलङ्कृत राजसभा में अपनी धारावाही एवं अजेय वाणी के द्वारा वाद्वि-वृन्द को जीतनेवाले, महातपस्वी, देशीयगण के नाथरु एवं ऋषि-शिरोमणि विजयकीर्त्ति, होयसल-राज्य-सस्थापक तथा इस राज-वंश को व्रत और विद्या प्रदान करनेवाले वर्द्धमान, मालवपति-बन्धु* आशाधर, काशीपतिनत कमलभद्र, पेनगोडे के नरसिंहराय से सम्मानित लक्ष्मीमेन, मालवेन्द्र को सभा में बौद्धों को पराजित करनेवाले और पैगुड्डीपादि-बन्धु मतिसागर†, साल्वराज-द्वारा प्रजित, त्रैविद्यचक्रेश्वर श्रुतकीर्त्ति, मन्त्रवादीश्वर एवं चलालराय-सम्मानित चावकीर्त्ति, राजा जयकेशरी के मदनोन्मत्त हाथी को शान्त करनेवाले माधवचन्द्र, कार्णूर्गण के प्रधान, जावाल्लिपुर के राजा से सम्मानित रामचन्द्र, चन्द्रगुप्तिपुर के शासक, चन्द्रगुप्त के द्वारा अर्द्धित* महर्द्धिक मुनिचन्द्र, केरलाधीश-सम्मानित देवकीर्त्ति,

‡ दिल्ली के बादशाह के दरबार में जाकर शास्त्रार्थ-द्वारा विजय प्राप्त करनेवाले उल्लिखित विशालकीर्त्ति से यह भिन्न हैं या वही हैं, विचारणीय है। क्योंकि वर्द्धमानजी ने कई व्यक्तियों के नाम अनेक बार स्मरण किये हैं।

† यह मालवपति परमारवंश के प्रतापी राजा विन्ध्यवर्म थे।

‡ यह प्राय वादिराज के गुरु हैं।

* पता नहीं लगता कि यह कौन सा चन्द्रगुप्तिपुर है।

मालवेन्द्र से सेवित प्राणिक्यनन्दी, मन्त्रवादिपितामह गण्डविमुक्त, अनेक राजाओं से अर्चित अमयचन्द्र देवप्यार के पुत्र अमयचन्द्र सूरि के शिष्य पद्य विजयनगर के देवराय सम्मानित नैमिचन्द्र विजयनगर के देवराय के ख्याति प्राप्त आस्थान-कवि भेम्मडि भद्र नरसिंहनृपति-द्वारा प्रशस्ति पण्डितार्य कल्याणनाथ के पुत्र साख्य महाराज के आस्थान विद्वान् अमयचन्द्र सूरि, मल्लिराय के हृदयरूपी कमल को विकसित करनेवाले आदिनाथ, वेणुपुर के भर्षा के द्वारा अर्चित तं लयाधीश-धन्य समतमद्र अनेक गुणालंकृत साख्य मल्लिराय के शास्त्र विद्यागुरु देवरस सूरि इनके पुत्र अनेक गुणभूषित साख्यदेवराय के आस्थान रत्न पद्य विद्यानन्द के शिष्य बोम्मरस आदि आचार्य, कवि विद्वान् तथा विदुषियाँ, देवराय, कृष्णराय, रामराय, कृष्णराय के भाई रगराय के पुत्र पद्य नृसिंह के नाती स्वशिशु, पायल्यराज की महिषी जिनमक्ता भैरवाम्बा सगिराय की भगिनी पद्माम्बा माधुनायक के पुत्र और सगीतनगर (हाडुहळिल्ल) में ब्रह्मि श्रेष्ठी के द्वारा निर्मापित जिनालय को साधन से आच्छादित करनेवाले सालुब नायक जिन मन्दिर निर्माता कामयण्य और देवरस, महान् धीर पद्य गुणगणालंकृत होन्नय नायक, सम्यक्त्यचूडामणि, सालुब कृष्णदेव राय मे सम्पत्ति को पानेवाले तथा नीति निपुण हैदण नायक विद्वानों के लिये कव्यतरु-तुल्य और कृष्णदेवराय के दक्षिण हस्त तिमम नायक बेलगावे के शासक महाप्रभु लुम्पण आदि राजा महाराज, सामन्त पद्य राज महिषियाँ विद्यानन्द के निकट दशनशास्त्र को अभ्यस्य करनेवाले सगीतपुर के सालुवेन्द्र भूपाल के आस्थान भूषण, वैयाकरण और महावादी मन्त्री चेतरस प्रधानतिलक, देवराय के दुगपति से सम्मानित सुकवि तथा श्रुत कीर्ति के शिष्य मन्त्री जैतरस, सौजन्यरत्नाकर, मन्त्रितिलक नागरस विद्वग्य शासक के द्वारा रचित मंत्री देवरस, मल्लिकाजुन राय के महामन्त्री मल्लय नायक, सत्यवादी, सालुब मल्लिराय के मन्त्रिप्रवर पद्य धीर नृसिंहराय के द्वारा प्राप्त भाग्यवैभय सङ्करस चैन्नराय पट्टण सम्बन्धी रा'पलक्ष्मी के सम्बद्ध क तथा मन्त्रिश्रेष्ठ नैमिचन्द्र, अमचवादिपत्तन (?) मुकुन्द, महान् धीर, अभात्यश्रेष्ठ गुम्पय राजसभाओं में सम्मानित बोम्मरस के लघुप्राता सामभूपाल के मन्त्रितिलक देशरम त्रायुर्वेद विशारद धीरपृथ्वीश सच्चिद घण्टि पण्डित, मन्त्रिश्रेष्ठ पद्मण्य श्रेष्ठी, रामराज के अभात्य सरणमरि नायक, देवि श्रेष्ठी के पुत्र चैन्ना श्रेष्ठी के भक्त पद्य महापराक्रम मन्त्रीश तिम्मि श्रेष्ठी कीर्तिशाली, लोकविख्यात पद्य धरणीश प्रदत्त सौभाग्य द्यडनाथ वैचल्य, करणिक तिलक आदिनाथ आदि मन्त्री महामन्त्री, द्यडनायक करणिक विजयनगर पद्य तं लयशासक के द्वारा सम्मानित, धीरसेन और मुनि विद्यानन्द के चरणसेरक विद्वत्मेव्य पद्य विद्वानों के आध्ययदाता, चतुरग-दत्त, साहित्य-कौविद पद्य नकसाला क अथन वीरमि श्रेष्ठी, देवराय की समा म श्रेष्ठि-पद्य को सुशोभित

करनेवाले, विख्यात दानी और धर्मभूषण के शिष्य सङ्कल्प, विजयकीर्ति के पादाराधक, कुवेरसद्वज्र अतुल पेश्वर्यशाली तथा अनेक सुपादों के पोषक पायप्प श्रेष्ठी, नेमिचन्द्र को व्रतगुरु एवं विद्यानन्द को शिन्नागुरु माननेवाले नागप्प श्रेष्ठी और इनके पिता तम्मराण श्रेष्ठी, आगुर्वेद-मर्मज्ञ, देवेन्द्र के अनुज, नजराय नृप से अतुल पेश्वर्य को पानेवाले, पण्डित देवरस के पुत्र एवं गोविन्दराज-गणसित विजयप्प, चेल श्रेष्ठी की दौहित्री, नेमिनाथ चैत्यालय के नामने लहमानस्तम्भ बनवानेवाली देवरसी, वणिक्प्रवर, महादानी, दुग्गूळ में जिनमन्दिर बनवाने वाले बोम्मण श्रेष्ठी पायि श्रेष्ठी के पुत्र वेश्यातटाक (?) एवं पोम्बुच्च में पंचत्रस्ति निर्माण करानेवाले पायराण, सालुव मल्लिराण के शास्त्र-विद्यागुरु, साहित्य-विद्या पर देवरस तथा विजया के पुत्र, सालुव देवराय के आस्थान-कवि और विद्यानन्दि-शिष्य बोम्मरस आदि विख्यात श्रेष्ठी एवं श्रेष्ठि-महिलार्यें विशेष उल्लेखनीय हैं ।

(३६) ग्रन्थ नं० २५५
ख

सारसंग्रह

कर्त्ता—विजयराण उपाध्याय

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इंच

चौड़ाई ६ ॥ ३ इंच

पगसख्या २३८

प्राथमिक भाग—

श्रीमच्चतुर्निकायाभरखचरवर नृत्यसंगीतकीर्तिम्
-न्यासा.... ..गाल सुरपटहादिसत्प्रातीहायंम्
नत्वा श्रीवीरनाथं भुवि सकलजनारोग्यसिद्धयै समस्तै-
रायुर्वेदोक्तसारैरिहममल(?) महासग्रह संल्लिखामि ॥

x

x

x

० प्य भाग—

अथातः सप्रवक्ष्यामि तिर्थोपश्रवमुत्तमम् ।

प्रथमार्यां तिर्थो व्याधिकल्पप्रश्नेत्तदाहत्. ॥

अग्निस्तु देवता तत्र तरङ्गुलेन बलि इयेत् ।
 आग्नेय्यां दिशि मध्याह्ने रोगनाशो भविष्यति ॥
 द्वितीयायां तिथौ व्याघिवर्तते दशराजक ।
 गन्धमाह्वयबलिं वृषादेव वैद्यस्तु देयते (?) ॥

× × ×

अंतिम भाग—

प्रमेहविशतिप्रदराप्रयत्नं पित्तान्तक कामिलपाण्डुनाशम् ।
 श्वेध्यानुकूले (?) तदसेभ्यपथ्य श्रीपूज्यपादप्रभुभाषितञ्च ॥

यह ग्रन्थ राजकीय प्राच्य पुस्तकागार मैसूर से लिपिबद्ध कराया गया है। वहाँ की मुद्रित ग्रन्थ तालिका में ग्रन्थ का नाम 'अकलक-सहिता' और कर्ता का नाम अकलक भट्ट लिखा मिलता है। अतः लेखक ने भी भवन की प्रति में अकलक सहिता एवं अकलक भट्ट ही क्रमशः लिख छोड़ा है। पर इसका कोई आधार नज़र नहीं आता। 'नम श्रीवज्रमानाय निधूतकलिलात्मने। कल्याणकारकी प्रथ' पूज्यपादेन भाषित ॥ सध लोकोपकारार्थं कथ्यते सारसग्रह ॥ 'श्रीमद्भाग्यसुधृताविविमलश्रीवैद्यशास्त्रार्णव मास्यत् सुसारसग्रहमहावामान्विते समग्रहे। रत्नरत्न रूपलाव्य सद्भिजयणोपाध्याय सन्निमित्ते ग्रन्थेऽस्मिन् मधुपाकसारनिचये पूर्णो भवेन्मङ्गलम् ॥' बल्कि ग्रन्थगत इन पद्यों से ज्ञात होता है कि इसका नाम सारसग्रह है। आयुर्वेदाचार्य श्रीयुक्त १० विमलकुमार जैन का भी कहना है कि पुन्देखण्ड में भी इसको एक-दो प्रतियाँ मुझे हृष्टिगोचर हुए हैं और उन प्रतियों में इसका नाम सारसग्रह ही मिलता है। बल्कि उन्होंने इस ग्रन्थ को आद्योपान्त देखकर बतलाया है कि इसमें पृष्ठ १ से ५ तक समन्तभद्र के रसप्रकरण सम्बन्धी कुछ पद्य, पृष्ठ ६ से ३२ तक पूज्यपादोक्त रस, चूर्ण गुम्फिकादि कुछ उपयोगी प्रयोग पद्य पृष्ठ ३३ से श्रीगोमटदेव के मेरुपण्डित-सम्बन्धी ग्रन्थ की नाडी परीक्षा पद्य अथवा निदानादि कुछ भाग हैं। इनके अतिरिक्त भिन्न भिन्न प्रकरण में सुधृत, वाग्मद, हरीतमुनि पद्य रुद्रदेव आदि वैद्योचार्यों के भी मत मिलते हैं। पृष्ठ ३ के ऊपर उद्धृत प्रथम श्लोक का पूर्वाखं आचार्य समन्तभद्र के रत्नरत्न-आवकाचार सम्बन्धी मंगलाचरण के पद्य का ही पूर्वाखं है। केवल उक्तार्थ इस ग्रन्थ के समग्रहकर्ता विजयवर्ण का है।

यह भवन की प्रस्तुत प्रति बड़ी ही अशुद्ध है। इस की शुद्ध प्रति खोज कर प्रकाश में लाने की जरूरत है। साथ ही साथ समन्तभद्र, पूज्यपाद एवं गोमन्देव के मौलिक वैद्यक ग्रन्थों का अध्ययन करने की परमावश्यकता है। बल्कि कम से कम यत्न-तत्न प्राप्त होनाले इन आचार्यजनों के पद्यों को मण्डित कर अनुवाद के माध्यम से शुद्ध

एव सुन्दर रूप मे प्रकाशित करने की ओर जैन वैद्यो का ध्यान अवश्य आकृष्ट होना चाहिये । भवन की प्रति इस समय मेरे सामने नहीं है । भवन की यह प्रति भवन की ओर से 'भास्कर' मे क्रमश प्रकाशित 'द्वैघसार' में इस ग्रन्थगत पूज्यपाद के प्रयोगो को सकलित कर देने के लिये उक्त वैद्यसार-संग्रह के सम्पादक के पास भेज दी गयी है । इसी से इस पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सका ।

(४०) ग्रन्थ नं० $\frac{२५६}{१६}$

हरिवंशपुराण

कर्ता—श्रुतकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—अपभ्रंश

लम्बाई १३। इञ्च

चौड़ाई ८। इञ्च

प्रारम्भिक भाग—

ससिद्धणवोमसइ ते हरिवसइ पावतिमिरहा विमलयरि गुणगणजसभूसिय
सिया सुव्यखेमिय हलिय हारि ॥३॥ सुरवइतिरोडरयण ॥ २ ॥ ५५ ॥ १६ ॥
पणविवि त परमजिण हरिवसकयत्तणं बुद्धे । हरिवसु पयोरुहु अइरवणु इह भरह-
खित्तसरवरउवणु, तह णालुसुकुलणिवणियरत्तुगु त ठियउ मणोहरु भाइ चगु, तहकणिय-
सउणयणिवदसार कुसुमसरपमुहकेसरिकुमार, पडवजायवभोजयणरेसा ते पत्तमणोहरणिरव
सेसा, जरसिद्ध दुवणु तहु णिसिसमाणु कोवगिहेमु जमरइमाणु, तं णेमिहलीहरि-
किरउजोय, सोविलयपत्तु इहमन्वलोय, परसंताविरु पुणु अवरुजाइ धरयद्वियरावणयमुहराइ,
हरिवसु कमलु वियसिउ विसेसा तहु कित्तिसुरहिअलिमहियारेसा, दुक्किय सोइह सेविज्जमाणु
णिसि सामिउ ज उडगणसमाणु, तहु कित्तण महु उल्लसइ चित्तु सकमिदायारहुसुद्धचित्तु,
पारभमि जइ हारवसु अज्ज णिद्धण कह हति अभिदुकज्ज, जइ महु पसियतु तिलोयणाह
रिसहाइवीर असरणसणाह ॥ घत्ता ॥ ठियणतचउट्टहु महुमइ भट्टहु देहु सुमइ पहु णित्थरमि
सरसइ सुपसायइ मणि अणुरायइ जिमि हारवसु पवित्थरमि ॥

×

×

×

×

इय हरिवंशपुराणे मयाहरेसरायपुरिसगुणालंकारकलाणे तिहुवणाकित्तिसिस्सअण्य-
सुदसुदकित्तिसि महाकवु विरयतो गाम सह तालिसतिमो संधिपरिच्छेओ समत्तो ॥

निब्रनियरुत्तुरद्वो जयसिरिधम्मगुराउ मणिहिद्वो नदउ जणावउपवरो सुहसंपइदाण-
कण्णयरो ॥१॥ चउविहमुग्गिगगासहिओ नदउ सिरिन्दिसघु सुरमहिओ नंदउ जयसिरिजुत्तो
सावयगणु धम्मअणुरत्तो ॥२॥ हरिवसगयणाचदो जह दंसणसयलभुवणा आणादो
तयलोयसुजसुपवरो नेमिजिणो भवियदुरियहरो ॥३॥ रिसहु अजिउ सभउ जिणंदु
अभिणंदणु सामिउ सुमतिपहमुपहु पुणु सुपासु ससिपहुसिवगामिउ सुविहु सुतीयलु
पुणु सिणंसु वसुपुज्जु गुणोहरु विमल गांतु पुणु धरमसतिसजुयडं कुथु अरु मल्लिसुसुच्चउ
नमिसुनेमिजिणु पासु पहाराइ वीरसहियभवियणाहु दैति सिरिसति समाणाइं । सिद्धि
सवत् १५५३ वर्षेकरवदि २ द्दजगुरौ दिने अद्ये ह श्रीमण्डपाचलगढदुर्गे सुलितान गयासदीन
राज्ये प्रवर्तमाने श्रीदमोवादेसे महाखानभोजखानवर्तमाने जेरहटस्थाने सोनीश्रीईसुरप्रवर्तमाने
श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेव
तस्य शिष्य मण्डलाचार्यदेविदकीर्त्तिदेव तच्छिष्य मण्डलाचार्य श्रीत्रिभुवनकीर्त्तिदेवान् तस्य
शिष्य श्रुतकीर्त्ति इदं हरिवंशपुराणं परिपूर्णं कृतम् । भव्यजनपठनार्थं ज्ञानावरणकर्मक्षयार्थं
श्रीपार्ष्वनाथचैत्यालये श्रीचतुर्विंशतितीर्थकरं परमभक्त्या प्रणम्य तथा श्रुतगुरुभक्तिपूर्वक
नमस्कृत्य ग्रन्थस्य अविघ्नसमाप्तिनिमित्तम् ।

इस हरिवंशपुराण के रचयिता यश कीर्त्ति ने अपने को श्रीमूलसंघ, बलात्कारगण
एवं सरस्वतीगच्छ के प्रात स्मरणोय आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा में बतलाया है । आप
के प्रगुरु मण्डलाचार्य देवेन्द्रकीर्त्ति और गुरु मण्डलाचार्य भुवनकीर्त्ति हैं । कुछ विद्वानों
का खयाल है कि धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार यशकीर्त्ति और आप एक ही हैं । परन्तु
यह धारणा भ्रान्त है । क्योंकि धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार यशकीर्त्ति ललितकीर्त्ति
के शिष्य हैं, आप भुवनकीर्त्ति के ।

इस ग्रन्थ के अन्त में दो प्रशस्तियाँ दी गयी हैं । पहली अपभ्रंश भाषा में एवं दूसरी
संस्कृत में । पहली प्रशस्ति में लिखा है कि यह ग्रन्थ वि० सं० १५५२ माघकृष्ण पञ्चमी
शोमवार मालवदेशान्तर्गत मण्डवगड में, शाहि गयासुदीन के शासन-काल में जेरहट नगर
में समाप्त हुआ । दूसरी प्रशस्ति में लिखा है कि सिद्धि सवत् १५५३ आश्विन कृष्ण
द्वितीय को मण्डपाचलगढ दुर्ग में, सुलतान गयासुदीन के राज्यकाल में, दमोवादेश में,
महाखान-भोजखान की मौजूदगी में जेरहट नगर के पार्ष्वनाथ जिनालय में यह ग्रन्थ परिपूर्ण

* अपभ्रंश-प्रशस्ति में नन्दिसव लिखा हुआ है ।

हुआ। समझ में नहीं आता है कि इन प्रशस्तियों में प्रथम समाप्त के काल के सम्बन्ध में ऐसा मतभेद क्या हुआ? यह गणक का भाव भूत नहीं माना जा सकता। क्योंकि दोनों सम्बन्धों में माम, तिथि आदि भा भिन्न भिन्न द्वा गया है। क्या इनमें म मं० १५५२ की प्रथम-प्रारम्भकाल पूर्व म १५५३ का प्रथम समाप्ति-का मन्त्र भा मन्त्रता है? अगर प्रशस्तिया से स्पष्टता इन बातों का सूचना नहीं मिलता है। ऐसा अवस्था में इसका निश्चय और और प्रतियोगी की हानि बान नहीं किया जा सकता। साथ ही साथ इस बात का भी पता लगाना है कि जगद्वर का वर्तमान नाम क्या है और पहला प्रशस्ति में माल्यवेण और दूसरा प्रशस्ति में वमाया का क्या किया गया। सुना है कि वर्तमान सागर जिला में भा जगद्वर नामक एक प्राचीन स्थान है। मगधगड या मगधपाचलगड वर्तमान मैराड राज्यांतगत 'माल्यगड का किंग' ही मान्य होता है। चाहे या सुन्तान गायमुद्दान भी दिल्ली की शाह गायम उद्दीन ही प्राप्त होता है जो कि १५ वीं शताब्दी में गुजरात में शासन करता था। क्योंकि अजमेर पर मुसलमानों का अधिकार होने पर यह किला भी उनके हस्तगत हो गया था।

दूसरी शुद्ध प्रति मिलने पर समझ है कि इन दो प्रशस्तियों की बातों पर मैं कुछ विशेष प्रकाश डाल सकू। मगध का यह प्रति बहुत अशुद्ध है। दिग्गम्बर जैन प्रथमकाल और उनके प्रथम इस प्रथम-सालिका में निम्नलिखित प्रथम भी हरिंशपुत्राण (प्राकृत) के कर्त्ता यश कीर्ति के वर्तलाये गये हैं —

(१) पाण्डवपुत्राण (प्राकृत) (२) गौतमचरित (३) प्रबोधसार (४) जगत्सुन्दरी (५) शृङ्गारार्णवचन्द्रिका (६) धावकाचार (७) धमशर्माभ्युदय की टीका (८) प्रद्युम्नकाव्य की टीका। परन्तु इनमें जगत्सुन्दरी शृङ्गारार्णवचन्द्रिका पां धमशर्माभ्युदय की टीका तो इनकी है ही नहीं। क्योंकि जगत्सुन्दरी के कर्त्ता यश कीर्ति विमलकीर्ति के शिष्य हैं*। शृङ्गारार्णवचन्द्रिका के कर्त्ता विजयवर्षी हैं†, न कि यश कीर्ति। धमशर्माभ्युदय के टीकाकार ललितकीर्ति के शिष्य हैं—यह बात ऊपर लिख चुका है। गौतमचरित एक प्रकाशित हो चुका है। पर इसके कर्त्ता धमचन्द्र हैं। शोलापुर से एक प्रबोधसार भी प्रकाशित हो गया है, इसके कर्त्ता महापण्डित यश कीर्ति वर्तलाये गये हैं। प्रशस्ति नहीं होने से यह कहना कठिन है कि यह यश कीर्ति यही हैं या दूसरे। इसी प्रकार शेष कृतियों को भी बिना देखे इन्हीं का कहना ठीक नहीं है।

* देखें—'अनेकान्त' पृ २, किरण १२ पृष्ठ १५६।

† देखें—'प्रशस्तिप्रकाश' पृष्ठ ७३।

रामपुराण

कर्त्ता—सोमसेन

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इञ्च

चौडाई ७ इञ्च

पत्रसंख्या २४६

प्रारम्भिक भाग—

वन्देऽहं सुव्रत देवं पञ्चकल्याणनायकम् ।
देवदेवादिभिः सेव्यं भव्यवृन्दसुखप्रदम् ॥१॥
शेषान् सिद्धान् जिनान् सूरीन् पाठकान् साधुसंयुतान् ।
नत्वा वरुणे हि पद्मस्य पुराण गुणसागरम् ॥२॥
वन्दे वृषभसेनादीन् गणाधीशान् यतीश्वरान् ।
द्वादशाङ्ग श्रुत यैश्च कृतं मत्तस्य हेतवे ॥३॥
वन्दे समन्तभद्रान्त श्रुतसागरपारगम् ।
भविष्यत्समये योऽत्र तीर्थनाथो भविष्यति ॥४॥
कुन्दकुन्दं मुनिं वन्दे चतुरं गुणाचारणम् ।
कल्किकाले कृत येन वात्सल्यं सर्वजन्तुषु ॥५॥
आचार्यं जिनसेनाख्यं वन्दे ग्रन्थस्य सिद्धये ।
सिद्धान्तत्रयकर्त्तारं मोक्षमार्गोपदेशकम् ॥६॥
पूज्यपादप्रभाचन्द्राकलंकादीन् यतीश्वरान् ।
नमामि धर्मतीर्थस्य कर्त्तृन् प्राणिहितङ्करान् ॥७॥
रविपेण महाचार्यं वन्दे शास्त्राब्धिपारगम् ।
यत्प्रसादात्करोम्यत्र पुराण रामसंज्ञकम् ॥८॥
गुणामद्र यतिं वन्दे सर्वजीवदयापरम् ।
महापुराणकर्त्तारं ज्ञातारं सर्वसच्चिदम् (?) ॥९॥
चाक्कीत्तिमुनीन्द्रं च वन्दे श्रेष्ठार्थसिद्धिदम् ।
समाधिशीलस्सम्पन्नं हिताहितोपदेशकम् ॥१०॥

यन्देऽहं भानुसुन्यात्प्य विरालं योगमुत्तिदम् ।
 सप्तशतमुनीन्द्रैश्च सद्यपावद्भ्य योऽमघत् ॥११॥
 महेन्द्रकीर्तियोगीन्द्रौ नमामि कल्पिधारयौ ।
 ययौ पादान् प्रसेयेन्त यत्याद्रिनरपुणया ।
 सरस्वतीं नमाम्यादौ जिनेन्द्रमुत्तसमधाम् ।
 द्वादशाङ्गस्फुच्छन्त्रां मोक्षस्थानसुप्रभवाम् ॥१३॥

× × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ १२५, पक्ति ५) —

धनुर्मसिऽथवा ताते गते श्यम्राद्विद्विह्वर ।
 सर्म गंतु समुद्य क हृष्या यज्ञो घटत्यरम् ॥१॥
 सन्तर्धं देव किञ्चिद्यायिनयाद् दुष्टत मया ।
 मथाहशां नराणाञ्च (?) क शनोतीह सेवितुम् ॥२॥
 ततो जगाद् रामोऽपि नञ्जीभूत सुराधिपम् ।
 यत्परधमस्मारु सन्तर्ध्य च त्वया सुर ॥३॥
 इति ध्वनमाकण्य सन्तुष्टो यज्ञनायकः ।
 नत्वा स्तुत्या च त रामं पूजतिस्म सुभक्तित ॥४॥
 स्वय प्रमामिध हार हृदौ रामाय समद् ।
 कुण्डले लक्ष्मणाय द्वे शशिसूयसमप्रभे ॥५॥

× × ×

अन्तिम भाग :—

विक्रमस्य गते शाके षोडशशतवर्षके ।
 पदपञ्चाशत्समायुक्ते मासे श्रावणिके तथा ॥
 शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां बुधवारे ह्युभे दिने ।
 निष्पन्न चरित रम्य रामचन्द्रस्य पावनम् ॥
 महेन्द्रकीर्तियोगीन्द्रप्रसादाद्य कृत मया ।
 सोमसेनेन रामस्य चरित पुण्यहेतवे ॥
 यदुक्त रविपेक्षेन पुरार्ण विस्तराद्भरम् ।
 तदेवान्न च सद्गुण्य यत्किञ्चित्कथितं मया ॥
 गर्वशा न कृत शास्त्र नापि कीर्त्तिकलाप्तये ।
 केवलं पुण्यहेतुर्थं स्तुता रामगुणा मया ॥

नाह जानामि शास्त्राणि न ह्यन्धो न च काव्यरुम ।
 तथापि च विनोदेन कृतं रामपुराणरुम ॥
 ये सन्ति सुधियो लोके प्रोध्यन्तु च ते मम ।
 शास्त्रं परोपकाराय यत्कृतं ब्रह्मणा भुवि ॥
 कथामात्रस्य पद्मस्य वर्तते वर्णनां विना ।
 अस्मिन् ग्रन्थे तु भो भवथा शृण्वन्तु सावधानतः ॥
 रविपेणाकृते ग्रन्थे कथा यावत्प्रवर्तते ।
 तावच्च सकलान्नापि वर्तते वर्णनां विना ॥
 विस्ताररुचय शिष्याः ये सन्ति शुद्धमानसाः ।
 ते शृण्वन्तु पुराणं हि रविपेणस्य निर्मितम् ॥
 रविपे विषये रम्ये जित्वरं नगरे वरे ।
 मन्दिरे पार्श्वनाथस्य सिद्धो ग्रन्थ शुभे दिने ॥
 सेनगणोऽति विख्याते गुणभद्रोऽभवन्मुनि ।
 पट्टे तस्यैव सजात सोमसेनो यतीश्वरः ॥
 तेनेव निर्मित शास्त्रं रामदेवस्य भक्ति ।
 तस्य निर्वाणहेत्वर्थं सत्पेण महात्मना ॥
 यस्मिन्निद्र पुरे शास्त्रं शृण्वन्ति च पठन्ति च ।
 तत्र सर्वं सुखं क्षेम पर भवति मद्भूमम् ॥
 धर्माह्वयान्ते शिवसौख्यसम्पद स्वर्गादिराज्यानि भवति धर्मात् ।
 तस्मात्कुरुष्व जिनधर्ममैरु विहाय पाप नरकादिभारकम् ।
 सेनगणे यतिपरमपवित्रे वृषभसेनगणधरस्तु वजे ।
 परिडितवर्गसुखरुस्तु जात सोमसुसेनयतिश्वरमुख्यः ॥
 श्रीमूलसंघे वरपुष्कराख्ये गच्छे सुजातो गुणभद्रसूरिः ।
 पट्टे च तस्यैव सुसोमसेनो भट्टारकोऽभूद्विदुषां शिरोमणिः ॥

इति श्रीरामपुराणे भट्टारकश्रीसोमसेनविरचिते रामस्वामिनो निर्वाणवर्णनो नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽधिकारः ।

प्रशस्ति से सिद्ध होता है कि इस रामपुराण के रचयिता भट्टारक सोमसेन ने इस ग्रन्थ को विक्रम संवत् १६५६ श्रावण शुक्ल त्रयोदशी बुधवार को समाप्त किया था । सम्भवत आप के गुरु महेश्वरकीर्ति और योगीन्द्र थे । यह बात प्रारंभिक भाग के १२ वें पृष्ठ

अन्तिम भाग के तीसरे श्लोक से स्पष्ट होती है। किन्तु प्रस्तुत महद्भक्तोक्ति सम्वत् १९९२ तथा सवत् १८५२ वाले महेन्द्रकीर्तिद्वय स भिन्न हैं। मालूम नहीं होता कि यह महेन्द्रकीर्ति कौन है। साथ ही साथ उल्लिखित योगीन्द्र का भी पता नहीं लगता। पर्योकि अभी तक इनकी कोई साहित्यिक कृति मेरे दृष्टिगोचर नहीं हुई है। प्रारम्भ एव धातु म सोमसेन ने लिखा है कि मैंने यह रामपुराण रचियेणाचाय-कृत पद्यपुराण के आधार पर बनाया है। साथ ही साथ यह भी बताया है कि मैंने पद्यपुराण के वर्णन भाग को छोड़कर के केवल उसके कथा भाग का ही आश्रय लिया है।

इस ग्रन्थ की समाप्ति प्रयेता ने रचिये (१) देशान्तर्गत जिररर नगर के पार्श्ववार्ध नाम्बर में की है। पर पता नहीं लगता है कि रचिये देश एव जिररर नगर वर्तमानकालीन किस प्रान्त या स्थान का नाम है। बल्कि 'रचिये यह नाम अशुद्ध झट होता है। दूसरी प्रति में इसका प्रकृत पता लगाना परमावश्यक है। 'दिगम्बर जैन ग्रन्थ-कर्ता और उनके ग्रन्थ' इस ग्रन्थ सूची से रामपुराण के रचयिता सोमसेन के निम्नलिखित ग्रन्थों का भी पता लगता है —

(१) स्थायिद्वय होमपूजा (२) शुद्धपञ्चम्युद्यापन (३) प्रथमचरित (४) सप्तविंशतपूजा (५) मत्कामरोद्यापन (६) यशोधरचरित (७) त्रिषर्णाचार (८) दशलक्षणपूजाविधान (९) कर्म बहन व्याख्यान (१०) लघुशान्ति। ये सभी ग्रन्थ इन्हीं की कृतियाँ हैं या कतिपय इस धातु का निर्याय सभी ग्रन्थों के अवलोकन से ही किया जा सकता है। बल्कि प्रथमचरित के कर्ता सोमसेन (वि० स० १६२५ लगभग) काष्ठासधी थे। परन्तु इस रामपुराण के रचयिता सोमसेन अपने को मूलसद्य पुष्करगच्छ एवं सेनगण के सुविख्यात आचार्य शुभभद्र के पदधर बतलाते हैं। साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ साधारण धेयो का है। पर्योकि इसके संस्कृत में कोई साहित्यिक छाना नहीं दिखती है।

रत्नत्रयोद्यापनपूजा

कर्त्ता—भट्टारक विश्वभूषण

विषय—पूजा

भाषा—संस्कृत

चौडाई ८ इञ्च

लम्बाई १० इञ्च

पत्रसंख्या ३२

प्रारम्भिक भाग—

श्रीवर्द्धमानमानम्य गौतमार्दींश्च सद्गुरुन् ।
रत्नत्रयविधिं वक्ष्ये यथाम्नाथं विमुक्तये ॥१॥
परमेष्ठी परंज्योतिं परमात्मा जगद्गुरुः ।
ज्ञानमूर्त्तिरमूर्त्तोऽपि भूयान्नो भवशान्तये ॥२॥
निर्विकल्पं निराबाधं शाश्वदानन्दमन्दिरम् ।
तोष्टुवीमि चिदात्मान स्वस्वरूपोपलब्धये ॥३॥
यस्य ज्ञानान्तरिक्षैकदेशे सर्वं जगत्त्रयम् ।
एकमृत्तमिवाभाति तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥४॥
अनन्तानन्तसंसारपारावारैकतारकम् ।
परमात्मानमव्यक्त ध्यायाभ्यहमनारतम् ॥५॥
अनन्यशरणीभूयास्तद्गुणग्रामलब्धये ।
स्फुरत्समरसीभाबमितोऽहं चिद्ब्रह्मं स्तुवे ॥६॥

x x x

मध्य भाग (परपृष्ठ २०, पक्ति ४)—

यत्सत्त्वसन्तानविचित्रमैतत्त्रैलोक्यमण्याशु वशीकरोति ।
वात्सल्यमात्मोदयकारणं तत् सुदर्शनांगं हृदये ममास्ताम् ।
ॐ ह्रीं वात्सल्यांगाय नमः ।
सम्यक्त्वभावेन सुदृष्टिजातं शान्त्यष्टकं स्तोत्रं(?) विधाय यत्न ।
वात्सल्यतां प्राह मनीषिकीभि रसालहृदयैः प्रयजामि साधुम् ॥
ॐ ह्रीं पूज्यपादकं (?) वात्सल्यांगाय जलम् ।

पराक्षगिन निरूपित यत् ह्यरुम्पनेनापि प्रकाशित च ।
 तत्प्राचयामि सर्वकं रसालं मुनीन्द्रग्रन्थ गतरुमपं यत् ॥
 ॐ ह्रीं भरुम्पनात्रायप्रकाशितकाङ्गाद्गतात्मशंगाय जलम् ।
 सातर्द्धेन प्रर्षाणि चतुश्च प्रकाशितम् ।
 तद्वात्सल्यमुधैर्ज्ञानं खडुजैः सयजे फलैः ॥
 ॐ ह्रीं चतुर्वाद्यासन्यसहितसाधुभ्यो नमः ।
 धरागद्गुणेणापि धाराकाचारभाषितम् ।
 सोऽद्यापि यतते लोके त यजे तित्तु नम्यकैः ॥
 ॐ ह्रीं धरागद्गुणोपासकाचारवात्प्रायोगाय नमः ।
 श्रुतवाह्याजिनैः प्रोक्तं चतुर्विंशतिग्रन्थात् ।
 तत्र वात्सल्यकं ज्ञातं तत् यजे यमुद्ग्रन्थकैः ॥
 ॐ ह्रीं श्रुतवाह्याचतुर्विंशतियात्सत्यांगाय जलम् ।

× × ×

अतिम भाग—

प्रजापतिभाद्रसिते द्वितीयायां पडेय (पडेम) समशशिवत्सरेषु । रत्नत्रय पाठ (?)
 चकार पूर्णं भडिल (?) पूजां मुनिविश्यभूष ।

शोधयन्तु महापाठ धार्मीकसुगिरि चिरम् ।
 ज्ञम्यतां ज्ञम्यतां देवि । यद्विरुद्धं मया कृतम् ॥
 यायन्मेकनदीगंगा यावत्खे च सुतारका ।
 तावत्तिष्ठतु मे पाठो मित्थ्यात्त्वतम (?) भास्करः ॥

इति विशालकीर्त्यात्मजो भट्टारकविश्वभूषणविरचिता रत्नत्रयोद्यापनपूजा समाप्ता ।

इस रत्नत्रयोद्यापन के कर्ता भट्टारक विश्वभूषण अपने को विशालकीर्ति का आत्मज
 बतलाते हैं। यह भ० विश्वभूषण वि० सं० १८१०* में होनेवाले भकामरकथा, पद्म
 पुराण इन्द्रभ्यजपूजा पण्यवतिसेनपालशान्ति आदि के रचयिता ही ज्ञात होते हैं। इनके
 विशालज्ञयोद्यापन जिनगुणसम्पत्सुद्यापन आदि दो-तीन उद्यापन सम्बन्धी ग्रन्थ भी मिलते
 हैं। इससे भी उपयुक्त अनुमान प्रबल प्रतीत होता है। पर एक बात है—प्रस्तुत ग्रन्थ
 की प्रशस्ति में 'पडेयसप्तशशिवत्सरेषु पाठ देख कर उक्त सम्प्रदाय पर कोई सन्देह कर सकता
 है। पर यह लेखक की ही मूल ज्ञात होता है। वास्तव में यह प्रति है भी बहुत अशुद्ध।
 मेरे ज्ञान से इसका पाठ पडेभसतशशि होना चाहिये। इस पाठ से उक्त निर्णीत समय
 करीब-करीब असन्दिग्ध हो जाता है।

* देखें—'विगहर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ' पृष्ठ २७ ।

(४३) ग्रन्थ नं० ५४
क

प्रतिष्ठा-तिलक

कर्ता—ब्रह्मसूरी

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—मसूट

लम्बाई ८। इञ्च

चौडाई ६।।। इञ्च

पत्र-संख्या ११२

प्रारम्भिक भाग —

जिनाधीनमह वन्दे विध्वस्ताशेषव्योपकम् ।
सर्वत्र सर्वशास्त्रस्य कर्तार त्रिजगन्प्रभुम् ॥१॥
गणाधीनं श्रुतस्कन्धमपि नत्वा त्रिशुद्धित् ।
प्रतिष्ठातिलक वक्ष्ये पूर्वशास्त्रानुसारत ॥२॥
जिनेन्द्रप्रतिमान्यास प्रतिष्ठेति निगद्यते ।
तत्पूर्विका जिनेज्या हि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥३॥
× × ×

मध्यम भाग (पूर्व पृष्ठ ६४, पक्ति १२) —

अथाकारशुद्धिविधानम् ।
वेदिवाहाप्रदेशे मरुदमरुमारुद्युपस्कारयुक्ते
कूटावावष्टपत्रास्युजलिखितपरब्रह्ममुख्यामराह्ये ।
विन्यस्य स्नानपीठे कुजनिहितजिनार्चामुपानीय भक्त्या
सस्याप्याप्रस्थकुम्भाद्युभिरहमुचिताकारशुद्धि विधास्ये ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्षीं भू स्वाहा । जन्मामिपेकस्यानीयमाकार-
शुद्धिमिपेकप्रारम्भे स्नानपीठाप्रत पुष्पाङ्गलि कुर्यात् ।
भेरीगभीरनादेत्यादि पद्यपठनानन्तरं वाह्ये पृथग्वाद्यव्योपगम् ।
× × × ×

अन्तिम भाग—

देशेषु सर्वेष्वधिकं सुपाण्ड्यदेशो नदीमातृरुदेयमातृक ।
चोच्चाप्रमोचाविसुपूगवृत्तैः सवर्द्धमानो बहुशालिसिध्व ॥१॥

नानाविधैर्वर्द्धितधान्यवर्गोवृत्तैरश्रेयै फलदै सुयोम्यै ।
 धाम्नाति सत्पद्मसरोवरैश्च धीराजहसैर्विहगैरैश्च ॥२॥
 क्षीप गुडोपसनमस्ति तस्मिन् हर्म्यांबलीतोरणराजिगोपुरै ।
 मनोहरागारसुररत्नसमृतेरुद्यानजैर्मात्पमरावतीष ॥३॥
 तद्राजराजेन्द्रसुपाण्ड्यभूपः कीर्त्या जगद्व्यापितवान् सुधर्मा ।
 एराज भूमाविति निस्सपत्न कलान्वितः सद्भिद्युधैः परीतः ॥४॥
 तत्रास्ति सद्रत्नसुवणतुगचैत्यालये धीवृषभेश्वरो जिनः ।
 विशोखनम्भीशमुनीन्द्रमुख्या सच्चग्राहवन्तो मुनयो वसन्ति ॥५॥
 श्रीमूलसद्योमेदुर्भारते भावितोयदृत् ।
 देशे समन्तभद्राख्यो मुनिर्जीयात्पर्वर्द्धिकः ॥६॥
 तत्त्वायसूत्रव्याख्यानगर्भहस्तिप्रवर्षकः ।
 स्वामी समन्तभद्रोऽभूद्देशगमनिदेशकः ॥७॥
 शिष्यो तदीयो शिवकोटिनामा शिष्यायनः शास्त्रविदां धरेद्यौ ।
 कृत्स्नं श्रुतं धीगुरुपादमूले ह्याधीतवन्तौ भवतः कृतार्थौ ॥८॥
 तदन्वयेऽभूद्विदुषां परिष्ठः स्याद्वादनिष्ठः सकलागमज्ञः ।
 धीवीरसेनोऽजनिः ताक्किकथीः प्रथ्वस्तरागादिसमस्तदोषः ॥९॥
 तच्छिष्यप्रधरो जातो तिनसेनमुनीश्वरः ।
 यद्राज्यमयः पुरोरासीत् पुराणं प्रथमं भुवि ॥१०॥
 तदीयप्रियशिष्योऽभूत् गुणभद्रमुनीश्वरः ।
 शलाकाः पुरुषाः यस्य सृक्तिमिभूयिताः सदा ॥११॥
 गुणभद्रगुरोस्तस्य माहात्म्यं केन वक्ष्यते ।
 यस्य वाक्सुधया भूमावभिमपिका जिनेश्वराः ॥१२॥
 तच्छिष्यानुक्रमे जातेऽसख्येये विद्युतो भुवि ।
 गोविन्दभद्र इत्यासीद् विद्वान् मिथ्यात्ववर्जितः ॥१३॥
 देवागमनसूत्रस्य श्रुत्वा सहर्शान्वितः ।
 भनेकान्तमतं तस्य बहु मेने विदास्वरः ॥१४॥
 भन्वनास्तस्य सजाता धर्मिताखिलकोविदाः ।
 वाक्षिणात्या जयन्त्यत्र स्वययन्तीप्रसावतः ॥१५॥
 श्रीकुमारकविः सत्यवाक्यो देवरवल्लभः ।
 उद्यद्भूषणनामा च हस्तिमहामिधानकः ॥१६॥
 धर्ममानकविश्चेति पद्मभूवनः कवीश्वराः ॥१६॥

सम्यक्त्वं सुपरीक्षितं मद्राजे मुक्ते सरगायापुरे-
 -शस्याः(?) पाराङ्ग्यमहीश्वरेण कपटाङ्गन्तुं स्वमभ्यागते ।
 शैलूप जिनमन्त्रवारिणामुपास्यास्मिन्मदं ध्वसति
 श्लोकेनागतहस्तिमल्ल इति य प्रख्यातवान् सूरिभिः ॥१७॥
 श्रीवत्सगोत्रजनिभूषणगोपभट्टप्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात् ।
 नानाकलाम्बुनिधिपाराङ्ग्यमहीश्वरेण श्लोकैः गतैः सद्रसि सत्कृतवान् बभूव ॥१८
 तद्धस्तिमल्लतनुजो भुवि सुप्रसिद्ध सद्धर्मपालकमहोज्ज्वलकीतिनाथः ।
 तद्धर्म (?) धर्द्धयितुमप्यखिलागमन्न श्रीपार्श्वपण्डितनुधोऽविश्वान्वरानकम् ॥१९ ।
 श्रीवत्सकाश्यपत्रिप्रणस्तभारद्वाजोल्लसद्गौतमभार्गवेश्च ।
 आत्रेयक्रांशिडनिमहत्समगस्यविश्वामित्रैः सुगोत्रैः सह धनुभिश्च ॥२०॥
 एकैरुस्मात्कारणात्तां पुरीं तद्धित्वा गत्वा विषयसंमंगल च ।
 तस्मात्ते सार्द्धं सद्वाचारनिष्ठो देश चागाद् होय्सालाख्यं प्रतीतम् ॥२१॥
 पृथ्वीतले होय्सलदेशनामिन् कृत्रत्रयाभिर्यपुरी च तस्याम् ।
 सराजते चाष्टप्रतीर्थनाथो विचित्रचित्रान्वितचेत्यगेहे ॥२२॥
 तच्चन्द्रनाथजिनपादसरोजभृद्गस्तां पार्श्वपण्डितनुधोऽप्यविश्वान्वन्तु ।
 तत्सूनवश्चन्द्रपचन्द्रनाथवेज्यजोयाश्च क्रमाद्बभूवु ॥२३॥
 चन्द्रनाथसुताद्याश्च सर्वे हेमाचले स्थिताः ।
 तस्यानुजौ यथायोग्यदेशे वास गतो च तो ॥२४॥
 सद्दर्तनानुचरितोज्ज्वलचन्द्रपार्यसूनु सुगालविदभूद्विजयद्विजोत्तमः ।
 तत्संभवः सकलशास्त्रकलाधिनाथो नाम्नेन्द्र X X विजयो जिनयाजजूक ॥२५॥
 शास्त्राम्भोजातभास्वजिनपदनखसच्चन्द्रिकासच्चकोरम्
 विजयेन्द्र सुपुत्रे हि तत्प्रणयिनी श्रीनामधेया च यम् ।
 सद्धर्माग्धिसुपुर्णाचन्द्रममलं सम्यक्त्वरत्ताकरम्
 तत्पुत्र खलु ब्रह्मसूरिणामिति ख्यातभाग्योदयम् ॥२६॥
 पट्कर्मवैद्यागमशास्त्रशिल्पज्योतिष्ककाव्योचितनाटकञ्च ।
 सद्गीतसाहित्यकवित्वकृन्दोऽलङ्कारशास्त्रं स विवेद सर्वम् ॥२७॥
 वृत्तानुयोगाद्युदितप्रपञ्चविस्तारवेदी सकलानुवादी ।
 तत्तच्चतुर्धाहतवेदशास्त्रकलागुरु स्त्रकुलमलञ्चकार ॥२८॥
 श्रीचन्द्रप्रभतीर्थनाथपदपद्मामोदसंस्कृतभृद्गु ।
 सर्वकलाविचारचतुरः संसेव्यमानो नृपैः ।

घायाँकादिमुनादिपत्रपवि' सधहसस्थापक' ।

घान्देयीभजनादितोदमयदत् तद्व्रह्मसूरी मुदा ॥२९॥

सार सारं प्रोक्तमित्यत्र शास्त्रे सध लक्ष्य लक्षणन्वेतदेव ।

छन्दोऽलङ्कारादितधानघ सज्जीयाह्लोके धन्युर' सर्वकालम् ॥३०॥

इति प्रतिष्ठातिलकोदितक्रमात् करोति यो भव्यजनप्रमोदताम् ।

जिनप्रतिष्ठां परमाथनिष्ठां सद्ब्रह्म यास्यत्यचिरात् सुसौख्यम् ॥३१॥

इस प्रतिष्ठातिलक के कसाँ प्रह्लासूरी ने अपना वंश परिचय निम्नलिखित रूप से दिया है —

पाण्ड्यदेश में गुडिपत्तन नाम का एक नगर है। यहाँ का राजा पाण्ड्यनेन्द्र है। यह वडा ही धर्मिष्ठ शूर-वीर, कला कुशल तथा पण्डित सेवी है। यहाँ श्रीवृषभ तीर्थङ्कर का एक मनोह रत्नजटित सुवर्णमय मन्दिर है। इसमें विशाखनन्दी भादि अनेक विद्वान् मुनिगण वास करते हैं। कवि ने आगे प्रख्यात पुराणप्रणेता भगवज्जिनसेनाधाय की परम्परागत श्रीगोविन्द मठ को ही अपना पृथज वतलाकर निम्न प्रकार से अपनी वंश तालिका अंकित की है.—

गोविन्दमठ के श्रीकुमार सत्यवाक्य देवरवल्लभ उदयभूषण हस्तिमल्ल और यदुमान नाम के छ लडके थे। सुप्रसिद्ध कवि हस्तिमल्ल के पुत्र पण्डित पाशव हुप। वह अपने पिता के समान यशस्वी, धर्मात्मा एवं शास्त्रममज्ञ विद्वान् थे। पीछे पार्श्व पाण्ड्य देश से काश्यप वशिष्ठ भादि अपने गौतमज वन्धुओं के साथ होयसलदेश में आकर रहने लगे। यह होयसलवंश पश्चिमी घाटी की पहाडियों में कडूर जिले के मडुगिरि तालुक में अंगडि नामक स्थान से प्रादुर्भूत हुआ था। इसका प्राचीन नाम शशकपुर है। यहाँ परसल नामक एक सामन्त ने एक व्याघ्र से जैनमुनि की रक्षा करने के हेतु होयसल नाम प्राप्त किया था। विद्वानों का कहना है कि प्रारम्भ में होयसलवंश पहाडी था। पीछे विनयादित्य के उत्तराधिकारी ने अपनी राजधानी शशकपुरी से बेलूर में हटा ली। द्वारसमुद्र (हलेबीडु) में भी उनकी राजधानी थी। इस वंश के विष्णुवर्द्धन के समय होयसल वंशों का प्रभाव बहुत बढ गया था। इसी समय गंगवाडि का पुराना राज्य सब उनके अधीन हो गया था और इन्होंने कई अन्य प्रदेशों को भी जीत लिया था। प्रारम्भ में विष्णु वर्द्धन जैनधर्मावलम्बी रहा; किन्तु पीछे वैष्णव हो गया था। फिर भी जैनधर्म से उसकी सहानुभूति बनी ही रही। होयसल राज्य पहले चालुक्य-साम्राज्य के अन्तर्गत था। पीछे नरसिंह के पुत्र धीरबल्लाल के समय में यह स्वतन्त्र हो गया। यह वंश जैनियों का विशेष रूप से पृष्ठपोषक था।

उल्लिखित राज्य की राजधानी ग्रन्थकर्ता ने छत्रत्रयपुरी लिखी है। ऐतिहासिक प्रमाणाँ से इस वंश की राजधानी केवल तीन स्थानों में थी, जिनके नाम क्रम में शंकरपुर, घैलूरु और द्वारसमुद्र थे। पता नहीं कि छत्रत्रयपुरी में ब्रह्मसूरी जी किस स्थान का सकेत करते हैं। बहुत संभव है कि द्वारसमुद्र को ही इन्होंने छत्रत्रयपुर लिख दिया हो।

अस्तु, उक्त पार्श्वपण्डित को चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वैजय्य नाम के तीन पुत्र थे। इनमें से चन्द्रनाथ और इनके परिवार पीछे हेमाचल में जा बसे। शेष दो भाई अन्यान्य स्थानों में चले गये। चन्द्रप के पुत्र विजयेन्द्र हुए और इन्हीं के लड़के इस ग्रन्थ के रचयिता परम धार्मिक सर्व शास्त्र-निष्णात एवं चारित्र्यचंचरीक श्रीब्रह्मसूरी जी हैं।

(४४) ग्रन्थ नं० $\frac{५५}{५५}$

प्रतिष्ठाकल्प

कर्ता—महाराज

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इंच

चौड़ाई ६।।। इंच

पत्र-संख्या ८०

प्रारम्भिक भाग—

विद्वानं विमलं यस्य विशद विश्वगोचरम् ।

नमस्तस्मै जिनैन्द्राय सुगुणैर्वाभ्यर्चितांघ्रये ॥१॥

वन्दित्वा च गणाधीशं श्रुतस्कन्धमुपास्य च ।

पेठंयुगीनानाचार्यानिपि भक्त्या नमाम्यहम् ॥२॥

अथ श्रीनेमिचन्द्रोद्यप्रतिष्ठाशास्त्रमार्गतः ।

प्रतिष्ठायास्तद्वाद्युत्तरांगानां स्वयमङ्गिनाम् ॥३॥

इन्द्रप्रतिष्ठावभृथाद्यन्तानां कृत्स्नकर्मणाम् ।

अवान्तरक्रियाणां च लक्षणप्रतिपादकः ॥४॥

प्रतिष्ठाकल्पनामासौ ग्रन्थ सारसमुच्चयः ।

महाराजकदेवेन साधु सगृह्यते स्फुटम् ॥५॥

पुरातनेषु तन्त्रेषु किञ्चित्सूत्रसमुच्चितम् ।
 किञ्चित्प्रयोगससिद्ध किञ्चित्कर्मन्तरस्थित ॥६॥
 मन्त्रकाण्डगत किञ्चिन् किञ्चित्तन्त्रान्तरौदितम् ।
 इत्येव विप्रवीर्यं तल्लक्ष्म नैरुत्त सञ्चितम् ॥७॥
 अथगम्य तदेकत्र नेय प्रकृतकर्मणः ।
 सिद्धयर्थं प्रौढसाध्य तन्मन्त्रानां नैय गोचरं ॥८॥
 अतो मन्दावधोधार्थं लक्ष्म यद्यत्त योजितम् ।
 तत्रैव नियतेऽत्रेति सफलो मे परिश्रम ॥९॥
 श्लोका पुरातना केचिद्विलिख्य लक्ष्मयोधकाः ।
 प्रायस्तदनुसारण्य मनुकाश्च क्वचित्क्वचित् ॥१०॥
 यत्साक्षाद्यच्च लक्ष्मेपद्वचघानेऽप्यपेक्षितम् ।
 सगृह्यते तदेवान्न न पारपयथाञ्छितम् ॥११॥
 पारम्पर्यारवेणान्न सहिता शास्त्र भाषितम् ।
 नोच्यते किन्तु तद्वै द (१) यच्छास्त्रान्तरगोचरं ॥१२॥
 तथाहीह प्रतिष्ठांगक्रियानिवहणाय हि ।
 तत्कतुर्नियमेनात्नोपासकाभ्ययनागमे ॥१३॥
 पुराणाद्यात्मशकुनधास्तुज्योतिषशास्त्रगम् ।
 सामान्यैरपि राजाद्यैर्महामुकुटशोभिभिः ॥१४॥
 ज्ञानमावश्यकं तसु सख्या व्याकरणादिना ।
 न भवेदिति तल्लक्ष्म वेद्य तत्रैव नान्न तु ॥१५॥
 × × ×

मध्य माग (पूर्व पष्ठ ३? पक्ति ६) —

अथैवमङ्कुरारोपस्तद्रात्रौ होमकर्म च ।
 इत्युक्तं प्राक् ततोऽथैव तद्विधानं निरूप्यते ॥
 मण्डपस्य च वेद्याश्च कुण्डानां चापि छत्तणम् ।
 दृश्यतेऽग्रे प्रपञ्चेन यागशालाप्रवेशने ॥
 अत्र कर्मानुपूर्वी च तत्तल्लक्ष्म च केवलम् ।
 पूर्वसुरिष्वेवा ह्रस्वा कथ्यते साधु तद्यथा ॥
 होमकर्मणि पूवागत्वेन पुण्याहवाचना ।
 कर्षण्या सापिऽसकस्यपूर्विका मधकेयला ॥

इति सकल्प्य पुरायाहे क्रियमाणे तदन्तरे ।
 अस्ति क्रियाविशेषोऽतः सावम्बप्राग्निरूपिते ॥
 होतुरासनविन्यास कुण्डात् प्रागिति वक्ष्यते ।
 तस्य कुण्डस्य चेत्येतद्गुभयोरन्तरालके ॥
 प्रस्थं प्रस्तीर्य शालीनां तदूर्ध्वं तण्डुलानपि ।
 तत्र स्वस्तिकमालिख्य कोष्ठगभ्रीचतुष्टयम् ॥
 मायाक्षरं वृतं तत्र तीर्थान्मुपरिपूरितम् ।
 पल्लवादर्शशोभाढ्यगन्धपुष्पाक्षताञ्चितम् ॥
 तण्डुलामान्नपिहित कुशकूर्चोपलक्षितम् ।
 श्वेतसूत्रावृतं पञ्चरत्नकाञ्चनगर्भितम् ॥
 श्रीखण्डपंकसलघ्नान्नतविद्येपलक्षितम् ।
 धौतप्रत्यग्रधवलवासोमण्डितकन्दरम् ॥

x x x

अन्तिम भाग—

इत्यार्षे श्रीमद्भट्टकलकदेवसंगृहीते प्रतिष्ठाकल्पनाम्नि ग्रन्थे सूत्रस्थाने प्रतिष्ठाद्वितीय-
 तृतीयदिवसविधिनिरूपणीयो नामैकोनविंश. परिच्छेद ।

प्रतिष्ठाकल्प, अकलङ्कसंहिता अथवा अकलङ्कप्रतिष्ठापाठ के नाम से प्रसिद्ध यह ग्रन्थ राजवार्तिक, अष्टशती आदि ग्रन्थों के रचयिता विक्रम की ८वीं शताब्दी के विद्वान् भट्टकलङ्कदेव की कृति माना जाता है। इस ग्रन्थ में तो इसकी रचना का समय नहीं दिया है, परन्तु ग्रन्थों की सन्धियों में ग्रन्थकर्त्ता का नाम 'भट्टकलङ्कदेव' अवश्य दिया है। सन्धियों में ही नहीं, पद्यों में भी ग्रन्थकर्त्ता ने अपना नाम भट्टकलङ्कदेव प्रकट किया है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में परिडित जुगलकिशोर जी मुस्तार का कहना है कि सन्धियों और पद्यों में भट्टकलङ्कदेव का नाम लगा होने से ही यह ग्रन्थ राजवार्तिक के कर्त्ता का बनाया हुआ समझ लिया गया है। अन्यथा, ऐसा समझने में और कथन करने की कोई दूसरी वजह नहीं है। भट्टकलङ्कदेव के वाद होनेवाले किसी माननीय प्राचीन आचार्य की कृति में भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। प्राचीन शिलालेख भी इस विषय में मौन है। साथ ही साथ भट्टकलङ्कदेव के साहित्य और उन की कथन-शैली से इस ग्रन्थ के साहित्य और कथनशैली का कोई मेल नहीं है। इसका अधिकांश साहित्य-शरीर ऐसे ग्रन्थों के आधार पर बना हुआ है, जिनका निर्माण भट्टकलङ्कदेव के अबतार से बहुत पीछे के समयों में हुआ है।

मुख्तार साहब ने अपनी इस बात को प्रमाणित करने के लिये भगवज्जिनसेन (वि० ९वीं शताब्दी)-प्रणीत आदिपुराण आचार्य शुभगुण्ड (लगभग वि० ११वीं शताब्दी)-कृत हानाणव, महारक पकसन्धि (वि० १३वीं शताब्दी)-रचित पकसन्धि सहिता, पण्डित भाशाघर (वि० १३वीं शताब्दी)-प्रणीत जिनयमरुत्तर श्रीविद्वांसूरि (लगभग वि० १५वीं शताब्दी)-विरचित प्रतिष्ठापाठ, श्रीनेमिचन्द्र (लगभग वि० १६वीं शताब्दी)-अङ्कित प्रतिष्ठातिलक, श्रीसौमसेन (वि० १७वीं शताब्दी)-प्रणीत त्रिगुणाचार के पद्यों को उद्धृत किया है। इन पद्यों में भगवत्परायण भी गर्भित है। प० जुगल किशोर जी के खयाल से इसकी रचना विक्रम की १६ वीं या १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई है और यह भरलक या भरलकदेव नाम के किसी महारक या विद्वान् की रचना है। भालूम होता है कि इन्होंने अपने नाम के साथ स्वयं ही 'मह' की महत्वस्वरूप उपाधि को धारण कर जो पसन्द किया है। इस सम्बन्ध में विशेष बात जानने के लिये 'ग्रन्थ परीक्षा' भाग ३य का अवलोकन करना चाहिये।

(४५) ग्रन्थ न० $\frac{५७}{८}$

परसमय ग्रन्थ

कथा—(सगृहीत)

विरच—श्रीवाचार्यमण्डन

भाषा—संस्कृत

सम्बाई ८॥ इ०७

चौडाई ६॥ इ०७

पल-संख्या २०

प्रारम्भिक भाग—

धूमतां धमसर्वस्व धृत्या श्रीवाचार्थताम् ।
 आत्मन प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥
 कथमुत्पद्यते धम कथं धर्मो विवदति ।
 कथं सस्थाप्यते धर्म कथं धर्मो विनश्यति ॥
 सत्येनोत्पद्यते धर्मो दयादानेन वृद्धति ।
 क्षमया स्थाप्यते धर्मः क्रोधलोभाद्विनश्यति ॥
 अहिंसासत्यमस्तेय त्यागो मैथुनव्रजनम् ।
 पञ्चस्वेतेषु धर्मेषु सर्वे धर्मा प्रतिष्ठिता ॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १०, पक्ति ८) —

कैवर्तीगर्भसंभूतो व्यासो नाम महामुनि ।
 तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् (१) ॥१०४॥
 उर्वशीगर्भसंभूतो वशिष्टस्तु महामुनि ।
 तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०५॥
 चाण्डालीगर्भसंभूतो विश्वामित्रमहामुनिः ।
 तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०६॥
 शील प्रधान न कुल प्रधान
 कुलेन किं शीलविवर्जितेन ।
 धनो (१) नरा नीचकुलेषु जाता
 स्वर्गं गता शीलगुणस्य धारिणः ॥१०७॥

इति मार्कण्डेयपुराणे, भविष्यपुराणे, विष्णुपुराणे, पद्मपुराणे (त्र) ऋषिकुलाधिकार' ।

ब्रह्मचर्यं भवेन्मूलं सर्वेषां व्रतधारिणाम् ।
 ब्रह्मचर्यस्य भंगे तु सर्वं व्रतं (व्रत सर्वं) निरर्थकम् ॥१०८॥
 सुखशय्यासन वस्त्र तांबूलं स्नानमण्डनम् ।
 वन्तकाष्ठं सुगन्धं च ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥१०९॥
 पकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्यन्तु पकत' ।
 पकत सर्वपापानि मयं मांसं च पकत ॥११०॥
 आरंभे वर्तमानस्य हिंसकस्य युधिष्ठिर ।
 गृहस्थस्य कुत शौचं मैथुनाभिरतस्य च ॥१११॥
 मैथुनं ये न सेवन्ते ब्रह्मचारि(चर्य)दृढव्रता ।
 ते संसारसमुद्रस्य पारं गच्छन्ति मानवा' ॥११२॥

इति शिवपुराणे ब्रह्मचर्याधिकार ।

x x x

अन्तिम भाग—

मूर्खास्तपोभि क्लृपयन्ति देह ।
 बुधा मनोदेहविकारहेतुम् ॥
 भ्वा क्षिप्तमस्त्रं प्रसते हि कोपात् ।
 क्षेत्तारमस्त्रस्य च हन्ति सिंह ॥१९०॥

कायस्थित्यथमाहार काय ज्ञानाथमिष्यते ।

ज्ञान कर्मविनाशाय तन्नाशे परम पद्मम् ॥१९१॥

नार्थं पद्मात्पदमपि यजति त्वदीयो

व्यावर्तते पितृवनाश न (घ) धनुषगंग ॥

दीर्घे पथि प्रवसतो भयतस्सखैक ।

पुण्य भविष्यति ततः क्रियतां तदेव ॥१९२॥

नष्टे वस्तुनि शोभनेऽपि हि तथा शोक समात्स्यते ।

तल्लभोऽथ यशोऽथ सौख्यमथवा धर्मोऽथवा स्याद्यदि ॥

यद्येकोऽपि न जायते कथमपि स्फारैः प्रयत्नैरपि ।

प्रायस्तत्र सुधीमुधा भवति क शोकोऽप्रक्षेत्रिणः (?) ॥१९३॥

त्व शुद्धात्मा शरीर सकलमलयुत त्व सदानन्दमूर्ति ।

देहो दु खैकगेह त्वमसि कलायित्कायमज्ञानपुञ्जम् ॥

त्व नित्यः श्रीनिवास जगद्विचिन्तकः शाश्वतैकात्मिकम् ॥

मा मा जीवाऽऽन्न राग वपुषि भज निज्ञानन्दसौख्योदय त्वम् ॥१९४॥

निश्चेष्टानां वधो राजन् कुटिसतो जगतीपते ।

क्रतुमभ्योपनीतानां पशूनामिव राघव ॥१९५॥

यह 'परसमयग्रन्थ एक समूहग्रन्थ है। इसे मैंने राजकीय प्राच्यपुस्तकालय में से लिखवाया था। वहाँ की मुद्रित ग्रन्थतालिका में यह इसी नाम से अंकित है। इस ग्रन्थ में समूहकर्त्ता ने जैनधर्म में प्रतिपादित मद्यत्याग, मांसत्याग, मद्युत्याग, नवनीतत्याग, कन्दमूलत्याग, पान्निमोजनत्याग, जलगालन, भाहारदान, ब्रह्मचर्य और अहिंसा आदि मान्य आचारों को हिन्दुओं के पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, भगवद्गीता और महाभारत आदि ग्रन्थों के प्रमाणोद्धरणपूर्वक पुष्ट किया है। हा एक बात है। वह यह है कि इस ग्रन्थ में जिन ग्रन्थों का हवाला दिया गया है उनके नाम और पद्य मात्र दिये गये हैं; अर्थात्, प्रकरणा, पृष्ठ आदि को इसमें कुछ भी निर्देश नहीं मिलता है। अतः मूलग्रन्थों से अगर कोई इन प्रमाणों को मिलाकर करना चाहे वह सहज नहीं है।

अस्तु सुप्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्रजी के द्वारा रचित 'वेदाङ्कुश' नामक एक लघुकलेवर ग्रन्थ वि० सवत् १९७१ में अहमदाबाद में छपा है। यह 'अहिमचन्द्राचार्य-ग्रन्थावली' का पाँचवाँ ग्रन्थ है। वेदाङ्कुश और परसमयग्रन्थ ये दोनों ग्रन्थ एक ही विषय के हैं। बल्कि वेदाङ्कुश के बहुत से पद्य परसमयग्रन्थ में पद्यावत् और बहुत से पाठभेद

सूभगमशुक्तिमीमल्लाटपट्ट । एक विरूपमपि कपितसवगातम् ॥
 प्र(१)प्रखलद्वचनमुद्गतलोन्दृष्टिं । कोप करोति मद्दिये जन विचेष्टम् ॥३॥
 नो संवृणोति परिधानमपि स्वकीयं । भागदानि चूर्णयति क्षति शिशुन् प्रवुष्ट ॥
 स्वारम(?) पर परिभवत्यपि मुक्तकेश । कोपी पिशाचसदृश स्वकमातनोति ॥५॥
 कोपेन कञ्चिदन्तर ननु ह तुकामस्ततायस स परिशुभ्य करेण मूढ ॥
 एष निर्दहत्यपरमत्र विकल्पनीय । किंवा धिङ्गधनमसौ न करोति कोप ॥ ॥

X X X X X

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ५, पक्ति ४) —

ध्यात्री नो कुपिता न चापि शरमी नैवास्तकी राक्षसी ।
 शस्त्रेणापि तथा न पावकशिखा नो शाकिनी डाकिनी ॥
 नो वस्त्राशनिरुत्सर्गपतितो सषस्य हानि तथा ।
 दुःखं भूरि यथा करोति रचिता माया नृणां ससृता ॥२१॥
 त्यक्ताशेषपरिग्रहा अपि सदा विज्ञातशास्त्रा अपि ।
 शश्वदुद्धावशमेवतप्ततपसा सपीडितांगा अपि ॥
 केचिद्गौरव(?) गौरवाद्धिहितया दुर्लक्ष्यामायया ।
 मृत्वा यान्ति कुदेवयोनिमवशा माया न किं दु खदा ॥२२॥
 छिद्राबलोकनपरं सतत परेषां जिह्वाद्वयेन मयदा न विधानदक्षम् ॥
 भन्तर्विपाकहृदय च खलस्वभाष । माया करोति हि नर स मुजगचेष्टम् ॥२३॥
 धीरोऽपि चाक्षरितोऽपि विचक्षणोऽपि ॥
 शीलालयोऽपि सतत धिनयान्वितोऽपि ॥
 बुद्धोऽपि वृद्धधनवानपि धीधनोऽपि ।
 मायासख सदसि याति लघुत्वमेव ॥२४॥
 भार्वाभ्यमानस्य च देववृन्द । प्रपूज्यमानस्य हि साधुवृन्दम् ॥
 निषेज्यमानस्य तु राजलोकं । न मायिन सिद्धयति कार्यजात(ल)म् ॥२५॥

X X X X X

प्रारम्भिक भाग —

इमे कपाया सुखसिद्धिवाधका इमे कपाया भववृद्धिसाधका ॥
 इमे कपाया नरकादिदुःखदा इमे कपाया बहुकल्मषप्रदा ॥३८॥
 कपायवान्तो लभते सुदर्शन कपायवान् हानमयैति नोऽनलम् ॥
 कपायवान् चाक्षरिजमुष्णाति (?) कपायवान् मुञ्चति शोमन तप ॥३९॥

को वा मृदुत्वकण्ठवृष्णमुक्तशक्रेषु । मृदुत्वादिषु पञ्चसु शब्देषु य सयुक्तो षर्षस्तस्य
 ककारो भवति वा । मृदुत्व माउत्तण माउक्कण । क्यतेस्म क्ण्ण भुग्णपययि (?)
 रोमादिना षकीभूते लुणो लुक्को वृष्ण । वृष्ण इहो इक्को । मुक्त मुप्ता मुक्को ।
 शक सक्तो सक्को ॥१॥ ए तस्य क्च्छौ च षग्दित्त् सकारस्य त्वकारो भवति क्च्छौ
 वा ष्वक्चिद्रयत । लक्षण लक्षण । तय खड तीयते । रिज्जइ चिज्जइ खिज्जइ ।
 क्षीण रीण क्षीण खोण ॥२॥

x x x x x x

अंतिम भाग—

इत्युभयभाषाकविचक्रवर्तिव्याकरणकमलभाष्यपट्टाकिंशिरौमण्डिपरमागमप्रवीणसूरि
 श्रीदेवेन्द्रकीर्तिप्रशिष्यमुमुक्षुधीविद्यानदिमहारकान्तेवासिधीमूलसंघपरमात्मविद्वस्वसूरिग्रीधृत
 सागरशिरचिते औदायचिन्तामणिनाम्नि स्योपबृचुसिनि प्राकृतसंथाकरयो सयुकाध्ययनिरूपणो
 नाम द्वितीयोऽध्याय ।

इसके कर्त्ता आचार्य भूतसागर एक बहुभ्रुत विद्वान् थे । पट्टाभूत की टीका से
 पर्व यशस्तिलकचन्द्रिकाटीका से ज्ञात होता है कि यह कलिकालसषष्ठ कलिकालगौतम
 स्वामी उभयभाषाकरिचक्रवर्ती आदि उपाधियों से विभूषित थे । इन्होंने ९९ महावाकियों
 को पराजित किया था । भूतसागर जी मूलसंघ सरस्वतीगच्छ और बलात्कारण्य के
 आचार्य एवं विद्यानन्दिमहारक के शिष्य थे । इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—पद्मनन्दी
 देवेन्द्रकीर्ति-विद्यानन्दी ।

पं० नाथूरामजी प्रेमी का अनुमान है कि विद्यानन्दी महारक के पट्ट पर आपकी
 स्थापना नहीं हुई थी । क्योंकि पं० भाशाधर के महाभियेक नामक ग्रन्थ की इनकी टीका
 के अन्त में विद्यानन्दी के शब्द की गुरुपरम्परा इस प्रकार है—विद्यानन्दी-मल्लिभूषण-
 लक्ष्मीचन्द्र । इससे विदित होता है कि विद्यानन्दी के पट्ट पर मल्लिभूषण की और
 उनके पट्ट पर लक्ष्मीचन्द्र की स्थापना हुई थी । यशस्तिलकटीका में भूतसागर ने मल्लिभूषण
 को अपना गुरुमाता लिखा है । इससे भी सिद्ध होता है कि विद्यानन्दी के उत्तराधिकारी
 मल्लिभूषण ही हुए हैं ।

यशस्तिलकचन्द्रिकाटीका से मालूम होता है कि उस समय गुजरात देश के पट्ट पर
 महारक लक्ष्मीचन्द्र विराजमान थे और मल्लिभूषण का प्रायः स्वर्गवास हो चुका था ।
 लक्ष्मीचन्द्र के शब्द भी श्रीभूतसागर के पट्टाधिकारी होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता
 है । सम्भव है कि यह सिंहासनासीन हुये ही नहीं । उल्लिखित पद्मनन्दी विद्यानन्दी
 आदि सब गुजरात के ही महारक हुये हैं । परन्तु यह मालूम नहीं होता है कि गुजरात

की किस स्थान की गद्दी को इन्होंने सुशोभित किया था। क्योंकि पूर्व में ईडर, सूरत, सोजित्ना आदि कई स्थानों में मट्टारको की गदियां रहीं हैं। हां, यशस्तिलक की रचना के समय मालवे के पट्ट पर सिंहनन्दी मट्टारक थे। इन्हीं की प्रेरणा से श्रुतसागरजी ने नित्यमहोद्योत या महाभिमपेक की टीका लिखी थी।

श्रुतसागरसूरि के भी अनेक शिष्य रहे होंगे। वैराग्यमणिमाला के रचयिता श्रीचन्द्र आप ही के शिष्य हैं। आराधनाकथाकोष, नेमिपुराण आदि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता ब्रह्मचारी नेमिदत्त ने भी श्रुतसागर को गुरुभाव से स्मरण किया है।* नेमिदत्त ने भी वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है। श्रुतसागर की यशस्तिलक-चन्द्रिका, महाभिमपेकटीका, तत्त्वार्थटीका, तत्त्वत्रयप्रकाशिका, जिनसहस्रनामटीका आदि अनेक रचनार्य मिलनी हैं। इनके सिवाय तर्कदोषक, विक्रमप्रबन्ध, श्रुतस्कधावतार, आशावरकृत पूजाप्रबन्ध की टीका, वृहत्कथाकोष आदि और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुये कहे जाते हैं।

इन्होंने अपने उपलब्ध किसी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है। पं० नाथूरामजी प्रेमी का कहना है कि आप विक्रम की १६ वीं शताब्दी में हुए हैं। प्रेमीजी इस सम्बन्ध में निम्नलिखित हेतु उपस्थित करते हैं—

१—ऊपर जिस महाभिमपेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है वह वि० सं० १५८२ की लिखी हुई है और वह मट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिये दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वयं अपनी टीकाओं में कई जगह किया है।

२—आराधनाकथाकोष के कर्त्ता ब्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुये हैं और वे श्रुतसागर के गुरुप्राता मल्लिभूषण के शिष्य थे।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्द्रजी की सं० १९५४ की बनाई हुई हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० सं० १५५० लिखा हुआ है।

४—यद्ग्राभूतटीका में जगह जगह लौकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी ग्रन्थ वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है। अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना से अधिक नहीं तो ४०-५० वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये।

अस्तु, श्रुतसागरजी के इस प्राकृतव्याकरण की यह भवन की प्रति अधूरी है। इस प्रति में द्वितीय अन्वय के वाद केवल एक पत्र है। अतः समग्र प्रति को खोजने की जरूरत है।

* देखें—'आराधनाकथाकोष' की प्रशस्ति।

(४८) ग्रन्थ नं०— $\frac{६२}{३३}$

तत्त्वार्थवृत्ति

कलां—भास्करानन्दी

विषय—दर्शनादि

भाषा—संस्कृत

सम्पादक— $\frac{१३}{१३}$ इ. चवैदिक— $\frac{८॥}{१३}$ इ. च

पत्रसंख्या १५५

प्रारम्भिक भाग—

अयन्ति कुमतन्वान्तपाटने पट्टभास्करा ।

विधानन्दास्सतां मान्या पूज्यपाश जिनेश्वरा ॥

अथातिविस्तारमन्तरेण विमतिप्रतिषेधनाथयिष्टदेवतानमस्कारपुरस्सर तत्त्वाथसुज्ञपर
विवरणा क्रियते तत्रादी नमस्कारलोकः ।—

मोक्षमार्गस्य नेतार भेत्तारं कर्मभूयताम् ।

ज्ञातार विश्वतस्त्वानां वन्द्ये तद्गुणलब्धये ॥

* * *

मध्य भाग (पृष्ठ ८३ पक्ष ६) —

‘स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त पुद्गलाः’

टोका—स्पर्शयते वा स्पर्शनमात्रं स्पश स च मूलभेदापेक्षयाष्टविधो मृदुकठिनगुल्फधु
शोतोष्णस्निग्धरुक्षधिकल्पात् । एस्यते एसनमात्रं वा एस, स हि पञ्चविधं तिकाभ्लकट्टु-
कषायमधुरभेदात् । गन्धते गन्धनमात्रं वा गन्ध, स द्विधा सुदभिरसुरभिमिज्ञात् । धर्षयति
धर्षणमात्रं वा धर्षा, स पञ्चधा कृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात् । त एते भेदा उच्यन्ते दोष-
रोचरभेदापेक्षया सख्येयासख्येयानन्तविकल्पाश्च जायन्ते ।स्पर्शश्च एसश्च गन्धश्च धर्षश्च स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तस्ते सन्ति येषां पुद्गलानां ते स्पर्शरस-
गन्धवर्णवन्त इति नित्ययोगेऽत्र मत्पर्यायस्य विधानं यथा क्षौरिणो म्यप्रोधा एति । अत्र
रूपिणं पुद्गलाः इत्यत्र रूपाधिनामाधिना एसादीनामपि ग्रहणात्तेनैव सूत्रेण पुद्गलानां
रूपादिमरुषे सिद्धं भनर्थकमिव सूत्रमिति । नैव दोषः । ‘नित्यावस्थितान्यरूपाणि’ इत्यत्र सूत्रे
धर्मादीनां नित्यत्वादिप्ररूप(ण)या पुद्गलानामरूपत्वे प्राप्ते तांजरासाथ रूपिणं पुद्गला

इत्युक्तम् । इदं तु सूत्रं परमतनिराकरणाचिकीर्षया पृथिव्यादीनां सर्वेषां पुद्गलादि-
जातिविशेषाणां प्रत्येकं रूपादिचतुष्टय साधारण स्वरूपमित्येतस्यार्थस्य प्रतिपादनार्थं कृतम् ।
परमते हि स्पर्शरसगन्धवर्णावती पृथिवी । स्पर्शरसवर्णावत्य आपः । स्पर्शवर्णावत्तेजः ।
स्पर्शवानेव वायुरिति चत्वारश्चैक्यगुणा जात्यन्तरेण स्थिताः पृथिव्यादय इत्युक्तम् । तच्च
युक्त्यानुपपन्नमिति स्वपक्षसाधनद्वारेणा निराक्रियते । तथा ह्यापो गन्धवत्य । तेजोगन्ध-
रसवत् । वायुर्गन्धरसवर्णावान् स्पर्शनत्वात्पृथिवीपर्यायवदिति । पवमुक्तं तावद् युक्तिबला-
त्पृथिव्यादीनां पुद्गलपर्यायत्व पुद्गलानां च स्पर्शादिसाधारणगुणात्वमिदानीमसाधारणा-
पर्याययोगिनः पुद्गलानाह ।

× × × × × ×

अन्तिम भाग—

इति यः सुखबोधाख्यां वृत्ति तत्त्वार्थसङ्गिनीम् ।
पद्सहस्रां सहस्रोनां विद्यात्संमोक्षमार्गवित् ॥१॥
यदत्र स्वलितं वात्र विद्वांसो देशशास्त्रयो ।
तद्विचार्यैव धीमन्तश्शोधयन्तु विमत्सरा ॥२॥
नो निष्ठीव्येन्न शेते वदति च न परं ह्येहि पाहि तु याहि
नो कण्डूयेत गात्र व्रजति न नाशिनोद्बु ह्येद्वानत्ते (१)
नावष्टन्नाति रेणुं निधिरिति यो वद्धपर्यकयोग ।
कृत्वा संन्यासमन्ते शुभगतिरभवत् सर्वसाधुस्सपूज्यः ॥३॥
तस्यासीत्सुविशुद्धद्वष्टिविभव सिद्धान्तपारङ्गतः ।
शिष्य श्रीजिनचन्द्रनामकलितश्चारित्रभूषान्वित ॥
शिष्यो भास्करनन्दिनामविवुधस्तस्याभवत्तत्त्ववित् ।
तेनाकारि सुखादिबोधविषया तत्त्वार्थवृत्ति स्फुटम् ॥४॥

शशधरकरनिकरतारनिस्तलतरतलमुक्ताफलहारस्फुरत्तारानिकुरम्बबिम्बनिर्भलतर-
परमोदारशरीरशुद्धयानानलोज्ज्वलज्वालज्वलितघनघाति घनसधोतसकलविमलकेवलाव-
लोकितसकललोकालोकस्वभावश्रीमत्परमेश्वरजिनपतिमतविततमतिचिदचित्स्वभावभावा-
मिधानसाधितस्वभावपरमतमहासैद्धान्तजिनचन्द्रभट्टारकस्तच्छिष्यपण्डितश्रीभास्करनन्दि-
विरचितमहाशास्त्रतत्त्वार्थवृत्तौ सुखबोधाया दशमोऽध्याय समाप्तः ।

वृत्तिगत प्रशस्ति से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वृत्तिकार, पण्डितवर भास्करनन्दी के
अश्रद्धेय गुरु श्रीजिनचन्द्र भट्टारक हैं । परन्तु इस नाम के कई आचार्य और भट्टारक हो

गये हैं इसलिये निम्न्यपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि भास्करजन्दी के गुरु जिनचन्द्र कौन हैं। श्रियुक्त प० नाथूराम जी प्रेमी का अनुमान है कि सम्भवतः भवणबेलोल के ५५वें शिलालेख में अंकित जिनचन्द्र भास्करजन्दी के गुरु हैं।^७ किन्तु यह केवल अनुमानमात्र है। इस बात को प्रेमी जी ने २२ १ ४१ के अपने हाल के पत्र में भी स्पष्ट कर दिया है।

जिनचन्द्र नाम के एक और आचार्य हो गये हैं जो 'धर्मसमूहभाषकाचार' कर्ता प० मेधावी के गुरु और शुभचन्द्राचार्य के शिष्य थे। यह शुभचन्द्राचार्य पद्मजन्दी आचार्य के पट्टधर थे और पाण्डवपुराण आदि ग्रन्थों के रचयिता शुभचन्द्र से पहले हो गये हैं। प० मेधावी ने 'ब्रह्मोक्त्यप्रवृत्ति' ग्रन्थ की हानप्रशस्ति में उनका विशेष परिचय दिया है।^८ इसी प्रकार एक भास्करजन्दी और हुए हैं जिनका उल्लेख न्यायकुमुदचन्द्र की वृत्ति में उपलब्ध होता है। यह नन्दिसय के आचार्य देवजन्दी के शिष्य एवं सौख्यजन्दी के प्रशिष्य हैं।^९ इस समय मेरे सामने और कोई सामग्री न होने के कारण तत्त्वार्थवृत्ति के रचयिता भास्करजन्दी के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालने में मैं विवश हूँ। अस्तु, इसमें शक नहीं है कि प्रस्तुत तत्त्वार्थवृत्ति की प्रतिपादनशैली सुन्दर और सुगम है। भाषा की दृष्टि से भी यह वृत्ति प्रौढ़ है। वास्तव में इसका सुखबोध नाम अन्वर्थ है। वृत्ति लगभग पाच हजार श्लोकों में है। इसकी प्रतिपादनशैली प्रायः राजवार्तिक से मिलती-जुलती है। राजवार्तिक से यह ग्रन्थ छोटा है अवश्य फिर भी उसमें अनुपलब्ध कुछ वाक्य इसमें मिलते हैं।

बड़े हर्ष की बात है, बात हुआ है कि मैसूर-गवर्नमेन्ट ओरियन्टल-लायब्रेरी की ओर से यह ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इसके सम्पादक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीमान् प० शान्तिराज जी शास्त्री, मैसूर हैं। यों तो उक्त लायब्रेरी की ओर से अभी तक भद्राकलंक का 'क्याणिकशास्त्रानुशासन' कविसाधर्मोप का 'आदिपुराण' नयसेन का 'धर्मामृत', जन्म का 'अनन्तनाथपुराण' आदि कई महत्वपूर्ण कन्नड जैन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं परन्तु संस्कृत ग्रन्थों में यह तत्त्वार्थवृत्ति ही सर्वप्रथम ग्रन्थ है। जैनसाहित्य प्रकाशन के सबध में मैसूर-सरकार जो उदारता दिखला रही है, उसके लिये जैन-समाज मैसूर-सरकार का अवश्य ऋणी रहेगा। मैं आशा करता हूँ कि उपयुक्त मान्य शास्त्री जी के सहयोग से अब यह प्रकाशन-कार्य और द्रुत गति से चलेगा। अब मेरे मन में आशा

* देखें—'सिद्धांतसारावलिम्ब' में 'प्रथमकर्त्ताओंका परिचय'।

+ यह 'प्रशस्ति भवन' में मौजूद है।

देखें—'अनेकान्त' पृ १३३।

का सत्कार हो रहा है कि मैसूर-ओरियन्टल लायब्रेरी को उद्धार एवं गुणग्राहिणी कमेटी तत्त्वार्थसूत्र की अन्य अप्रकाशित टीकाएँ (भभावन्द्रकृत आदि), शाकटायनन्यास, शाकटायनमहावृत्ति विद्यानुशासन एकसधिसहिता सिद्धिविनिश्चयटीका, न्यायविनिश्चय-विवरण, सत्यशासनपरीक्षा, लोकविभाग सिद्धान्तसारदीपक, द्विसिधालकान्य की द्वि० जैन टीका, बसुनन्दि-प्रतिष्ठापाठ, सशोक प्रायश्चित्तसमुच्चय आदि महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर भी आवश्यक ध्यान देगी।

(४६)ग्रन्थ नं० ६३
५

हरिवंशपुराण

कला—यशकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—अपभ्रंश

पम्बार्ई १३॥ इ००

चौडाई २॥ इ००

परडियजयहसहो कुणयविहसहो ।
भवियकमलसरहसहो पणविजियहसहो ॥
मुणायगहंसहो कह पयडमि हरिवसहो ॥
जय विसह विसकियविसययास ।
जय अजिय धजिय हयकम्मपयास ॥
जय सभव भवतणवरकुठार ।
जय लोक्कनदन परिसेसियकुणारि ॥
सुमइ सुमयपयडियपपत्थ ।
जय पउमहिण्णहि णासियकुतित्थ ॥
जय जय सुपास हयकम्मपास ।
जय वण्णह ससितास तास ॥
जय सुविहि सुविहिपण्णवोण ।
जय सीयत्त जिनवारिपवोण ॥

जय सय सेयकिय विगयसेय ।
 जय वासुपुञ्ज तवजलहिमय ॥
 जय विमल विमलगुणगण महंत ।
 जय सत वत जियवत्त अन्नत्त ॥
 जय धम्म धम्मविसत्तरित ताव ।
 जय सत्ति समियसंसारताथ ॥
 जय कुथ सुरकियसुद्धमयाणि ।
 जय भरि जिणचक्की सयलणाणि ॥
 जय महि जिहयतिलोकमल्ल ।
 जय मुणिसुक्खय चूरिय तिमल्ल ॥
 जय गामि जिण विसरहचक्रणोमि ।
 जय जहियराय रायमइयोमि ॥
 जय पास पापरजअयरवाल ।
 कुल गयणि दियोसरा सुरणिम्महियमाण ॥
 जय वीर त्रिहासियणयपमाण ।
 × × ×

मध्य भाग (पृष्ठ ५४ पक्ति ४) —

मध्यभागे परांमोजे सब्बा भ्रमरायते ।
 भावु पुर्मम साधु (?) घोटाळ्यो वतां चिर ॥
 स भगदे वासरे उमाइयो सरे ।
 पडु सहाउवधिदुड ता एक्के दूथ सविणयमूय ॥
 करमउलेव्युण दिदुड विणवय स्रो जि भो जिह्णुयि देव ।
 मडलिगाए याहठि विहिय सेव माय दिवायदि
 पडु पुमडु राउ पिय तुन्वरि ।
 देवहि वद्धराउ ह पेसिउ तुम्हं पासु तेण ॥
 यिसुणहं आयउ कज्जो ण जेण ।
 दुमयहो सुय दोवइ भय विणीय
 रुवेण पीइ सीलेण सीय पायाह वल्लह जयमयाह इह
 सिगाह करति एवेण दिदि
 जोवयवन्ति य जाये विराउ

परिणावमि यहेह बहु भाउ
 गोमितिय वयणो गणु चलेह
 जोपहावे हप तासु देह
 अमंतिय गारवह सव्य आय
 तुम्हह आपसिय आम्हि राय
 गिय गडगु लेप्पिण वेह चलहु
 पहु अणुमतु मा कियि करहु
 वक्काहरगाहि पुग्जियउ दृउ
 दुमयहे सहाप जो सारभूउ
 पुगु पडवियरु सरसुह विचरकु
 चल्लिप कृतिययो सिय सपरकु
 पडय कुमायदि पाह सपता सम्मागियद ताऽ
 x x x

अन्तिम भाग—

दिवदा जसमुगि पत्थय विसुवि ।
 फाणविउ हरिवस चरित्तु वि ॥
 जामहिणहु सायरु चडु दिवावरु ।
 तारादउ दिवदाहु कुलु जे विराहु हि चरियउ कुरुवं सहसद्वियउ
 काराविउ हयपावमालु ॥२२॥

इय हरिवस पुराणो कुरुवंसाहिद्विप विवुहुचिस्ताणुरंजयो ।
 सिरि गुणकित्तिमीसमुगिजसकित्तिविरिइये ॥
 साहु दिवदा गाम किय गोम गांह जुधिष्ठर भीमज्जुण गिब्वाया गमगा ।
 गिक्कुल सहदेव सव्वट्ट सिद्धिगमगावगागोते रह मो मगो
 समत्तो ॥ सधि ॥

इस हरिवशपुराण के रचयिता, गुणाकीर्त्ति के शिष्य यश कीर्त्ति हैं । श्रवणबेल्लोल के शिलालेखों में गुणाकीर्त्ति नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख उपलब्ध है अवश्य, परन्तु उन लेखों में इनका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता । इस नाम के और भी कई व्यक्ति हो गये हैं, किन्तु हरिवंश-पुराण के कर्त्ता इन यश कीर्त्ति से उनका सम्बन्ध देखने में नहीं आता । ऐसी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता है कि अमुक गुणकीर्त्ति ही हरिवश-

पुराण के प्रणेता यशकीर्ति के गुरु ह । इसी प्रकार यश कीर्ति नाम के भी अनेक व्यक्ति हो गये हैं जैसे—एक गोपनन्दी के शिष्य * दूसरे धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार छलित कीर्ति के शिष्य । सारांश यह है कि इस हरिवंश पुराण के रचयिता यशकीर्ति का था उनके गुरु गुणकीर्ति का विशेष परिचय मुझे प्राप्त नहीं हो सका इसलिये उनके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका ।

(५०) ग्रन्थ न० ६६
क

नेमिपुराण

कर्ता—ब्रह्मचारी नेमिब्रह्म

विषय—उपदेश

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इंच

चौड़ाई ६ ॥ इंच

पत्रसंख्या १६७

प्रारम्भिक भाग—

धीमन्नेमिजिनं नत्वा लोकालोकप्रकाशकम् ।
तत्पुराणमहं वक्ष्ये भवधानां सौख्यदायकम् ॥१॥
नमहं वेन्द्रमौलीनां छसत्कान्तिसरोजले ।
यस्य पाषाण्य प्राप भ्रोल्लसत्कमलप्रियम् ॥२॥
सर्वसौभाग्यसन्दीहं सवशकसमर्चितम् ।
योऽभवत्सर्वसौख्यानां कारणं भव्यदेहिनाम् ॥३॥
यस्य नामस्मृतिश्चापि करोति परमं सुखम् ।
प्रभा वा भास्करस्योच्चैर्विकारां कमलाकरे ॥४॥
तं नमामि जगत्सारं स्वर्गभोक्तृसुखप्रदम् ।
नेमिनार्थं महामत्स्या तत्पुराणप्रसिद्धये ॥५॥
वन्दे धीश्रुपमाधीशं सुराधीशार्चितकमम् ।
येनाभ्यधायि सद्भूमौ विनेयानां विनाश्रमम् ॥६॥

अजित जितकन्दपं त नमामि जगद्भितम् ।
 यो जिता नेत्र प्रतान्मा रागङ्गेपात्रिशत्रुभि ॥५॥
 सम्भवं भद्रसन्तापसन्दोहक्षयकारकम् ।
 वन्देऽभिनन्दन देव देवदेवाग्निनायकम् ॥५॥
 सस्तुवे सुमतिं देवं भव्यानां सुमतिप्रदम् ।
 पद्मप्रभ प्रभाधीश प्रमिद्धमहिमास्पदम् ॥६॥
 श्रीसुपाश्वं जगत्सार मम्पदा शर्मसाधनम् ।
 चन्द्रप्रभ प्रभासार सर्वसङ्गेशनाशनम् ॥१०॥
 पुष्पदन्त लसत्कुन्दपुष्पसत्कान्तिसुन्दरम् ।
 वन्देऽहं शीतल देव शीतलोत्तमवाग्भरम् ॥११॥
 श्रेयोजिन नमाम्युच्चै मारश्रेयोनिबन्धनम् ।
 वासुप्रज्य जगत्प्रज्य प्रयुद्धरुमलाननम् ॥१२॥
 नमामि विमलाधीशं केवलज्ञानभास्करम् ।
 वन्देऽनन्तजिन भक्तयानन्तानन्तसुखाकरम् ॥१३॥
 धर्मं सद्धर्मतीर्थेश सुरासुरसमर्चितम् ।
 शान्तिनाथं भजाम्येतं सर्वमन्त्र्यं कसम्मतम् ॥१४॥
 वन्दे कुन्धुजिनाधीश कुथ्वादो च दयास्पदम् ।
 अरं देवं सदा वन्दे सार साररमाप्रदम् ॥१५॥
 मल्लि मोहारिसन्मल्ल वन्दे नि शल्यधामकम् ।
 सुव्रत तं नमाम्येत मुनिसुव्रतनायकम् ॥१६॥
 श्रीनेमिं सस्तुवे देवं नमद्देवेन्द्रसंस्तुतम् ।
 नेमिनार्थं जगन्नार्थ वन्दे सर्वामराचितम् ॥१७॥
 प्रमिद्धमहिमासार पार्श्वनाथ जिनेश्वरम् ।
 वन्दे श्रीवीरतीर्थेशं वीरवीर सुखाकरम् ॥१८॥
 पते तीर्थकराधीशा सर्वदेवेन्द्रवन्दिता ।
 सभ्तु मे शान्तिकर्त्तारश्चान्ये कालत्रयोद्भवा ॥१९॥
 त्रैलोक्यशिखरारूढाः सिद्धा ससारपारगा ।
 ते मे नित्य समाराध्या सन्तु सत्कार्यसिद्धिदाः ॥२०॥
 वन्देऽहं भारतीं जैनीं जगद्भवान्तविनाशिनीम् ।
 भासिनीं सर्वतत्त्वानां भानुभामिव निर्मलाम् ॥२१॥

रसत्रयपयितायां मुनीनां शर्मकारिणाम् ।
 पादाभोजद्वय वन्दे ससाराम्बुधितारणम् ॥२२॥
 शुद्धश्रीमूलसहाय्ये प्रोत्सुङ्गोदयभूधर ।
 मानुर्महारक स्वामी जीयान्मे महिम्नूषण ॥२३॥
 × × × ×

मध्यभाग—(पूर्व पद्य ७१ पक्ति ११) *

गच्छद्वीपलपत्रौघे प्रसूनै पद्मरागजै ।
 बभौ वैत्यद्रुमो नित्य भगधानां विसरल्लक ॥
 तत्पुष्पप्रचुरामोदसक्तसुमरारखै ।
 सन्तोषाञ्चैत्यवृत्तोऽसौ चक्रे वा सस्तुति प्रभो ॥
 महार्घगनिनादेन घोषयन्निव निर्मलम् ।
 मोहापातिजयाहातं यशो नेमिजिनेशिनः ॥
 च्चर्जाशुकैःशोकौऽसौ पवनान्दोलितमुदा ।
 स्फेदयन् वा बभौ गाढ जनानां पापसञ्चयम् ॥
 × × × ×

अन्तिम भाग—

गच्छे श्रीमतिमूलसघटिलके सारस्वतीये हुये
 विद्यानन्दिप्रपदशुद्धकमलोद्भासप्रदो भास्कर ।
 ज्ञानभ्यामरतं प्रसिद्धमहिमा चारित्र्यबुद्धामयि
 श्रीमहारकमालम्बुषणशुक्कीयात् सतां भूतले ॥
 प्रोद्यत्सम्यक्तवरसो जिनकथितमहासतमगोतरंगै
 निर्धूतैकान्तमिध्यामतेमलमिकरफोघनक्राविदूर ।
 श्रीमगजैनेन्द्रवाक्यामृतविशदरस श्रीजिनेन्द्रप्रवृद्धि
 जीयान्मे खरिष्यो धतन्निख्यलसत्पुण्यपरयः भुक्तान्वि ॥
 मिध्याबाधांघकारक्षयकरणरवि श्रीजिनेन्द्राभिपन्न
 द्वन्द्वे निर्द्वन्द्वभक्तिजिनगणितमहाज्ञानविज्ञानसिन्धु ।
 चारित्र्योत्कण्ठमारी सवस्यहरयो मन्मलोकैकबन्धु
 जीयावाचार्यवर्यो विशदगुणनिधि सिंहनन्दी मुनीन्द्र ॥

* मध्य भाग और अन्तिम भाग भवन की १११ नं वाली प्रति से ली गई है क्योंकि प्रस्तुत प्रति बहुत चमूद है ।

यस्योपदेशवशतो जिनपुगवस्य
 नेमे पुराणमनुल जिवसौख्यकारि
 चक्रे मयापि अतितुच्छतयात्र भक्त्या
 कुर्यादिदं शुभमत मम मङ्गलानि ॥
 शान्तिं कान्तिं सुकीर्तिं सकलसुखयुतां सम्पदाञ्चायुश्च
 सौभाग्य साधुसग सुरपतिमहित सारजेनेन्द्रधर्मम् ।
 विद्यां गोत्र पवित्रं सुजनजन . . .
 श्रीनेमे सत्पुराणम् . . . ॥

भुवनैकचूडामणिश्रीनेमिजिनपुराणे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्यश्रीसिहनन्दि-
 नामाङ्किते ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीनेमितीर्थङ्करपरमदेवपञ्चमङ्गल्याणकव्यावर्णनो नाम
 पद्मनामनवमवलदेवकृष्णनामनवमनारायणजरासन्धनामप्रतिनारायणचरित्रव्यावर्णनो नाम
 षोडशोऽधिकार समाप्तः ।

यह ब्रह्मचारी नेमिदत्त वि० सं० १५७५ के हैं। इन्होंने वर्धमानपुराण, धर्मपोयूपवर्षण-
 श्रावकाचार, आराधनाकथाकोप, श्रीपालचरित्र, प्रियकरचरित्र आदि कई ग्रन्थों की रचना
 की है। इनमें से एक-दो ग्रन्थ छप भी चुके हैं। मूलसष षव सरस्वती गच्छवाले
 श्रीभट्टारक मल्लिभूषण के यह शिष्य हैं। प्रशस्ति में इन्होंने सिंहनन्दी जी की वडी प्रशंसा
 की है और लिखा है कि इन्हीं की प्रेरणा से इस ग्रन्थ का मैंने प्रणयन किया है।
 नेमिदत्त जी ने आराधनाकथाकोप की प्रशस्ति में 'यशस्तिलकचन्द्रिका' आदि के कर्ता,
 श्रीश्रुतसागरसूरि को गुरुभावना में स्मरण किया है और इन्होंने इस ग्रन्थ में मल्लिभूषण
 की वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है। नेमिदत्त जी की
 रचनायें साहित्यिक दृष्टि से सुन्दर षव सरल हैं।

(५१) ग्रन्थ न० ६८
क

वर्द्धमानकाव्य

कर्ता—जयमित्र

विषय—काव्य

भाषा—अपभ्रंश

लम्बाई १२१ इञ्च

चौडाइ ६॥ इञ्च

पत्रसंख्या ५६

प्रारम्भिक भाग—

सिरि परमप्ययमाथय सुहृगुणपावय ॥
 जियथियजम्मजराभरय ॥
 सासयसिरसुद्ध पणयपुरदह ॥
 रिसहु याथिवि तिहुयगसरय ॥
 पणवेपियय पुय अहंताय दुक्कम्ममहारिकयंताण ॥
 वसुगुणसजोयसमिद्धाण सिद्धाय तिजयपसिद्धाण ॥
 सुराय सुद्धसविताय वयसजममावियचित्ताय ॥
 पयडियसमग्गसस्सायाय मव्वयणहो गिद्धउम्मायाय ॥
 साइय साहिय मोक्खाय सुविमुद्ध भ्रूयविहि वक्खत्ताय ॥
 समसशाणसुधरित्ताय सति सुद्धय यथमि पविताय ॥
 वसहाइसुगोतमयां माय सुगणायं सज्जम धामाय ॥

अथहारिवकेवलवताय ॥ सुर विरय विसाल महसाय ॥धत्ता ॥ गरल्लोयहो मइग्गा
 कुयायविहडयो ॥ तिहिसमयहि पयडिय सम्भय ॥ अथरवि सिच्छकर तिययसुहुकर ॥ तिप्ये
 सुर सिव यपरिगया ॥१॥ पवणपविति यज्जा हुम्मेवह चिंतामणि वसमत्त समीहई ॥ रवि
 वित्त वतमभरणि यासिय जय णिव धंद्धिय सुर कुम्भामिणि ॥ सग्ग महिव सुरसच्छ
 विहसिया गिरिभूयविकाहिकुलहिसमासिय ॥ नीर वराय हस गयमामिणी क्रोमुईव कुवल्लय
 सिरिदाविणी ॥ अथविशिय मुहज सासय देविउ णसेसउ जिणवर पयसेविउ ॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ २७, पक्ति ५) —

तु सुणिवि पयंपर मगहराउ किं साहुलपियकह बहु पलाउ ॥ मुणि कि अयाणु अहि
कि असक्कु ज दुख सहिसइ तजि थक्कु ॥१०॥ ता चेलणाह जपिउ गरेंदु णउ तज्जइ
त्ताणडिउ मुणिंदु ॥ जद्वि रगु वक्कुगुणवतगजेम कुडिच्छ दिविस गुरुण जाइ तेम ॥
उवसग्गु होतुमणे विलाहु दुक्खवि सुक्खागमुमुणइ साउ ॥ णउ सिंदइ मक्खरु मणि धरेइ
सुपससणा इनो सुण करेइ ॥ तिणु कुचणि अरिसुहिसम गिणंतु तव तवइ घोव कम्मइ
इणतु ॥ वावीस परोसह सइणमल्लु वभवय धारउ मुणिससञ्जु ॥ णणे परियाण इणोय
मग्गु णविरो कारिणी उवलंतहु महुपहु ॥

X

X

X

X

अन्तिम भाग—

अथ सव सरेऽस्मिन् श्रीनृपविक्रमादित्यराज्यसवत्सर १६०० तत्र वर्षे फाल्गुनमासे
कृष्णपक्षे द्वितीयायां तिथौ शुक्रवासरे श्रीतिजारास्थानवास्तव्यो साहि आलमुराज्यप्रवर्त्तमाने
श्रीकाण्ठासवे माथुरान्वये पुष्करगणे भट्टारकश्रीमलयकोत्तिदेवा' तत्पट्टे भट्टारकश्रीगुणभद्र-
देवा तद्राज्ञाये अश्रोतकान्वये गर्गगोत्रे साहु तोल्हा भार्या राणी तस्य पुत्र जिनदास तस्य
भार्या शोभा तत्पुत्रा. पञ्च प्रथमपुत्र साधुमहादासु द्वितीयपुत्र साधुगेल्हा तृतीयपुत्र
साधनुगराजु चतुर्थपुत्र जगराजु पञ्चमपुत्र साधुसिंह जिनदासप्रथमपुत्र महादासु तस्य
भार्या दोदासही तस्य पुत्र तेजनु तस्य भार्या लाडो जिनदासद्वितीयपुत्र गेल्हा तस्य
भार्या खोमाहो तस्य पुत्रो दोमानु तस्य भार्या भागो तस्य पुत्र नगराज तस्य
भार्या धणपालही पुत्रा चत्वार प्रथमपुत्रो जीवन्दु तस्य भार्या भीख्यो द्वितीयपुत्र
अमियपाल तृतीयपुत्र गज चतुर्थो दरगहमल्लु जिणदासपुत्र चतुर्थो जगराज्य तस्य भार्या
धोनाही तस्य तृतीय वुच्छा तस्य भार्या चाडिणी द्वितीयपुत्र. मसक् तृतीय तोत्
जिनदासपञ्चमपुत्र सोदू तस्य भार्या दूतस्य भार्या लष्मणयही तस्य चतुर्थभार्या कपूरी
पतासां मध्ये साधुसोन्न इन्द्रश्रीश्रेणिक तासु नानोवरणीकर्मक्षयिणी तेन (तिषां ज्ञाना-
वरणकर्मक्षयार्थं) आत्मपठनार्थं कर्मक्षयनिमित्त लिख्यते ।

इस अपभ्रंश काव्य के रचयिता पण्डित जयमित्र मालूम होते हैं। क्योंकि इसमें एक जगह सर्ग के अन्त में 'इय पडिया सिरो जयमितह हल्लवि (?) विरइये वड्डमाणकान्ये' यो स्पष्ट अङ्कित है। परन्तु यह जयमित्र कौन है, यह पता नहीं लगता। ग्रन्थ में रचयिता की प्रशस्ति आदि कुछ भी नहीं है। हां, प्रतिकराने वाले की वि० सं० १६०० की एक प्रशस्ति लगी हुई अवश्य। भवन को यह प्रति बहुत अशुद्ध है। इसकी दूसरी शुद्ध प्रति की प्राप्ति से संभवतः ग्रन्थकर्ता जयमित्र का कुछ विशेष हाल मालूम हो सकता है।

(५२) ग्रन्थ न० $\frac{७५}{५५}$ +

जिनसहस्रनामटीका

कतं—भाचार्यं ग्रन्थसागर

[अथ स्तोत्रविषयिणी टीका

भाषा—संस्कृत

नववर्ष १ इ. १९०५

वैशाख ७ इ. १९०५

१२७ *

पारम्भिक भाग—

ध्यात्वा विद्यानञ्ज समतमञ्ज मुनाद्रमर्हन्तम् ।

श्रीमत्सहस्रनाम्नां विद्यरणमह यच्च ससिद्धौ ॥

अथ श्रीमद्वाशाधरसूरिगृहस्थाचार्यवर्या जिनयज्ञादिसकलशास्त्रप्रवीणस्तकथाकरणद्वयोऽलकारसाहित्यसिद्धांतस्वसमयपरसमयागमनिपुणबुद्धिं ससारपारापारपतनमयभीतो निग्रथ लक्षणमोक्षमार्गभ्रष्टालु प्रज्ञापुञ्ज इति निरुदावलिधिराजमानो जिनसहस्रनामस्तथन चिरीदु प्रमो भवांगभोगेषु' इत्यादि स्वामिप्रायससूचनपर श्लोकमिममाह । धीविद्यानदसूरिणां शिष्या धीभ्रुतसागरसूरिजामानस्तु ताद्वरण कुर्वन्तीति 'प्रमो भवांगभोगेषु निर्विण्यो बुद्धमीरक । यष विज्ञायामि त्वां शरण्य करुणाण्वम् ॥' हे प्रमो—भुवनैकनाथ य कोऽपि तीर्णकरपरमदेवक्षस्येद् सवोधनम् । यष—प्रतिपत्तिभूतोऽह आशाधरमहाकवि । त्वां—भवतम् । विज्ञापयामि—विज्ञप्तिं करोमि । कथभूतोऽह भवांगभोगेषु—ससारशरीर भोगेषु । निर्विण्य.—निर्वेद प्राप्त ।

x

x

x

x

मध्य भाग (पृष्ठ पष्ठ " ३ पक्ति १)—

विमल—विनष्टो मल कमलकलको यस्य स विमल अथवा विविधा विशिष्ट वा मा लक्ष्मीये पाते (१) विमा ईन्द्राव्यो देवास्तान् लाति निजपादाकांतान् करोति विमल अथवा विगता दूरोहता मा लक्ष्मीयेस्ते विमा निग्र यमुनयस्तान् लाति स्वीकरोति विमल अथवा विगतं विनष्टमलमुधार प्रस्तायन्न यस्य जम स विमल ॥३७॥ अनतजित अनतससार जितवान् अनतजित् अथवा अनतं अलोकाकारं जितवान् केवलज्ञानेन तत्पार गतवान् अनतजित अथवा अनतविधि ॥३८॥ महावीर—महाज्ञासौ वीर महावीर श्रेष्ठे महावीर ॥३९॥

x

x

x

+ इलको ईक्ष्णु न कानी एक प्रति और है । पर वह बहुत जीर्ण है ।

* बीच बीच में कुछ पत्त नहीं हैं ।

अन्तिम भाग—

श्रद्धहत सिद्धनाथास्त्रिविधमुनिजना भारतीवार्हतीद्धा ।

सद्वन्द्य कुन्दकुन्डो विबुधजनहृदानन्दन. पूज्यपाद. ।

विद्यानन्दोऽकलङ्कः कलिमलहरणश्रीसमन्तादिभद्रो-

भूयान्मे भद्रवाहुर्भवभयमथनो मंगल गौतमाद्य ॥

श्रीपद्मनन्दिपरमात्मपर' पवित्रो देवेन्द्रकीर्तिरथ माधुजनाभिवन्द्य ।

विद्यादिनन्दिवरसूरिरनल्पबोध. श्रीमल्लिभूषण इतोऽस्तु च मंगल मे ॥२॥

अद् (?) पट्टे भद्राविक्रमतपुटीघट्टनपट्टर्घट्टद्धर्मध्यान स्फुटपरमभट्टारकपद ।

प्रभापूज समाद्विजितवरस्मरणर सुधीर्लक्ष्मोश्चन्द्रश्चरणचतुरो मे विजयते ॥३॥

आत (?) चन विदुर्पा हृदयाम्बुजानाम्

आनन्दन मुनिजनस्य विमुक्तिहेतो ।

सद्वीकन विविधशास्त्रविचारचारम्

चेतश्चमत्कृतिरुत श्रुतसागरेण ॥४॥

श्रीश्रुतसागरकृतिवरवचनामृतमन्त्रैर्विहितम् ।

जन्मजरामरणहर निरन्तरं शिव लब्धम् ॥५॥

अस्ति स्वस्ति समस्तसर्वतिलरु श्रीमूलसधोऽनघ

वृत्त यत्र मुमुक्षुसर्वशिवदं सनेवित साधुभि ।

विद्यानन्दिगुरुस्त्रिहास्ति गुणवद्भङ्गे गिर साध्वतम्

तच्छिष्यश्रुतसागरेण रचिता टीका चिर नन्दतु ॥६॥

श्रीहत्याचार्यश्रुतसागरविरचितायां जिनसहस्रनामटीकायामन्तकृच्छतविवरणयो नाम दशमोऽध्याय ।

इस जिनसहस्रनामटीका के रचयिता श्रीश्रुतसागरसूरि हैं । माणिकचन्द्र-विगम्बर-जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित 'पट्टप्राभृतादिसग्रह' को भूमिका में श्रीयुत पं० नाथूराम जी प्रेमी ने इनका जो परिचय दिया है, वही यथावत् नीचे उद्धृत कर दिया जाता है—

पट्टप्राभृत या पट्टपाहुड के टीकाकार आचार्य श्रुतसागर बहुश्रुत विद्वान् थे । इस टीका से और यशस्विलक-चन्द्रिका टीका से मालूम होता है कि वे कलिकालसर्वज्ञ, कलिकाल गौतमस्वामी, उभयभाषाकविचक्रवर्ती आदि महती पदवियों से अलंकृत थे । उन्होंने 'नवनवति' (९९) महावादियों को पराजित किया था ।

वे मूलसद्य सरस्वतीगच्छे और बलात्कारण्य के भावाय और विद्यानन्दी मट्टारक के शिष्य थे। उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार थी—पद्मनन्दी—देवेन्द्रकीर्ति—विद्यानन्दी।

पण्तु विद्यानन्दी मट्टारक के पट्ट पर जान पड़ता है उनको स्थापना नहीं हुई थी। क्योंकि विद्यानन्दी के बाद की गुरुपरम्परा इस प्रकार मिलती है—विद्यानन्दी—मल्लिभूषण—लक्ष्मी चन्द्र।

स्वर्गीय दानवीर सठ माणिकचन्द्र जी के ग्रन्थमागडार में प० आशाधर के महाभियेक नामक ग्रन्थ को टीका है, उसके अन्त में इस प्रकार लिखा है —

‘ श्रीविद्याविगुरोबुद्धिगुरो पादपंकजस्रमर ।

श्रीधृतसागर इति देशवती तिलकश्रीकते स्मैत्रं ॥

इति ब्रह्मश्रीधृतसागरकृता महाभियेकनीका समाप्ता ॥

धीरस्तु लेखरुपाठकयो ॥ शुभ भवतु ॥श्री॥

मवत् १५/२ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्षे पंचम्यां तिथौ रवौ श्रीभार्तिजिनचैत्यालये श्रीमूल सवे सरस्वतीगच्छे बलात्कारण्य धीकुन्दकुन्दाचार्यान्यये मट्टारकधीपद्मनदिदेवास्तत्पट्टे मट्टारकधीदेवेन्द्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे मट्टारकधीविद्यानदिदेवास्तत्पट्टे मट्टारकधीमल्लिभूषणदेवास्तत्पट्टे मट्टारकधीलक्ष्मीचन्द्रदेवास्तेषां शिष्यवरब्रह्मश्रीज्ञानसागरपठनार्थं ॥ आर्या श्रीविमलश्री चेली मट्टारक धीलक्ष्मीचन्द्रदीक्षिता विनयश्रिया स्वयं लिखत्या प्रदत्त महाभियेकभाष्य ॥ शुभ भवतु ॥ कल्याणं भूयात् ॥ धीरस्तु ॥

इससे मालूम होता है कि विद्यानन्दी के पट्ट पर मल्लिभूषण की और उनके पट्ट पर लक्ष्मी चन्द्र की स्थापना हुई थी। यशस्तिलकटीका म धृतसागर ने मल्लिभूषण को अपना गुरु ज्ञाता लिखा है। इससे भी मालूम होता है कि विद्यानन्दी के उत्तराधिकारी मल्लिभूषण ही हुए होंगे। यशस्तिलकचन्द्रिका टीका के तीसरे भागवास के अन्त में लिखा है—

इति श्रीयज्ञ देवेन्द्रकीर्तिविद्याविमल्लिभूषणज्ञानेन मट्टारकधीमल्लिभूषणगुरुपरमा भोग्युक्रान्ता गुजरदेशसिंहासनमट्टारकधीलक्ष्मीचन्द्रकामिमतेन मालवदेशमट्टारकधीसिंह नदिप्राप्तया यतिश्रीसिद्धान्तसागरश्याख्याकृतिनिमित्त नधनवतिमहामहाबादिस्याद्वाद लक्ष्मिद्वयेन सङ्ख्याकरखड्गोऽङ्ग कारसिद्धान्तसाहित्याविशाखनिपुणमतिना प्राकृतश्याकरणा धनेकशास्त्रचम्बुना सूरिधीधृतसागर्य विरचितायां यशस्तिलकचन्द्रिकामिधानायां यशो धरमहागवचरितचम्बुमहाकाव्यनीकायां यशोधरमहापण्डपञ्जलक्ष्मीचिनीद्वयान नाम तृतीयाशवासचन्द्रिका परिसमाप्ता ।’

इससे मालूम होता है कि उस समय गुजर देश के पट्ट पर मट्टारक लक्ष्मीचन्द्र स्थित थे और मल्लिभूषण का शायद स्वगवास हो चुका था।

लक्ष्मीचन्द्र के बाद भी श्रीश्रुतसागर के पदाधिकारी होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता । जान पड़ता है वे कभी सिंहासनासीन हुए ही नहीं ।

ये पद्मनदी, विद्यानदी, आदि सब गुजरात के ही भट्टारक हुए हैं । परन्तु यह मालूम न हो सका कि गुजरात के किस स्थान की गद्दी को इन्होंने सुशोभित किया था । ईडर, सूरत, सोजित्वा आदि कई स्थानों में भट्टारकों के पद रहे हैं । यशास्तलरु की रचना के समय मालवे के पद पर सिंहनदी भट्टारक थे । इन्हींकी प्रेरणा से श्रुतसागरसूरि ने नित्यमहोद्योत या महाभिषेक की भी टीका लिखी थी ।

श्रुतसागरसूरि के भी अनेक शिष्य रहे होंगे । इसी ग्रन्थमाला के तत्वानुशासनादि-संग्रह में इनके एक श्रीचन्द्र नामक शिष्य की रची हुई वैराग्यमणिमाला प्रकाशित हुई है । आराधनाकथाकोश, नेमिपुराण, आदि अनेक ग्रन्थों के कर्त्ता ब्रह्मचारी नेमिदत्त ने भी—जो मल्लिभूषण के शिष्य थे—श्रुतसागर को गुरुभाषना से स्मरण किया है ॥ नेमिदत्त ने भी मल्लिभूषण की वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है । उन्होंने सिंहनदी का भी उल्लेख किया है ।

श्रुतसागर का अभी तक टीकाग्रन्थों के अतिरिक्त कोई स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है ।

उनके बनाये हुए ग्रन्थों का परिचय आगे दिया जाता है —

१ यशस्तिनलरुचन्द्रिका । यह निर्गमसागर प्रेस की 'काव्यमाला' में प्रकाशित हो चुकी है । यह टीका अपूर्ण है—५व आश्वास के कुछ अंश की ओर छूटे आश्वास की टीका नहीं है । जान पड़ता है, यही उनकी अन्तिम रचना है । यह टीका अनेक स्थानों के ग्रन्थभाण्डारों में मिलती है, परन्तु सर्वत्र ही अपूर्ण है ।

२ महाभिषेकटीका । सुप्रसिद्ध पंडित आशाधर जी के बनाये हुए नित्यमहोद्योत या महाभिषेक नामक ग्रन्थ को यह टीका है । इसका अन्तिम अंश ऊपर उद्धृत किया जा चुका है । उससे मालूम होता है कि उस समय श्रुतसागर देशवती या ब्रह्मचारी थे, सूरि या आचार्य नहीं हुए थे ।

३ तत्त्वार्थटीका । यह श्रुतसागरी टीका के नाम से प्रसिद्ध है । इस लेख के लिखते समय हम इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी । परन्तु यह दुष्प्राप्य नहीं है—इसका भाषा-नुवाद भी हो चुका है ।

४ तत्त्वप्रकाशिका । आचार्य शुभचन्द्रकृत सानार्णव के अन्तर्गत जो गद्यभाग है,

• आराधनाकथाकोश की प्रगति देने ।

यह उसीकी टीका है। इसकी एक प्रति स्व० मठ माणिकचन्द्र जी के प्रथमसमग्र में मौजूद है। उसकी प्रशस्ति देखिये —

आचार्यैरिह शुद्धतत्त्वमतिभि धीसिंहनद्याह्यै
सप्रार्थ्यं श्रुतसागर [रा] कृ [कि] तवरं भाष्य शुभ कारित ।
गद्यानां गुणवत्प्रिय विनयतो ज्ञानार्थवस्यांतर
विद्यानविगुरुभसाव्रजनित देयादमेव सुखम् ॥

इति श्रीज्ञानार्थवस्य (१) स्थितगद्यनीका तत्त्वत्रयप्रकाशिना [का] समाप्त [ता]
॥ शुभमस्तु ॥”

५ जिनसहस्रनाम टीका । यह प० आशाधरकृत जिनसहस्रनाम की विस्तृत टीका है। इसकी भी एक प्रति सेठ जो के प्रथमसमग्र में मौजूद है। शब्दबोध और व्युत्पत्ति बोध के अमितापियों के लिये बड़े काम की चीज है। इसको भी प्रशस्ति देखिये —

‘श्रीश्यामद्विपरमात्मरत्न परिज्ञो देवेंद्रकोर्तिरथ साधुजनामिथय ।
विद्यादिनिर्वरसूरिनलबोध’, श्रीमल्लिभूषण इतोऽस्तु च मंगल मे ॥२॥

अद् (१) पट्टे भट्टादिकप्रतयद्राघट्टनपट्ट
घन्दर्मध्यान स्फुणपरमभट्टारकपद् ।
प्रभार्पुज सयद्विजितवरवीरस्मरनर,
सुधीलक्ष्मीचन्द्रश्चरणाचतुरोऽसौ विजयते ॥३॥
अतं (१) धन सुविदुषां हृदयानुजानां
भानन्दनं मुनिजनस्य विमुक्तिहेतो
सङ्कोकन विविधशास्त्रविचारचारु
चेतश्चमत्कृतिकृतं श्रुतसागरण ॥४॥

श्रुतसागरकृतियरधचनामृतपानमन्त्रयै(१)विहितं ।
अम्भजराप्रणहर निरंतर तै शिवं लब्ध ॥५॥
अस्ति स्वस्ति समस्तसप्ततिलक श्रीमूलसधोऽनघं,
धृत्त धन मुमुक्षुवर्गशिवद संसेवित साधुभि ।
विद्यानविगुरुस्त्विहास्तिगुणवद्बुद्धे गिर सांप्रत,
तच्छिष्य श्रुतसागरेण रचिता टीका चिर नस्तु ॥६॥

इतिसूरिश्रीश्रुतसागरविरचिताया जिननामसहस्रटीकायामतकृष्णकृतविवरणो नाम
प्रथमोऽध्याय ॥१०॥ श्रीविद्यानविगुरुभ्यो नमः ।”

६ प्राकृतव्याकरण । यह ग्रन्थ हमे अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है । यशस्तिलकटीका में एक जगह उन्होंने अपने लिए यह विज्ञेयण भी दिया है—“प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्र-रचनावञ्जुना” इससे और पट्टपाहुडटीका में जो जगह-जगह प्राकृतव्याकरण के सूत्र दिये हैं, उनसे भी मालूम होता है कि इनका बनाया हुआ कोई प्राकृतव्याकरण अवश्य है । इस ग्रन्थ का पता लगाने की बहुत आवश्यकता है ।

इनके सिवाय तर्कदीपक, विक्रमप्रबन्ध, श्रुतरत्नवाचतार, आशाधनकृत प्रजाप्रबन्ध की टीका, बृहत्कथाकोश आदि आर भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुए रहे जाते हैं ।

इन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु यह प्राय निश्चित है कि ये विक्रम की १६ वीं शताब्दि में हुए हैं । क्योंकि—

१—ऊपर जिस महाभिषेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है, वह वि० स० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिए दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वयं अपनी टीकाओं में कई जगह किया है ।

२—आराधनाकथाकोश के कर्त्ता ब्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुए हैं और वे श्रुतसागर के गुरुव्रता मल्लिभूषण के शिष्य थे ।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्द जी के स० १९५४ के बनाए हुए हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० सवत् १५५० लिखा हुआ है ।

४—पट्टप्राभृतटीका में जगह-जगह लौकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बरसम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी ग्रन्थ वि० सवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है । अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना में अधिक नहीं तो चालीस-पचास वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये ।

(५३) ग्रन्थ नं० $\frac{७६}{क}$

पार्श्वपुराण

कर्ता—सकलकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३ इंच

चौड़ाई ७ इंच

पत्रसंख्या ६६

प्रारम्भिक भाग—

नमः श्रीपार्श्वनाथाय विश्वविघ्नोघनाशिने ।
 त्रिजगत्स्वामिने मूर्धुर्भा ह्यनतमहिमात्मने ॥१॥
 जित्वा महोपसगन्ध्वी ज्योतिर्देवकृताभुवि ।
 स्वधीय केवल ध्यक्तं धक्ते चेदे तमद्भुतम् ॥२॥
 यन्नामस्मृतिमात्रेण विघ्ना कायविनाशिन ।
 विलीयन्तेऽखिला नृणां सुमन्त्रेण विषाणि वा ॥३॥
 भरपो दुर्निवार हि त्यक्त्वा वैरं ब्रह्मन्त्यहो ।
 बन्धुमार्षं सतां नूनं यन्नामजरनेन हि ॥४॥
 ह्रुदा देवा दुःखारा योढयति न जानुषित् ।
 चाहिसिहादयोऽक्षोपच्छरणान्वितचेतसाम् ॥५॥
 जसाभ्या बुध्करा रोगां सर्वे यान्ति क्षणात्क्षयम् ।
 यन्नामत्रेपजेनाऽपि तर्मासि भानुना यथा ॥६॥
 यद्बुध्यानेन प्रणश्यन्त्यत्नानन्ता कमराशय ।
 यद्यतो परविघ्नादिनाशे का यिस्मय सताम् ॥७॥
 इत्यादि महिमोषेतं जगन्नाथ जगद्गुरुम् ।
 तं श्रीपार्श्वं स्तुवे वंदे प्रारम्भविघ्नशान्तये ॥८॥
 दिव्यबाहिरयौरादौ रागद्वेष तमन्धयम् ।
 उच्छिद्य सप्रकाशयोच्चैर्मौल्यमार्गं सतां धयम् ॥९॥

x

x

x

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ४८, पक्ति १) —

नम श्रीमुक्तिकान्ताय काममल्लविनाशिने ।
 श्रीपार्श्वस्वामिने सिद्धये जगद्भ्रं विद्राट्मने ॥१॥
 दिग्भि. साद्ध' नभोऽप्यासीर्भ्रिर्मलं जिनजन्मत' ।
 अम्लानकुसुमैश्चक्रु पुष्पवृष्टिं सुरद्रुमाः ॥२॥
 अनाहता महाध्वाना दधतुर्दिविजानका ।
 चवौ तदा मरुन्मन्द सुगंधि शिशिरः स्वयम् ॥३॥
 अभृद्दघटारवोऽतीव गम्भीरो निर्जरान्प्रति ।
 वदतीव जिनेन्द्रस्य जन्म नाकालये स्वयम् ॥४॥
 धासनानि सुरेजानामकस्मात्प्रचक्रम्पिरे ।
 देवानुच्चासनेभ्योऽध पातयन्तीव भक्तये ॥५॥
 शिरांसि प्रचलन्मोलिमणीनि प्रणर्ति दधु ।
 कुर्वन्तीव नमस्कार भक्त्या तीर्थेशपादयोः ॥६॥
 दृष्ट्वेत्यादिमहाश्चर्यं ह्यात्वा तीर्थेशजन्म ते ।
 कल्पेशावधिज्ञानाजन्मद्वाने मर्ति व्यधुः ॥७॥

X X X

अन्तम भाग —

न कीर्त्तिपूजादिसुलाभलोभाद् वा कवित्वाद्यभिमानतोऽयम् ।
 प्रथ कृत किन्तु परार्थबुद्ध्या स्वस्यापरेपाद्वा हिताय नूनम् ॥९२॥
 अक्षरस्वरसुसधिसुमात्रादिच्युतं यदपि किञ्चिदपीह ।
 ज्ञानहीनचलचित्तप्रमादात्तच्छमस्व जिनवाणि समस्तम् ॥९३॥
 अथगमजलधिश्रीपार्श्वनाथस्य दिव्य
सकलविशदकीर्त्तिं. प्रादुरासीन्मुनीन्द्रात् ।
 षडिह चरचरित्र तद्धि दत्तै. ननतु (?) [दत्ता स्मरन्तु]
 यतिसुजन(सु)सेव्य जैनधर्मोऽस्ति यावत् ॥९४॥
 सर्वं तीर्थकरा महातिशयिन' सिद्धार्हैरुर्मातिगा
 दिव्याद्याद्भुतसद्गुणाश्च सहिता श्रीसाधवश्च त्रिधा ।
 शुक्लध्यानसुयोगसाधनपरा विद्याम्बुधे पारगा'
 ये ते विश्वगुणारूराश्च शिवद कुर्वन्तु मे मङ्गलम् ॥६५॥

विश्वार्था विश्ववन्द्या सकलवृषधरा मुक्तिकान्ताप्रसक्ता
 हन्तार कमशत्रू सुगुणजलधया जाप्यरूपेण नित्यम् ।
 आराध्या भव्यलोकैरगतिसुखकरास्तोर्थनाथाश्च सिद्धा
 ये तेऽनन्ता मुनीन्द्रा शुभसुखसदन मङ्गल य प्रदद्यु ॥१६॥
 जिनवररुचिमूलो ज्ञानसत्पौठवध
 सकलचरणशालो दानपात्रप्रसून ।
 शिवसुखफलनम्रो धमकल्पद्रुमो य
 सुशिव(सु)फलकामै सेव्यमैवैष्टसिद्धयै ॥१७॥
 धर्मो विश्वसमीहितार्थजनको धर्म इवधुर्धार्मिका ।
 धर्मैणाशु शिव भवन्ति मुनया धर्माय मुक्तयै नम ।
 धर्माश्चास्त्यपरोऽखिलाथसुखदा धमस्य मूल सुहृद्
 धर्मं विस्तमह दधेऽतकमुखाद्दधे धर्म रक्षाशु माम् ॥१८॥
 सर्वे श्रीजिनपुङ्गवाश्च विमला सिद्धा धर्मार्ता विद्
 विश्वार्था गुरवो जिनेन्द्रमुखजा सिद्धान्तधर्मावय ।
 कर्तारो जिनशासनस्य सहिता सवन्दिता सध्रुता
 ये ते मैऽत्र विशन्तु मुक्तिजनके शुद्धिञ्च रक्षत्रये ॥१९॥
 पञ्चादशाधिकान्येवाष्टविंशतिशतान्यपि ।
 श्लोकसंख्याऽस्य विद्धे या सब्रन्धस्य लेखकै ॥१००॥

इति श्रीपाशवनाथचरित्रे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिसिविरचिते श्रीपार्श्वनाथमोक्षगमनो
 नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः समाप्तः ।

ज्ञानमूपण भट्टारक विक्रम की १६ वीं शताब्दी में हुए है। ज्ञानमूपण भुवनकीर्ति के
 पद्य पर, भुवनकीर्ति सकलकीर्ति के पद्य पर और सकलकीर्ति पद्मनन्दी के पद्य पर बैठे थे।
 १६ वीं शताब्दी के बने पर्व लिखे हुए बहुत से ग्रन्थों में इस पद्यावली का उल्लेख पाया
 जाता है। इससे सहज ही में पदान्तरी के पद्य पर प्रतिष्ठित होनेवाले तथा भुवनकीर्ति के
 शुद्ध सकलकीर्ति भट्टारक का समय विक्रम की १५ वीं शताब्दी अनुमान किया जाता है।
 बालिक डॉ० विन्दरनिट्ज का कहना है कि यह सकलकीर्ति लगभग ६० सन् १४६४ में
 स्वर्गासीन हुए थे।*

'ज्ञानाणव' की प्रशस्ति में इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक के सबज में लिखा है कि इन्होंने

अपनी लीलामात्र से शास्त्रसमुद्र को भले प्रकार बढाया है।* 'प्रश्नोत्तररत्नमाला' में सकलभूषण ने इन्हें 'पुराणमुख्योत्तमशास्त्रकारी' विशेषण के साथ स्मरण किया है। जिनदास ब्रह्मचारी ने अपने 'पद्मपुराण' और 'हरिवंशपुराण' में इनका 'महाकवित्वादि-कलाप्रवीणः' ऐसा विशेषण दिया है। 'पारडवपुराण' में शुभचन्द्र भट्टारक ने इनकी प्रशंसा में यह वाक्य कहा है—'कीर्ति कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्री सकला पवित्रा।' इसी प्रकार और भी बहुत से विद्वानों ने इनके महान् ग्रन्थकार होने का उल्लेख किया है। इससे ऐसा अनुमान किया जाता है कि जैन-समाज में सकलकीर्ति के नाम से जो बहुत से ग्रन्थ प्रचलित हैं और जिनपर उनके धनने का रुवत् आदि नहीं दिया है उनका अधिकांश भाग इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक का बनाया हुआ है। १६ वीं शताब्दी में सकलकीर्ति भट्टारक नाम के दूसरे भी एक विद्वान् हुए हैं। परन्तु वे इतने अधिक प्रसिद्ध नहीं थे।†

कामराजकृत 'जयपुराण' की प्रशस्ति में सकलकीर्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य दिये हैं —

आचार्य कुन्दकुन्दारुपस्तस्मादनुक्रमाद्भूत् ।

स सकलकीर्तियोगीशो ज्ञानी भट्टारकेश्वर ॥२॥

येनोद्भूतो गतो धर्मो गुर्जरे चाग्वराट्टिके ।

निर्ग्रन्थेन कवित्वादिगुणानेवार्हता पुरा ॥३॥

तस्माद्भुवनकीर्ति श्रीज्ञानभूषणयोगिराट् ।

विजयकीर्तयोऽभूवन् भट्टारकपदेशिन ॥४॥

इनसे मालूम होता है कि इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक ने, जिनके पट्ट पर कमश भुवन-कीर्ति और ज्ञानभूषण बंटे थे, गुजरात और वागड आदि देशों में जैनधर्म का प्रचार किया है।‡ 'दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' इस ग्रन्थतालिका में भट्टारक सकलकीर्ति के निम्नलिखित ग्रन्थों के नाम उपलब्ध होते हैं—

सिद्धान्तसार, तत्त्वार्थसारदोषक, सारचतुर्विंशतिका, धर्मप्रश्नोत्तर, मूलाचारप्रदीपक, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, यत्याचार, सद्भाषितावली, आदिपुराण, उत्तरपुराण, धर्मनाथपुराण, शान्तिनाथपुराण, मल्लिनाथपुराण, पार्श्वनाथपुराण, वर्धमानपुराण, सिद्धान्तमुक्तावली, कर्मविपाक, देवसेनकृत तत्त्वार्थसारटीका, धन्यकुमारचरित्र, जम्बूस्वामिचरित्र, श्रीपाल-चरित्र, गजसुकुमालचरित्र, सुदर्शनचरित्र, यशोधरचरित्र, अष्टाहिकासर्वतोभद्र, उपदेशरत्न-माला, सुकुमालचरित्र ।

इनमें से प्रश्नोत्तरश्रावकाचार आदि कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं ।

* भट्टारकपदारूढ सकलाद्यन्तकीर्तिभाक् । येन शास्त्राङ्गुधि सम्यग् वर्धितो निजलीलया ॥१४॥

† देखें—'जैनहितैषी' भाग ११, अंक १२

‡ देखें—'जैनहितैषी' भाग १२, पृष्ठ ६०-६१

(५४) ग्रन्थ न० ७८
क

कातंत्रविस्तर

कर्त्ता—यद्द मान

विषय—व्याकरण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२। इंच

चौडाई ७ इंच

पत्रसंख्या २५०

प्रारम्भिक भाग—

जिनैश्वर नमस्कृत्य गौतमं तद्वन्तरम् ।
 सुगम क्रियतेऽस्मामिरय कातन्त्रविस्तर ॥
 अभियोगपरा पूर्वं भाषायां यद्वचभाषिरे ।
 प्रायेण तदिहास्मामि परित्यक्त न किञ्चन ॥

सिद्धो षणसमाज्ञाय । सकललोकप्रसिद्धः प्रसिद्धसंज्ञासहित इह शास्त्रे षणसमाज्ञायो
 वेदितव्य । षणां अकाराद्यः । तेषां समाज्ञायः पाठक्रमः । तत्र चतुर्दशादौ स्वरः । तत्र
 सिद्धवर्णसमाज्ञायो आदौ चतुर्दश षणां स्वरसंज्ञा भवन्ति । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ
 ए ऐ ओ औ । लृवणस्य स्वरसंज्ञा किं प्रयोजनम् । योऽपि लृकारः पठति लृच्छाद्य
 इत्यादि । स्वरप्रदेशः । स्वरोऽव्ययधर्मे नामि इत्येवमाद्यः । दश समानाः । तस्मिन् षण
 समाज्ञायविषये आदौ दश षणां समानसंज्ञा भवन्ति । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ ।
 लृवणस्य समानसंज्ञा किं प्रयोजनम् । गम इत्याख्यादन्तीगमदित्यादौ सन्धज्ञावो न भवति ।
 समानप्रदेशः । समान सवर्णो दीर्घीभवति परञ्चलोपम् इत्येवमाद्यः । तेषां द्वौ द्वावभ्यो-
ऽन्यस्य सवर्णो । तेषामेव दशानां समानानां मध्ये यौ यौ द्वौ द्वौ षणो तावभ्योन्यस्य सवर्ण
 सङ्घो भवतः । अमा इ इ उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ । द्वयोर्द्वयोर्दीर्घयोश्चान्यर्थबलाद्भ्रतिक्रमे च
 तेषां प्रहणस्य क्रमविवर्णार्थस्वात्सवर्णसंज्ञा सिद्धेति । लृवणस्य सवर्णसंज्ञा किं प्रयोजनम् ।
 शङ्ककार इति लृत्वं न भवति । सवर्णप्रदेशः । समान सवर्णो दीर्घीभवति परञ्च लोपम्
इत्याद्यः । ऋकारलृकारौ च । अन्योऽयस्य सवर्णसङ्घो भवतः ।

x

x

x

x

मध्य भाग—(पूर्व पृष्ठ १२६, पक्ति १०)

नाम्नां समासो युक्तार्थ । नाम्नां च नामानि च (?) नाम्नां समुदायो युक्तार्थं समास-
संज्ञो भवति । यदि वा युक्तश्चासावर्थश्चेति शब्दोऽपि तथार्थोभिधानाद्युक्तार्थः । सङ्गति
युक्तार्थस्तु नरसिंहवदखण्ड. तदभिधायिवाक्याद्विभ्र । समासराशि सिद्ध । तस्थालोप्या
द्विभिर्विभक्तिलोपविधानादर्थोद्वाक्यमेव वा समासो भवति । नीलोत्पल । पञ्चगु । कष्टश्रित' ।
चित्तगु । देवदत्तयज्ञदत्तो । उपकुंभ । स पुन समास क्वचिद्वित्य । कृष्णसर्प । लोहित-
शालि । ब्राह्मणार्थापूपा । सत्पर्ययः । क्वचिद्विकल्प । राज्ज पुरुष । राजपुरुष । क्वचिन्न-
भवति । दीर्घश्चारायण । रामो जामदग्न्य । व्यास पारामर्ष्य । अर्जुन कार्तवीर्य । नाम्नामित्ति
किं । कार्याणामासान्तासमीपयोरिति (?) खल्वविकल्पो न स्यात् । युक्तार्थ इति किं ।
पश्य कष्टं श्रितश्चैत्रो राजकुल । ओद्धस्य [ऋद्धस्य] विजिघ्रस्यापत्यमित्यन्तार्थं विशिष्टापत्य-
मिति न स्यात् ।

×

×

×

×

श्रुतम भाग —

स्वार्थे अणु । तदन्तादिप्रत्ययः । स्वागतादीना वृद्धिप्रतिषेधौ न भवत । शोभनमागत
तदाह स्वागतिक । लुण्टु अक्षर स्वध्वर । तेन चरति स्वाध्वरिक । शोभनानि
तान्यगानि यस्य स्वागस्तस्यापत्य स्वांगिक । पद्यं व्यांगि । व्याडिरिति केचित् ।
व्याडस्यापत्य व्याडिः । विगतोऽवहारो विशेषेण वावहार । तेन चरति व्यावहारिकः ।
व्यायामिक । स्वागत । स्वध्वरा । स्वगा । व्यगा । व्याड । व्यवहार । व्यायाम ।
स्वादेरिति श्वनशब्दस्येकारादो तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति । श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रि ।
श्वाशीर्षि । शुनां गणस्थेन चरति श्वगणिक । श्वायूथिक' । आदिप्रहणात्केवलस्य
निषेध । श्वभिश्चरति शोविक । इकारादाविति किं । शौवावद्भो मणि । इणश्चादे ।
इणप्रत्ययान्तस्य सण्ये तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति । श्वामस्त्रेरिडि श्वाभस्त्रक । श्वाकर्णेरिडं
श्वाकर्णक । अणु लुप्तेऽपि तत्कृत' प्रतिषेधो भवत्येवेति । अनर्थकमेतदिति चांद्रा ।
पदस्यानीति वा । श्वशब्दादे पदशब्दश्यानिकारादो वा वृद्धिर्न भवति । शुन पद श्वपद ।
तस्येदमित्यणु । शौनपद । श्वपद । अग्निनीति किं । श्वपदेन चरति श्वापदिक' ।
श्वनशब्दस्य द्वारादिपाठात् तत्र तदादिविधेर्ज्ञापितत्वाद्द्वित्य प्राप्ते विकल्पो विधीयते । न्यंकोश्च ।
सण्ये तद्धिते वृद्धिरागमो वा भवति । न्यंकोरिडि न्याकुरुं ।

इति श्रंगमत्कार्यदेवोपाध्यायश्रीवर्द्धमानविरचिते कातन्त्रविस्तरे तद्धिते

दशमप्रकरण समाप्तम् ।

इस कातन्त्रविस्तर' के मूल सूत्र के रचयिता शर्षवमा है। वे मूल सूत्र कातन्त्र, कौमार एव कलाप के नाम से प्रसिद्ध हैं। कातन्त्र म संस्कृत व्याकरण का विषय ऐसे सुन्दर ढंग से गुंफित किया गया है जो अधिक विस्तृत न अधिक सज्जित ही कहा जा सकता है। साथ ही साथ मरल भी है। हाँ, इसमें कुछ श्रुतियाँ भी हैं। छोटप्रत्यय, तद्धित आदि कुछ प्रत्ययों की मुष्टिमैयता एव साधधानु अर्मावधानु का पाथनय आदि हाँ ये श्रुतियाँ हैं। फिर भी मध्यमरूप से व्याकरण की शिना पान के लिये यह ग्रंथ बहुत ही उत्तम है। ओर ओर प्रातों का अपेक्षा बगल में इसका अधिक प्रचार है। इसके प्रयाता शर्षवमा जैन थे या जैनैतर यह अभी विवादप्रस्त है। महाकवि सोमनेव मट्ट रचित कथा सरित्सागर में इस ग्रन्थ की उत्पत्ति की एक कथा मिलती है। उससे इसका निर्माता शर्षवमा अजैन सिद्ध होते हैं। किन्तु दिगम्बराचार्य भावसेन 'त्रैविद्यदेव अपनी 'रूपमाला' नामक टीका में कातन्त्र को जैनग्रन्थ घोषित करते हैं। बल्कि कातन्त्रविस्तर' और 'रूपमाला' नामक दिगम्बरीय शोकाओं के अतिरिक्त कातन्त्र पर श्वेताम्बरों की भी कई टीकाएँ उपलब्ध होती हैं।† अस्तु कातन्त्र के रचयिता के संबंध में विशेष खोज करने की आवश्यकता है।

उपयुक्त 'कातन्त्रविस्तर' के रचयिता वद मानजी है। 'मद्यम की यह प्रति अपूय है, इसलिये आपकी गुह्यपरम्परा आदि का कुछ भी पता नहीं लगता। प्रस्तुत प्रति मूडबिंद्री जैनमठ के मध्य भागडार में वर्तमान एक तालपत्तीय प्रति की नकल है। वहाँ की यह प्रति भी अधूरी है। स्वर्गीय बा० पूरणचन्द्रजी नाहर ने जैन सिद्धान्त भास्कर भाग २ किरण १ में प्रकाशित 'धार्मिक उद्धारता' शीपक अपने एक लेख में वद मानजी को श्वेतांबर लिखा है। बात नहीं होता है कि आपके इस कथन का आधार क्या है। क्योंकि 'जैन साहित्यनो इतिहास एव जैनग्रन्थावली आदि में इस बात का कुछ भी संकेत नहीं मिलता है। बल्कि नाहरजी ने उक्त लेख में इन्हें सूरी (आचार्य) के रूप में उल्लेख किया है। पर कातन्त्रविस्तर की इस प्रति में उपलब्ध किसी भी प्रकार के अन्त में वद मान इस नाम के साथ 'सूरी' शब्द नहीं मिलता है। हाँ, कर्णदेवोपाध्याय' यह विशेषण अवश्य मिलता है। पता नहीं लगता है कि वद मानजी के द्वारा प्रतिपादित यह कर्णदेव कौन हैं। इन सब बातों को हल करने के लिये ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति अत्यधिक अपेक्षणीय है। भाशा है कि किसी ग्रन्थालय में 'कातन्त्रविस्तर' की पूर्ण प्रति हो, वहाँ के उदार विद्वान् उसे प्रशस्ति की अधिकल नकल हमारे पास भेजने की कृपा अवश्य करेंगे।

अनुक्रमणिका

इस अनुक्रमणिका में 'प्रशस्ति-सग्रह' में सम्मिलित आचार्य, मुनि, आर्थिका, सध, गण, गच्छ, श्रावक, श्राविका, शामक, शासिका, सचिव, सेनानायक, क्रोषाध्यक्ष, राजश्रेष्ठी, गून्थ एव स्थल आदि के नाम समाविष्ट किये गये हैं। पृष्ठ-संख्या के बाढ़ तीन सकेताक्षर दिये गये हैं। उनमें 'प्र' से प्रशस्ति, 'प' से परिचय तथा 'फु' से फुटनोट समझना चाहिये। प्रसंगवश परिचय के अन्दर जो पद्य आये हैं, उनके नामों के आगे भी 'प' सकेताक्षर ही रक्खा गया है।

अ

अकलक १, २, ६, ३४, ६९, ९९ प्र १०१,
१२४ प १५५ प।
अकलक १३० प्र १३१, १३२, १४७ प।
अकलक (प्रतिष्ठाकल्प के रचयिता) १६७, १६८ प।
अकलकप्रतिष्ठापाठ १६७ प।
अकलक मठ १५० प।
अकलकमहिता १५०, १६७ प।
अकल्पनाचार्य १६० प्र।
अगस्त्य १६३ प्र।
अच्छुतराय १४५, १४७ प।
अजमेर ६३, १५४ प।
अजित ब्रह्मचारी ८ प।
अजितसेनाचार्य या अजितसेन २, ८४, १२८ प।
अणतण १३७ प।
अनगास्वर्णामृत ३३ प।
अनन्तकीर्ति १३३ प।
अनन्तनाथपुराण १७८ प।
अनन्त पण्डित १३५ प।
अनन्तवीर्य १, २ प्र १०१ प।
अनुमेघे १९ प।
अनुमकुन्दपुर या अनुमकुन्दपट्टन १२ फु।
अनेकान्त ४७ प १५४, १७८ फु।
अप्यार्य ११, १२, ६०, १०४, १०७ प।

अभयचन्द्र (गोमटसारवृत्ति के कर्ता) ६५ प।
अभयचन्द्र १०१, १२४ प० १३४ प्र १४८ प।
अभयचन्द्रसुरि १३४ फु १३५ प १३५ फु।
अभयनन्दी १३३ प।
अभयवादी १३८ फु।
अभिनवचन्द्र ५६ प।
अभिनवपाण्ड्यदेव ३७, ३९ प।
अभिनन्दन मठ १३५ फु।
अभिमन्यु ८३ प।
अमचत्रादिपत्तन १४८ प।
अमरकीर्ति १२५, १२६, १४७ प।
अमृतनन्दयोगी, अमृतानन्द या अमृतनन्दी २२,
२३ प्र २४, ५६ प।
अमोघवृत्तिन्यास १२४ फु।
अरग १४६ फु।
अरगनगर १४६ प।
अर्जुन १८१, १९९ प्र।
अर्जुनदेव ३३ प।
अर्थप्रकाशिका ६४ प ६६ प्र ७१ प।
अर्हहास ३०, ३२ प्र ३२, ३३, ८७ प।
अलकारसग्रह २२, २३ प्र।
अलियकट्टु १४५ प।
अष्टपदी ६३ प्र ६३ प।
अष्टशती १६७ प।

अष्टाङ्गि-अभिवर्तोमत्र १९७ प।
 अष्टाङ्गिकोधारन १७३ प।
 अहमदाबाद १७० प।
 अंगिक ८१ १६४ प।
 अहमेया १५२ म।
 अहुलेरवर ३८ कु।
 अजना ६ ७ म १०६ प।
 अन्तःकृदशांग ८६ म।

आ

आगरा २ प।
 आश्रय १६३ म।
 आहंगव १३५ प।
 आदिनाथ (निमिचन्द्र के भाई) १०१ प।
 आदिनाथ १३५, १३७ १४८ प।
 आत्रिपुराथ ४ ६४ ७१, १०३ १०६, १११
 ११६ १२० १६८, १७८ १९७ प।
 आसपर का १०३ प।
 आसम मासा १०० म १२४ प।
 आराधनाकथाकोष १७५ प १७५ कु १८५, १९१
 प १९१ कु १९३ प।
 आराधनासमूह ८९ प।
 आयदेवी १०१ प।
 आर्यप १० म ११ ६० प।
 आयसेन १२८ प।
 आलपुराथ १ ७ म।

आशावर १० म ११ प ३१ म ३२ ३३ प
 ३३ कु ६० ६१, ८४, १०४ १२९, १३४
 १४७ १६८, १७४ १७५ प १८८ म १९०
 १९१ १९२, १९३ प।

इ

इंदगरस १४५ प।
 इन्द्रशब्दज्ञान १६० प।
 इन्द्रवन्दि या इन्द्रनन्दी १० म ११ ६०, ८९,
 १०१ १०४ १०७ १२४ १३२ प।
 इन्द्रदिग्गविद्यासूत्र १०७ प।
 इन्द्रो १८७ म।

ई

ईडर १७५, १९१ प।
 ईश्वरानरस १४२ प।

उ

उग्रवश ३६ प।
 उग्रसेन १५२ म।
 उग्रप्रद्वेष ५० ५२ म ५३ ५४ ५५ ५६, ५७ प।
 उग्रजैनी ५३ प।
 उल्कल ६३ प।
 उत्तरकन्नड १२३ १४४ प।
 उत्तरपुराथ १२३ १९७ प।
 उत्तरमपुरा (मथुरा) ३६ प।
 उत्सवपद्धति १०० प।
 उदयचन्द्र १३३ प।
 उदयनाचाय ६४ प।
 उदयभूषण ८०, १६४ प।
 उदयेन्दु ४६ प।
 उपदेशरत्नमाळा १९७ प।
 उपासकभावयन ८६ म।

ऊ

ऊर्ध्व-तगिरि १२४ प।

ए

एकशैल या एकशैलिनगर ११ १२ प १२ कु।
 एकर्विधि ५८ म ६०, ६१ १६८ प।
 एकर्विधिसंहिता १६८ १७९ प।
 एकीभावगोष्ठापना १११ प।
 एषिमाफिका कर्नाटिका ५७ प।

ओ

ओजनश्रेणी १३७ प।

औ

औपवच्छय ५५ प।

क

कभूत ८० १६४ प।

कङ्कलोर ११५ प।
 कनासरिस्तागर २०० प।
 कदम्बरराजवश ७८ प।
 कनककीर्ति १७१, १७३ प्र १७३ प।
 कनकचन्द्र (गुणचन्द्र का पुत्र) १३२ प १३२ कु।
 कनकचन्द्र १३३ प।
 कनकदीपक ५५ प।
 कनकमेन १२९ प।
 कनकाचल १२३ प।
 कन्नडकविचरिते २४, १०६ प।
 कपूरी १८७ प्र०।
 कमलभद्र १२९, १४७ प।
 करकण्डुमहाराजचरित २१ प।
 करनूल ५४ प।
 करौली २ प्र।
 कर्णदेव या कर्णदेवोपाध्याय १९९ प्र २०० प।
 कर्णाटक १०७ कु १४५ प।
 कर्णाटककविचरिते १९ प।
 कर्णाटकप्रांत १०२ प।
 कर्णाटकमण्डल १०६ प।
 कर्णाटकशास्त्रानुशासन १७८ प।
 कर्नाटक ५४ प १४६ कु।
 कर्नाटककविचरिते ४५, ४७ प।
 कर्मदहनव्याख्यान १५८ प।
 कर्मविपाक १९७ प।
 फलचूरी ५४ प ५५ प्र।
 फलाप २०० प।
 फलिकुण्डाराधनाविधान ९५ प्र ९६ प।
 फलिङ्ग ६५ प।
 फरयाणकारक ५०, ५१, ५२, ५३, ५५ प्र ५५,
 ५६ प।
 फरयाणकीर्ति १६, १७, १८ प्र १८, १९, २०,
 ३८ प।
 फरयाणकीर्ति १३३ प।
 फरयाणनाथ १३५ प १३५ कु १४८ प।
 फरयाणमंदिर १०८ प्र।

कविचरिते ४७ प।
 कषायजयचत्वारिंशत् या कषायजयभावना १७१
 प्र १७३ प।
 काकनेय या काकतीय १२ प १२ कु।
 काणूर्णाण १३२ प १३२ कु १३३, १४७ प।
 कालत्र २०० प।
 कातत्रविस्तर १९८, १९९ प्र २०० प।
 कादम्बनाथ ७५ प्र।
 कादम्बनश २७ प ७४, ७६ प्र।
 कामनकथे १९ प।
 कामराज या कामराय ७५, ७६ प्र ७८, ११९,
 १९७ प।
 कामरुण १४८ प।
 कामरुणदेवरस १३९ प।
 कारकल या कारकल १८, १९, ३७, ३८, १०६,
 १०७, १२३, १४७ प १२८ प।
 कारजा ११ प।
 कार्तवीर्य १५९ प्र।
 कार्तिकेयानुप्रेक्षा २२ प।
 कालिदास ६३ प।
 कावेरी ६५ प १२६ प्र।
 काव्यमाला १९१ प।
 काव्यसार १२८ प।
 काशी ८ प।
 काशांपति १२९ कु १४७ प।
 काश्यप ८० प १६३ प्र १६४ प १३८ कु।
 काष्ठासघ ५६ कु १११ प १११ प्र १५८ प
 १८७ प्र।
 काञ्ची ११५ प्र ११६ प।
 किन्दुविल्व ६३ प।
 कीर्त्तिवर्मा ५६ प।
 कुमारकवि (हस्तिमहल के भाई) १६२ प्र।
 कुमारसेन १० प्र ११ प।
 कुमारसेन २२, २६ प २६ कु।
 कुमुदचन्द्र ४३ प्र ४४, ४५, ४६ प ४५, ४६ कु
 ४७, १०९, १३३ प १०८ प्र।

कुसुम १४२, १८१ प्र ।
 कुसुमाल ६५ प ।
 कुसुमदास्य वा कुसुमद ६ १७ प्र ११९ १२४
 १२९ प १३१ प्र १३२ १४४ प १५२ प्र
 १५३ प १५३ १५५ प्र १७३ प १८९ प्र
 १९०, १९७ प ।
 कुसुमदान्वय १९ प ६३ प्र ।
 कुम्भास्य २ प्र ।
 कुम्भ्या वा कुम्भस्य १३१ प्र १३७ प १३७ कु
 कुम्भस्येव १२६ प्र १३९ कु १४३ प्र १२८
 १४८ प ।
 कुम्भदेवेन्द्र १२२ प्र ।
 कुम्भराज १२८ १४५ प ।
 कुम्भराज १२६, १४० १४२ प्र १४५, १४८ प ।
 केरळ १३३ प ।
 केरळाधीरा १४७ प १३३ कु ।
 केरळज्ञानहोरा २५ प्र २६ प ।
 केरळविक्रम १४४ प ।
 केरळाचार्य १२४ प ।
 कैलाशाचल ७६ प्र ।
 कैवर्ती १६९ प्र ।
 कोटीश्वर १४० कु ।
 कोदण्डराम १०१ प ।
 कोपय १२४, १२८ १४४ प ।
 कोरलकमान २४ प ।
 कोरु कोल १२ कु ।
 कोलार ६५ प ।
 कोमार २०० प ।
 कौशिकिनि १६३ प्र ।

क

कर्णमन्थिर्षय ५६ प ।
 किल्लीनीय १५४ प ।
 खीमाही १८७ प्र ।

ग

गग १८७ प्र ।

गजपुर १४२ प ।
 गजसुद्धमालाचरित्र १९७ प ।
 गजेदियर १२३ प ।
 गणधरवलयकल्प ९६ प्र ९८ प ।
 गणानुदीन १५३ प्र १५३ १५४ प ।
 गण १८७ प्र ।
 गणधिकार ६५ प ।
 गंगनरेश ६५ प ।
 गणेश ६५, ७७ ७८ प ।
 गणशाधि ७७ ८१ १६४ प ।
 गणशाधिकार ६५ प ।
 गंगाक्षेत्र १४६ कु ।
 गजाम ५४ प ।
 गणकविसुक्त १३३ प ।
 गणधरकवि २० प ।
 गागाम्ह ६४ प ।
 गणेशर्वय ६३ प्र ।
 गणिकूट ८३ प्र ।
 गिरिनाथ १४६ कु ।
 गीतगोविन्द ६३, ६४ प ।
 गीतगीतराय ४ प ६१ ६३ प्र ६३ ६४ ६५
 ७१ प ।
 गुजरात ५४ १२, १५४, १७४ प १९१ प्र
 १९७ प ।
 गुणित्तल ८० ८१ प १६२ प्र १६४ प ।
 गुणकीर्ति १३३ प १८१ प्र १८२ प ।
 गुणचर्म १३२ १३३ प १३२ कु ।
 गुणम ९, १० प्र ११, ६० १०४ १०५ १२८
 प १५५, १५७ प्र १५८ प १६२ १८७ प्र ।
 गुणवद्गमन्त्र १८९, १९२ प्र ।
 गुणवर्मा ७४ प्र ७८ प ।
 गुणमदेव १३५, १३७ प ।
 गुणमदेवो १३८ प १३८ कु ।
 गुणमदेवो १३७ कु ।
 गुणम १३८ प ।
 गुणम १४८ प ।
 गुणिमोही १३७, १३८, १४० प १४० कु ।

गुरुदास ५३ प ।
 गुरुनृपाल १२८ प ।
 गुरुराय १४३ प्र ।
 गुर्जर ११९, १७४, १९०, १९७ प ।
 गेटे ६३ प ।
 गेरुसोप्ये १२३, १२८ प १३२ कु १३६ प १३७
 कु १४४, १४५ प ।
 गेरुहा १८७ प्र ।
 गोपनन्दी १८२ प ।
 गोम्मटदेव १५० प ।
 गोम्मटसार ६५, १०३ प ।
 गोम्मटेश्वर २० प ।
 गोवर्द्धन ६ प्र ।
 गोविन्दभट्ट ८०, १०५, १०६ प १६२ प्र १६४ प ।
 गोविन्दराज १३८ कु १४९ प ।
 गोविन्दस्वामी १०५ प ।
 गोवैद्य ५६ प ।
 गोलशङ्कार ७ प्र ८ प ।
 गौतम ६, ९, १६३ प्र ।
 गौतमचरित्र १५४ प्र ।
 ग्रन्थपरीक्षा १६८ प ।

च

चन्दनश्रेष्ठी १३७ कु ।
 चन्दा ५४ प ।
 चन्द्रकीर्ति ८४, १३३ प ।
 चन्द्रगुप्त १४७ प १३२ कु ।
 चन्द्रगुप्तपुर १४७ प १३२, १४७ कु ।
 चन्द्रनाथ ८१ १४० प १६३ प्र १७५ प ।
 चन्द्रप या चन्द्रपार्यं ८१, १३५ प १६३ प्र ।
 चन्द्रपार्यं १०१ प ।
 चन्द्रपार्यं १३५ प ।
 चद्रप्रभकान्यटोका ४, ६४, ७१ प ।
 चद्रप्रभचरित ३ प्र ।
 चद्रप्रभदेव १२९, १३० प ।
 चद्रप्रभयोगी १३१, १३२ प ।

चंद्रमती १३१, १४७ प ।
 चद्रशेखर ७७ प ।
 चंद्रसेन या चद्रसेन मुनि २५ प्र २६, २७ प ।
 चादिणी १८७ प्र ।
 चामुण्डराय १२४ प ।
 चारुकीर्ति ४ प ६१ प्र ६३, ६४, ६५ प ६६,
 ६९, ७० प्र ७१, १३१, ९४७ प १५५ प्र ।
 चालुक्य या चालुक्यवंश २७, ५६, ८१ प ।
 चालुक्यसाम्राज्य १६४ प ।
 चिन्तामणि १०१ प ।
 चिन्मयचिन्तामणि २० प ।
 चेतस १३५, १४८ प ।
 चेल्लनश्रेष्ठी १३८ प ।
 चेल्लरायपट्टण १३७ कु १४८ प ।
 चेल्लश्रेष्ठी १३८ कु १४९ प ।
 चेल्लादेवी १४० कु १४८ प ।
 चोलनरेश ६५ प ।
 चोलराजवंश १०१ प ।
 चौहंस १३५ प ।
 चौहान ३३ प ।

छ

छत्रत्रयपुरी ८१ प १६३ प्र १६५ प ।
 छन्द कोष ८४ प ।
 छन्द.शास्त्र ८४ प ।

ज

जगत्कीर्ति १११ प ।
 जगत्सुन्दरी ५५, १५४ प ।
 जगराज १८७ प्र ।
 जगराज्य १८७ प्र ।
 जटाचार्य ५५ प ।
 जटार्सिहलन्दी १२४, १३२ प ।
 जमदग्नि १९९ प्र ।
 जयकीर्ति १२४, १३०, १४७ प ।
 जयकेशरी १३२ कु १४७ प ।

जयदेव ६३ ६४ प।
जयद्वय ८३ म।
जयपुराण ११५, १५७ प।
जयमित्र १८६ म।
जयचम ६१ म।
जयसेन १२५ प।
जरासय १८५ म।
जंघ ६ म।
जल १७८ प।
जम्बुकेश्वर २४ प।
जम्बूस्वामीचरित्र १५७ प।
जाबाखिर या जाबाखिरपुर १३२ कु १४७ प।
जायदाज १८७ म।
जाजरनगर १५८ प।
जिनगुणसंपत्त्युद्यापन १६० प।
जिनक ३ १२४ प।
जिनचंद्र १७७ म १७७ १७८ प।
जिनचन्द्रदेव १३३ प।
जिनवत्त या जिनद्वाराय ३६ म ३६, ३७ २९
१२४ १३७ प।
जिनदास १८७ म १५७ प।
जिनदास ब्रह्मचारी ११५ प।
जिनदेव १३५ प।
जिनयज्ञकल्प १६८ प।
जिनयज्ञकलोचय १६, १८ म ३८ प।
जिनसहस्रनामटीका १७५ प १८८ म १८९, १९२ प।
जिनसंहिता ४३, ४४ म ४५, ४७ प ५५ म ६०
६१ प।
जिनसंहितासारोद्धार ८० म।
जिनसेन या जिनसेनाचार्य ६ १० म ११ ६० ८०
९२, १०१ १०४ १०५, १०६ १११ १२०
१२३ १२४ १२८ प १५५ १६२ म १६४,
१६८ प।
जिनस्तुति १५ प।
जिनेन्द्रकव्याभ्यामुचय ९ १० म ११, ६० ६१
१०४ १७ प।

जीवेशु १८७ म।
जीषिहर १८१ म।
जेरठ या जेरहट १५३ म १५३, १५४ प।
जैतरस १३६ प।
जैनगण्ड ७१ प।
जैनग्रन्थावली २०० प।
जैनमन्त्रशास्त्र ८७ कु।
जैनशिलाशेखरसंग्रह १८२ कु।
जैन साहित्यनो इतिहास २०० प।
जैन सिद्धान्त-भवन ३२ प।
जैन सिद्धान्त-भास्कर १२९, २०० प।
जैनहितैसी ३८ १०१ ११९ प १५७ कु।
ज्ञानकथा ८६ म।
ज्ञानधनदाम्युचय १५ प।
ज्ञानमूषक ११९ १५६, १५७ प।
ज्ञानसागर १७५ १५०, १५३ प।
ज्ञानार्थ २१ प २१ कु ११९, १६८, १९१ प
१९२ म १९६ प।

ट
टिडोवन ६४ प।

ड
डिडिपुर १२५ प।

त
तंभोर ८१ प।
तत्त्वत्रयप्रकाशिका १७५, १९१ १९२ प।
तत्त्वनेत्राक्षक १५ प।
तथ्यानुयायन १५१ प।
तथ्यार्थटीका १७५, १९१ प।
तथ्यामवृत्ति १७६, १७७ म १७८ प।
तथ्यार्थसारटीका १५७ प।
तथ्यार्थसारदीपक १५७ प।
तथ्यार्थसूत्र १२४ १७५ प।
तमिह (भाषा) १०७ कु।
तमिह (मान्य) १०७ प।

तम्मयण १३७ प १३७ कु १४९ प ।
 तर्कदीपक १७५, १९३ प ।
 तलकाड ६५ प ।
 तारादेवता १ प्र ।
 तिजारा १८७ प्र ।
 तिममयणनायक १३९ प १३९ कु १४८ प ।
 तिमिश्रेष्ठी १४० प १४० कु १४८ प ।
 तिर्चनापत्नी २४ प ।
 तुलुदेश १३२, १४० प ।
 तुलुराज्य ७७ प ।
 तेजनु १८७ प्र ।
 तैलग १२ प १२ कु ।
 तोतू १८७ प्र ।
 तौलव १३३, १४५ प ।
 तौलवदेश ३७ प ।
 तौलवाधीश १३५ कु १४८ प ।
 तौलवेश्वर १३६ कु ।
 त्रिकर्लिंग ५३ प्र ५४ प ।
 त्रिवृत्ति ५४ प ।
 त्रिप्यदिरिगुलिथूर ११५ प ।
 त्रिभुवनकीर्त्ति १५३ प्र ।
 त्रिभुवनचन्द्र १३३ प्र ।
 त्रिभुवनमत्त ७७ प ।
 त्रियम्बक १३७ कु ।
 त्रिलोकप्रज्ञप्ति ११६, १२४ प ।
 त्रिलोकम्भार ११६ प ।
 त्रिलोकम्भारपूजा १११ प ।
 त्रियर्षाचार १५८, १६८ प ।
 त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति १७८ प ।
 त्रैवर्णिकाचार ७८ प्र ८०, ८१, १००, १०१ प ।
 त्रैविद्यचक्रेश्वर १२९ कु ।
 त्रैविद्यवामुपज्य १३३ प्र ।
 त्र्यमियपाल १८७ प्र ।

६

त्रिजगत्भारत १७१ प ।

दक्षिणामधुरा (मधुरा) ३६ प ।
 दयडनाथ १३६ प ।
 दमोवादेश १५३ प्र १५३, १५४ प ।
 दयापाल १६ प्र १९, १२९ प ।
 दरगहमलु १८७ प ।
 दशभक्त्यादि या दशभक्त्यादिमहाशास्त्र १२०,
 १२२ प्र १२२, १२३ प १४६ कु ।
 दशरथ २३ प्र ५५ प २५, १२८, १३७ कु ।
 दशलक्षणपूजाविधान १५८ प ।
 दशलक्षणोद्यापन १६० प ।
 दानशासन २८, २९ प्र २९ प ।
 दि० जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ २१, २६, ८४
 ८९, १००, १११, १५४, १५८ प १६० कु
 १९७ प ।
 दिल्ली १४५ प १४५, १४६, १४७ कु ।
 दीपनगुह्मि ८१ प ।
 दुग्गाणश्रेष्ठी १३९ प ।
 दुम्गूर १४९ प ।
 देवकीर्त्ति १७ प्र १९ प ।
 देवकीर्त्ति १३२, १३३ प ।
 देवचन्द्र १६ प्र १९ प ३४ प्र ३७, ३८, ३६,
 १०६, १३३ प ।
 देवनन्दी १००, १०१ प ।
 देवनन्दी १७८ प ।
 देवप दयडनाथ १२५, १४६ प १४६ कु ।
 देवप्यार्य १३४ कु १४८ प ।
 देवरवल्लभ ८० प १६२ प्र १६४ प ।
 देवरम १३४, १३५, १३६, १३८, १४८, १४९ प ।
 देवरम १३८ कु ।
 देवरमसूरि १३५, १४०, १४८ प ।
 देवरासी १३८ प १३८ कु १४२, १४९ प ।
 देवराज ६३ प्र ६५ प ।
 देवराज १४५ प ।
 देवराय १२६, १२८, १२९, १३१ प १३४, १३५,
 १३६ कु १४३, १४५, १४७, १४८, १४९ प ।
 देवराय (द्वितीय) १९ प ।

देवसेन १९७ प।
 देवागम १६२ म।
 देवि-द्रकीर्ति १५३ म।
 देविश्रेष्ठी १३७, १३८ कु १४ १४८ प।
 देवेन्द्र १०१ प।
 देवेन्द्र १४९ प।
 देवेन्द्रकीर्ति ७ म ८ प।
 देवेन्द्रकीर्ति ९२, ९४ प।
 देवेन्द्रकीर्ति १२२ म १२५, १२७ १२८ १४०,
 १४२ १४३, १४४ १४७ प।
 देवेन्द्रकीर्ति १५३ प।
 देवेन्द्रकीर्ति १७४ म १७४ प १८९ म १९० प
 १९२ म।
 देवेन्द्र मुनि ५६ प।
 देवेन्द्रधर्म ६५ प।
 देशि या देशीगण ३७ प ३८ कु ७०, १३१ म
 १३१ कु।
 देशीगण १७ म १९ प।
 दौदासही १८७ म।
 दोमाल १८७ म।
 द्राविड ६३ म ६४ प।
 द्वारवसुध ८१ प १२३ कु १६४ १६५ प।
 द्विसधानकाम्य १०१ १७९ प।
 द्विसधानकाम्यटीका १०० १०१ प।

घ

घटापासाही १८७ म।
 घनजय ३७ ८४ १२४ प।
 घन्यकुमारचरित्र १५७ ।
 घरवि पविष्ठत १३८ प।
 घरसेनाचार्य या घरसेन १ म ११ १२ १२८ प।
 घनकीर्ति १३३ प।
 घनकीर्ति महारक ९८ प।
 घनचंद्र ९३ ९४ १५४ प।
 घनचंद्र मुनि १२३ कु।
 घनमाधपुराण १९७ प।

घमपीयूषवपयाभावाकाचार १८५ प।
 घर्मप्रसोत्तर १९७ प।
 घनभूषण ९४ प।
 घनभूषण १२४, १२५ प १३६ कु १४२ १४९ प।
 घर्मराय १४२ प।
 घनशर्माम्युदय १३४ कु १५३ १५४ १८२ प।
 घनशेखर १३५ प।
 घर्मसमग्रभावकाचार १७८ प।
 घमसेन १२९ प।
 घर्मोद्युत १७८ प।
 धारा(नगरी) ३३ प।
 धीनाही १८७ म।

ज

नगर(साक्षुक्) १२८ प।
 नगराज १८७ म।
 नगरि(राज्य) १२८ प।
 नंजाराय १२८ प १३८ कु १४३ प।
 नजिदेवराज १२८ १४४ प।
 नन्दिसव ५३ ५७ १२८, १२९, १३३ १४४ प
 १५२ म १५३ कु १७८ प।
 नमस्कारमंत्रकल्प ४८ प।
 नयसेन १७८ प।
 नरसिंह ८१ १४४ प।
 नरसिंह १२८ १४८ प।
 नरसिंहकुमार १२८ प।
 नरसिंहराज १२८ प।
 नरसिंहराय १२९ कु १४७ प।
 नरेन्द्र ३४ म।
 नरेन्द्रसेन १२९ प।
 नक्षकण्डपुर ३३ प।
 नागचन्द्र या नागचंद्रमती ३४ म ३७ ३८ प ३८ कु
 ३९, ८४ प।
 नागपुर ५४ प।
 नागध्व १३१ प।
 नागध्वसेनी १३७ १४९ प।

नागरम् १३६, १४८ प।
 नागरसी १३७ कु।
 नागसेन १२९ प।
 नागांबिका १३८ कु।
 नागार्जुन १२३ कु।
 नागिश्रेष्ठी १३७ कु।
 नारयणश्रेष्ठी १३७ प।
 नारसिंह १३५ कु १४२ प।
 नित्यमहोद्योत १९१ प।
 निदानमुक्तावली १३ प्र १५ प।
 निरञ्जन १३८ कु।
 निर्वाणकाण्ड १२३ प।
 निपीधिका १३२ प।
 नृसिंह १४२, १४५, १४८ प।
 नृसिंहराय १४८ प।
 नेमणश्रेष्ठी १३७ प।
 नेमणश्रेष्ठी १३८ प।
 नेमिचन्द्र ६ प्र।
 नेमिचन्द्र ३७ प।
 नेमिचन्द्र ९८, १०० प्र १००, १०१, १०२ प।
 नेमिचन्द्र १२४, १२६, १३१, १३२, १३३,
 १३४ प।
 नेमिचन्द्र १३५ कु।
 नेमिचन्द्र १३७ प।
 नेमिचन्द्र मती १३७ कु १४९ प।
 नेमिचन्द्र १४७ प।
 नेमिचन्द्र १६५ प्र १६८ प।
 नेमिजिनमन्दिर ७ प्र।
 नेमिदत्त १७५ प १८२, १८५ प्र १८५, १९१,
 १९३ प।
 नेमिनिर्वाणफाल्गुनीका ४, ६४, ७१ प।
 नेमिपुराण १७५ प १८२, १८५ प्र १९१ प।
 नेमिश्रेष्ठी १३७ प।
 नेत्तर २४ प।
 न्यायकुमुदचन्द्र १७८ प।
 न्यायमण्डिपिका २ प्र २, ७१ प।

न्यायविनिश्चयविवरण १७९ प।

प

पटना ११६ प।
 पण्डिताचार्य ६३, ६६, ६८, प्र १४८ प।
 पदार्थसार ४६ प।
 पद्मश्रेष्ठी १३९ कु १३९, १४८ प।
 पद्मनन्दी ६ प्र।
 पद्मनन्दी ८९, प्र ८९ प।
 पद्मनन्दी ११९ प १५२, १५३ प्र १७४ प १८९ प्र
 १९०, १९१ प १९२ प्र ० १९६ प।
 पद्मनन्दी १२४, १३३ प।
 पद्मनन्दी १७८ प।
 पद्मनाभ १८५ प्र।
 पद्मपुराण ११९, १५८, १६८ प १६९ प्र १७०,
 १९७ प।
 पद्मप्रम १२४, १२९ प।
 पद्मनमस्कारचक्र ४८ प्र।
 पद्मवस्ति १४९ प।
 पद्माकर १३९ कु।
 पद्मान्वा १२८ प १४३ प्र १४५, १४८ प।
 पद्मान्वा १३५ कु।
 पद्मावतीवस्ति १४६ कु।
 पद्मिनी ३६ प।
 पनसोगे ३७ प।
 पप १७८ प।
 परमारचर १४७ कु।
 परसमयग्रन्थ १६८ प्र १७०, १७१ प।
 परीचामुख १, २, ६६, ७० प्र ७१ प ७२ प्र।
 पालिकट ५४ प।
 पल्लववश ११६ प।
 पवनजय १०६ प।
 पश्चिमी घाटी ८०, १६४ प।
 पाटलिक ११४, ११५ प्र।
 पाटलिग्राम ११५ प।
 पाटलियुत्र ११५, ११६ प।
 पाण्य(पाण्ड्य)राष्ट्र ११५ प्र ११५, ११६ प।

पायलवपुराण २१ २२ ११९, १५४ १७८
 १९७ प।
 पायल्यभमापति ३४ ३६ म ३६ प ३८ कु ३९ प।
 पायल्यचक्रवर्ती ३७ ३९ प।
 पायल्यदेव १७ म १८ प।
 पायल्यदेव रस ३७ प।
 पायल्यदेव ८०, ८१ १०६, ११५, १६१ म
 १६४ प।
 पायल्यनगर २० प।
 पायल्यनरम्ह ८० १६४ प।
 पायल्यनरेण १ ७ प।
 पायल्यन्य ७७ प।
 पायल्यन्यभग ७८ प।
 पायल्यभू १४० कु १६२ म।
 पायल्यभैरवरस ३९ प।
 पायल्यभैरवराज ३७ प।
 पायल्यमहीश्वर १६३ म।
 पायल्यमहेश्वर १०६ प।
 पायल्यराज १२७ म १४५ १४७ १४८ प।
 पायल्यराय १४३ म।
 पायल्यराज ११४ म।
 पायल्यवश १८ ३६ प ७४ म।
 पायल्यकेशरी ५५, १२४ प।
 पायल्यस्वामी ५३ ५५ म।
 पायल्य १३७ कु।
 पायल्य १३९, १४९ प।
 पायल्यभोग्नी १३७ कु
 पायल्य या पायल्यभोग्नी १३७, १४९ प।
 पायल्यभोग्नी १३९ कु १४९ प।
 पायल्यभोग्नी १९९ म।
 पायल्य ८, १६४ प।
 पायल्यचक्र ३७ प।
 पायल्यदेव ५६ प।
 पायल्यदेव १३५ प।
 पायल्यनाम १०१ प।
 पायल्यनामचरित्र १९६ प।

पायल्यनामपुराण १६३, १९७ प।
 पायल्यपथिष्ठ ८१ प १६३ म १६५ प।
 पायल्यभोग्नी १४० प।
 पायल्यभोग्नी ४ प।
 पायल्यभोग्नीका ४, ६४ ७१ प।
 पायल्यनदी ६५ प।
 पायल्यकीर्ति १३० म १४७ प।
 पायल्यसूत्र ८५ प।
 पुनागचक्र ८४ म ८४ प।
 पुन्यदेवचम्पू ३२ प।
 पुन्यभोग्नी १५७ म १५८ प।
 पुन्यभोग्नी १११ प १८७ म।
 पुन्यसेनाचार्य या पुन्यसेन ११ १२ प।
 पुन्यकलाञ्ज १९ ३७ प ३८ कु।
 पुन्यभोग्नी १९३ प।
 पुन्यभोग्नीका १७५ प।
 पुन्यपाद १० म ११ प १३ १४ म १४ १५ प।
 पुन्यपाद ३४, ५३ म ५५, ६०, ६५, १०४ प
 १२३ कु १२४ १४४, १५ १५१ प १५५,
 १५९ म १७३, १७५ प १७६ १८९ म।
 पुन्यभोग्नी १२९ कु १४७ प।
 पुन्यभोग्नी ११५ प।
 पुन्यभोग्नी १२९ कु १४७ प।
 पुन्यभोग्नी १५२ म०।
 पुन्यभोग्नी ३६ १२६ प १३९ कु १४७ १४९ प।
 पुन्यभोग्नी ८१ प।
 पुन्यभोग्नीदेव या पुन्यभोग्नी २४, ६३ प।
 पुन्यभोग्नी २४ प।
 पुन्यभोग्नी ४६, ४७ प १६५ म १६७ प।
 पुन्यभोग्नी ४३ ४४ म ४५ प।
 पुन्यभोग्नी १० म १०० १०१ प १६१, १६४ म
 १६४ प।
 पुन्यभोग्नी १०१, १६८ प।
 पुन्यभोग्नी १०३, म १०४, १०७ प।
 पुन्यभोग्नी ८० प।
 पुन्यभोग्नी १५४ प।

प्रयुञ्जचरित्र १५८ प।
 प्रबोधसार १५४ प।
 प्रभाचन्द्र १, ६, १५५ प्र १७९ प।
 प्रभाचन्द्र १२४ कु १२४, १२५ प।
 प्रभेन्दु १, २, ६६, ६९, ७१ प्र।
 प्रमेयकण्ठिका ७२, ७३ प्र।
 प्रमेयकमलमार्त्तण्ड १, ६९ प्र।
 प्रमेयरत्नमाला २, ६६, ६९, ७० प्र ७१ प।
 प्रमेयरत्नमालालङ्कार ६४ प ६८ प्र ७१ प।
 प्रवचनपरीक्षा ९८, १०० प्र १००, १०१, १०२ प।
 प्रश्रव्याकरणाङ्ग ८६ प्र।
 प्रशोत्तरमाला ११९ प।
 प्रशोत्तररत्नमाला १९७ प।
 प्रशोत्तरश्रावकाचार ११९, १९७ प।
 प्राकृतपिङ्गल ८४ प।
 प्राकृतव्याकरण १७३, १७५, १९३ प १७४ प्र।
 प्राणवायपूर्व ५५ प।
 प्रायश्चित्तचूलािका ९३ प।
 प्रायश्चित्तसमुच्चय १७९ प।
 प्रियङ्करचरित्र १८५ प।

फ

फणिकुमारचरित २० प।

ब

बकापुर १२९, १४७ प।
 बग ७५ प्र ७७ प।
 बगचरित्र ७७ प।
 बगभूमीश्वर ७४ प्र।
 बगवादि ७४ प्र ७७, ७८ प।
 बगवश ७७, ७८ प।
 बगाल ५४ प।
 बदरीनाथ १०१ प।
 बदरीपाल २ प्र।
 बनारस ५४ प।
 बन्धई ३२ प।

बरार ३३ कु।

बलाकारगण १२२ प्र १२५, १३३ प १४३, १५३ प्र
 १५३, १७४, १९० प।

बलाल ६४, ८१ प।

बलालराय ६३ प्र १३१ कु १४७ प।

बागड १२०, १९७ प।

बाण १४४ प।

बाणराष्ट्र ११६ प।

बारकूर ३६ प ३६ कु।

बालप्रहचिक्रिमा ५६ प।

बालचन्द्र ३८ कु १३२, १३३ प।

बिदिरे १२८ प।

बिरगण १४८ प।

बिलिगे १२८ प।

बिलहय ३३ प।

बीजकोश ३९ प्र ४१, ४२ प।

बीधा ७ प्र ८ प।

बुद्धा १८७ प्र।

बुन्देलपुरण्ड १५० प।

बृहत्कथाकोष १७५, १९३ प।

बंगलूर ५४, ६५ प।

बेलगावे १३८ कु १४८ प।

बेलूर ८१, १६४, १६५ प।

बेलगुल ७१ प्र।

बेलगुलपुर ७० प्र।

बेलगोल १२४, १२८ प।

बेल्हारि ५४ प।

बैचप्य १४८ प।

बोम्मणश्रेष्ठी १३९ प १३९ कु १४९ प।

बोम्मरस १३५ प १३८ कु १४१, १४८ प।

बोम्मराज १४० प १४० कु।

बोम्मा १४० कु।

बोम्मिश्रेष्ठी १३६ प १३६, १३८ कु १४८ प।

ब्रह्मदेव १०१ प।

ब्रह्मसूरि ८० प्र ८०, ८१, ८२, १०१, १३४ प
 १६१, १६३, १६४ प्र १६४, १६५, १६८ प।

ब्रह्मसिंह ५, ७ प्र।
ब्रह्मिणेष्टी १३९ १४८ प।

अ

भक्तामरकथा १६० प।
भक्तामरोषापव १५८ प।
भक्तिमाहा ६३ प।
भगवद्गीता १७० प।
भद्रक १२३ १३६ प।
भद्राकरक १२४ १२९ प १६५ म० १६७, १७८ प।
भद्रबाहु ६ म १२४ प १६९, १८९ म।
भक्तकथाभारतपत्रिका ३०, ३२ म ३२ ३३ प।
भक्तिसुन्दरिका ३३ प।
भक्त्यामर ३४ ३५ ३६ म ३६ ३७ ३८, ३९ प।
भरतेवर ७४ म।
भरतेवरचरणी ९ म।
भरतवाजोत्र १४१ म।
भारतकथुर १२३, १२८ प।
भागो १८७ म।
भारतकीर्ति १३२ प।
भारत मुनि १३३ प।
भारतवा १६३ म।
भारत १६३ म।
भारतेन त्रैविद्यदेव २०० प।
भारतकथुरी १७६, १७७ म १७७ १७८ प।
भारतकथा ५५ प।
भारत १८७ म।
भारत १८१ म।
भारतकीर्ति ११९, १५३ १९६, १९७ प।
भारतकथा १३३ प।
भारतकथा ७ म ८ प।
भारतकथा १३५, १४८ प।
भारत ५७ प।
भारतकथा ३७ प।
भारतकथा १८ प।
भारतकथा १८ १९ १२८ प।
भारतकथा १८ ३७ प।

भारतकथा ३७ प।
भारतकथा १४३ १४५, १४८ प।
भारतकथा १७ १२७ म।
भारतकथा १५३ प।
भारतकथा ६३ प।

अ

भारत ५६ प।
भारतकथा १३७ कु।
भारतकथा १५३ म १५३, १५४ प।
भारतकथा (भारतकथा) ३२ प।
भारतकथा वा भारतकथा १५३ १५४ प।
भारत ६५ प।
भारतकथा १२९, १४७ प।
भारत ३६ प।
भारतकथा १४ म १५ प।
भारतकथा ३३ प।
भारतकथा १६४ प।
भारत १३ ५६ प ५७ कु।
भारतकथा ४७ कु।
भारतकथा ८१ प।
भारत १०६ प।
भारतकथा भारतकथा राजपूताने के प्राचीन जन
भारत ३३ कु।
भारतकथा ३६ प।
भारत ५४ प।
भारतकथा २४ प।
भारतकथा भारतकथा वा भारतकथा २३ म २४ प।
भारतकथा २२ प।
भारतकथा ८५ ८६ म ८७ प।
भारतकथा भारतकथा १८७ म।
भारतकथा ७७ प।
भारतकथा १३६ १४८ प।
भारतकथा १३६ १४६ कु १४८ प।
भारतकथा १९७ प।
भारतकथा भारतकथा १७४ १७५ प १८४ १८५ म
१८५ प १८९ म १९० १९१, १९२ १९३ प।

महिराय १२५ प १३४, १३७ कु १४१, १४५,
 १४७, १४८ प ।
 महिष्रेष्ठी १३७ प ।
 महिष्रेष्ठी १३८ प १३८ कु ।
 महिषेय ८९ प ।
 महिषेय १९३ प ।
 मसक् १८७ प्र० ।
 महम्मद १२५ प ।
 महाखान १५३ प ।
 महादासु १८७ प्र ।
 महापुराण १२० प १५५ प्र ।
 महाभारत १७० प ।
 महाभियेक १९१ प ।
 महाभियेकटीका १७५, १९१, १९३ प ।
 महेन्द्रकीर्ति १५६ प्र १५७, १५८ प ।
 महेन्द्रपुर ७ प्र ।
 मागोडु १३८ कु ।
 माघनन्दी २२ प ।
 माघनन्दी लि० ४३, ४४ प्र ४४ प ४५ कु ।
 माघनन्दी (श्रावकाचार के कर्ता) ४५, ४६, ४७ प ।
 माघनन्दी (शास्त्रसार के कर्ता) ४६ कु ४७ प ।
 माघनन्दी १२४, १३३ प ।
 माघनन्दिश्रावकाचार ४६ प ।
 माणिकचन्द्रप्रथमाला ३२, ४४ प ।
 माणिक्यनन्दि १, ६९, ७० प्र १२४, १३३,
 १४८ प ।
 मायडलगढ़ १५४ प ।
 माथुरधरगञ्ज १११ प ।
 माथुरान्वय १८७ प्र ।
 मादनयल्लप १२९, १४७ प ।
 माघवचन्द्र १२४ प ।
 माघवचन्द्र १३२ प १३२ कु १४७ प ।
 माघवसेन १२९ प ।
 मान्यपुर ६५ प ।
 मावुनायक १३९ कु १४८ प ।
 मार्तण्डशास्त्र १२४ प ।

मार्कण्डेयपुराण १६९ प्र ।
 मालवदेश १५२ प्र १५४, १९० प ।
 मालवपति १२९ कु १४७ प ।
 मालवा १७५, १९१ प ।
 मालवेन्द्र १२९, १३३ कु १४८ प ।
 मुकुन्द १३८ कु १४८ प ।
 मुनिचन्द्र १३२, १४७ प ।
 मुनिसुप्रतकान्य ३२ प ।
 मुहम्मद तुगलक १४६ कु ।
 मूडबिद्री ३, १०४, १२३, १३६, १४०, २०० प ।
 मूलमघ १७ प्र १६, ३७, १५३ प १५३, १५७ प्र
 १५८ प १६२, १७४ प्र १७४ प १८४ प्र १८५
 प १८९ प्र १९० प १९२ प्र ।
 मूलाचारदीपक १६७ प ।
 मृत्युञ्जयाराधनाविधान ९० प्र ।
 मेघचन्द्र १२४ प ।
 मेघनाद ५३ प्र ५५ प ।
 मेघप्रभ ३८ कु ।
 मेधावी १७८ प ।
 मेरुतन्त्र ५५ प ।
 मेरुनन्दी १२५ प ।
 मेवाड़ १५४ प ।
 मैथिलीकर्याया १०४ प ।
 मैसूर १९, ३६, ५४, ६५, ७७, ८५, १४४,
 १५०, १७०, १७८, १७९ प ।

य

यत्याचार १९७ प ।
 यशकीर्ति १५३, १५४ प
 यश कीर्ति १७९ प्र १८१, १८२ प ।
 यशस्तिलक १७४, १७५, १९१ प ।
 यशस्तिलकचन्द्रिका १७४, १७५, १८५, १८९,
 १९०, १९१ प ।
 यशस्तिलकटीका १९०, १९३ प ।
 यशोधरचरित ४, १९, २०, ६४, ७१, १५८,
 १९७ प ।

पुष्पिष्ठिर २७ प ।
योगशास्त्र १२९ कु ।
योगसार १५३ प ।

ए

रघु १४२ प ।
रंगनाथ १२६ प ।
रंगराय १४५, १४८ प ।
रत्नप्रवपाठ १६० म ।
रत्नप्रबोधोपन १५९, १६ म १६ प ।
रत्नमिद २ म ।
रत्नमण्डूपा ८२ म ८४, ८५ प ।
रत्नचन्द्रदेव १३३ प ।
रविपेण १२९ प ।
रविपेण वा रविपेखाचार्य १५५, १५६ १५७ म
१५८ प ।
रविपेदेस १५८ प ।
रसतन्त्र ५५ प ।
रसरत्नाकर २४ प ।
रससार ५५ प ।
राधवपाण्डवीच १३४ कु ।
राजमन्त्र १०१ प ।
राजवार्तिक १६७ १७८ प ।
राजयोग ७४ म ।
राजावक्रिका १ ६ प ।
राजोद्भ ७४ म ।
रायी १८७ म ।
राधादेवी ६३ प ।
राधिका ६३ प ।
रामतिरि ५३ म ५४ प ।
रामचन्द्र २२ प ७४ म ।
रामचन्द्र १३२ १४७ प ।
रामचन्द्र १४३ प ।
रामटेक ५४ प ।
रामदेव १५७ म ।
रामनाथ करस ३७ प ।

रामपुराण १५५, १५७ म १५८ प ।
रामराज १३९ कु १४२ १४३, १४८ प ।
रामराय १४५ प ।
रामसेन १२९ प ।
रामायण ४७ प ।
रायचन्द्रजैनशास्त्रमाहा २१ कु ।
रायवग ७५, ७६ म ।
रघुकुमार ११ प ।
रघुदेव १२ प १२ कु ।
रघुदेव १५० प ।
रूपमाहाटीका २०० प ।

ल

लक्ष्मण १३७ प ।
लक्ष्मण १२४ प ।
लक्ष्मण १५६ म ।
लक्ष्मणसेन ६३ प ।
लक्ष्मीचन्द्र १७४, १७५ प १८९ म १९०, १९१,
१९२, १९३ प ।
लक्ष्मीसेन १२९, १४७ प ।
लघुसाम्बिक १५८ प ।
लक्षितकीर्ति १६, १७ म १८ १९ ३७ ३८ प ।
लक्षितकीर्ति १०९ १११ म० ।
लक्षितकीर्ति १५३, १५४ १८२ प ।
लक्ष्मणवही १८७ म ।
लाडो १८७ म ।
लाजपुराण १७ प ।
लुम्भण १३८, १४८ प ।
लोकतत्त्वविभाग ११२ म ।
लोकनाथ देवरस ३७ प ।
लोकविभाग ११५ म० ११६ ११७, ११९ प ।
लोकसेन १२९ प ।
लौकागच्छ १७५ १९३ प ।
लोलनकरस १३५ प ।

व

वंग ६३ प ।

वज्रपंजराराधनापूजा ८९ प।
 वज्रपंजराराधनाविधान ८८ प्र ८९ प।
 वत्सगोत्र १०५, १०६ प १६३ प्र।
 वरंगल १२ प १२ कु।
 वराग १२३ प।
 वरागदनुष १६० प्र।
 वर्द्धमान ३४ प्र०।
 वर्द्धमान (हस्तिमल्ल के भाई) ८० प १६२ प्र
 १६४ प।
 वर्द्धमान (दशभक्त्यादि के कर्ता) १२० प्र १२२,
 १२३, १२४, १२७, १२८, १२९, १३२, १३४,
 १३५, १३६, १४०, १४२, १४३, १४४ प।
 वर्द्धमान (धर्मभूषण के गुरु) १२५ प।
 वर्द्धमान १२५, १३३ प।
 वर्द्धमान भट्टारक १३३ प।
 वर्द्धमान (होय्सल राज्यस्थापक) १२४, १३३,
 १४७ प।
 वर्द्धमान (कातन्त्रविस्तर के रचयिता) १९८, १९९
 प्र २०० प।
 वर्द्धमानवाक्य १८६ प्र।
 वर्द्धमानपुराण १८५, १९७ प।
 वशिष्ठगोत्र ८०, १०५ प १६३ प्र १६४ प १६९ प्र।
 वसन्तकीर्त्ति १२४ प।
 वसुनन्दि या वसुनन्दी १० प्र ११, ५३, ६०, १०४,
 १२४ प।
 वसुनन्दिप्रतिष्ठावाक्य १७९ प।
 वसुपुर १२३ प।
 वाग्भट ८४ प।
 वाग्भट १५० प।
 वाग्वर (वागड) ११९ प।
 वादिकुमुदचन्द्र ४४ प्र ४७ प।
 वादिराज १०१, १२४, १२८ प १४७ कु।
 वादीभसेन १०५ प।
 वासुपूज्य या वासुपूज्य ऋषि २८, २९ प्र २९,
 १३३ प।
 वासुपूज्य मुनि ४५ कु।

वासुपूज्य मती १२४ प।
 विक्रम २७ प।
 विक्रमप्रबध १७५, १९३ प।
 विक्रमभूपति २१ प।
 विक्रमादित्य १८७ प्र।
 विकान्तकौरव १०४, १०५, १०६ प।
 विजयकीर्त्ति ७४, ७६ प्र ७६ प।
 विजयकीर्त्ति (मलयकीर्त्ति के द्वारा स्मृत) ८६ प्र
 ८७ प।
 विजयकीर्त्ति ११९, १९७ प।
 विजयकीर्त्ति १२९, १३०, १३१ प १३७ कु १४७,
 १४९ प।
 विजययण १३७ प।
 विजययण १४९ प्र १५० प।
 विजयनगर १२८, १३८ प १३८ कु १४४, १४५,
 १४६ प १४६ कु १४८ प।
 विजयप १०१ प।
 विजयप १३७ प।
 विजयप १३८, १४९ प।
 विजयवर्णी ७३, ७६ प्र ७६, ७८, १५४ प।
 विजया १४१, १४९ प।
 विजयावनीश १३३ कु।
 विजयेन्द्र ८१, १६५ प।
 विट्टला या विट्टलादेवी ७४ प्र ७७ प।
 विदर (स्थान) ५४ प।
 विद्यानगर १२५ प १३८ कु १४६ प।
 विद्यानन्द या विद्यानन्दी १२२ प्र १२३, १२४,
 १२५, १२६, १२८, १२९, १३२, १३३,
 १३४, १३५ प १३५, १३६, १३७, १३८ कु
 १४०, १४२, १४३, १४४, १४५, १४७, १४८,
 १४९ प।
 विद्यानन्द मुनीश्वर (विद्यानन्द के पुत्र) १४७ प।
 विद्यानन्दी भट्टारक (श्रुतसागर के गुरु) १७३,
 १७४ प्र १७४ प १८४, १८८, १८९ प्र १९०,
 १९१, १९२ प।
 विद्यानन्दि ७ प्र ८ प।

विद्यानाथ २४ प।
 विद्यानुवाच ४ प।
 विद्यानुवाचः ८ म ११ प।
 विद्यानुवाचन १७५ प।
 विद्यापुर १४२ म।
 विद्वज्जमाता ३२ प।
 विद्वज्जमाता ३ म।
 विनयचन्द्र १०१ प।
 विनयधी १९० प।
 विनयादित्य ८१ प।
 विनयेन्दु १० प।
 विनयनर्म ३३ प १४७ कु।
 विनयादि ७१ म।
 विपाकसूत्र ८६ म।
 विपुलादि ४३ ५८ म।
 विमलकीर्ति १३० १४७ प।
 विमलकीर्ति १५४ प।
 विमलजी १९० प।
 विरूपा १४६ कु।
 विरूपाचर्या १२५ १४६ प।
 विद्यालनन्दी ८० प १६२ म।
 विद्यालकीर्ति १२४ प।
 विशालकीर्ति १२५, १२६ १२७, १२८ १४४
 १४६ प १४६ कु १४७ प १४७ कु।
 विशालकीर्ति १६० म १६० प।
 विश्वभूषण १५३, १६० म १६० प।
 विश्वामित्र १६३ १६९ म।
 विश्वामित्रस्तोत्र ३७ ३८, ८४ प।
 विश्वामित्र ६ म।
 विश्वामित्र १७० प।
 विश्वामित्र ५२ म ५४ ५५ प।
 विश्वामित्र परमेश्वर ५६ प।
 विश्वामित्र ६४, ७७ ८१ १२४ १६४ प।
 वीरनरसिंह ७४ ७६ म ७७, ७८ प।
 वीरनन्द या वीरनन्दी ४ म १२४ १३३ प।
 वीरनारायण ३६ प।

वीरनरसिंह १३७ कु।
 वीरपाण्डव ३६ ३७ ३८ प।
 वीरपाण्डव देवरस ३७ प।
 वीरपाण्डव भैरवरस १९ २७ प।
 वीरशुक्लीय १३८ कु।
 वीरशुक्लीय ८१ १६४ प।
 वीरशुक्ति ६३ प।
 वीरसिंह ७ म ८ ७८ प।
 वीरसेन ५५ प ५५ कु १०१ १०५, १२८ प
 १६२ म।
 वीरसेन १३६ कु १४८ प।
 वीरनाथ १० म ११, ६० ६१ १०४ प।
 वीरनारायण १३६ कु।
 वृत्तमन्त्र ८४ प।
 वृत्तमन्त्र ८४ प।
 वृत्तमन्त्र ९ म।
 वेद्याकटक १२ कु।
 वेद्यापुर १२३ प १३५ कु १३६ १४० १४५
 १४८ प।
 वेद्यापुर १३७ १७१ प।
 वेद्यातटक १४९ प।
 वेद्या ८१ प १६३ म १६५ प।
 वेद्या २ म।
 वेद्यानिषण्ड २४ ५६ प।
 वेद्यावार या वेद्यावारमन्त्र १२१ प।
 वेद्यासूत्र ५६ प।
 वैराग्यमथिमात्रा १९१ प।
 वैराग्यमात्रा १७५ प।
 वैराग्यमात्रा ८५ म।
 वैराग्य १६९ १९९ म।
 वा
 वाङ्मय ६४ प।
 वाङ्मय २०० प।
 वाङ्मय ८१, १६४ १६५ प।
 वाङ्मयानन्द १७५ प।

- शाकटायनमहावृत्ति १७९ प।
 शाकवाट (नगर) २१ प।
 शान्तिनाथपुराण १९७ प।
 शान्तिवर्षी ७२, ७३ प्र।
 शान्तिपेय २ प्र।
 शालाक्य ५३ प्र।
 शास्त्रसारसमुच्चय ४५ कु ४६ प ४६ कु ४७ प।
 शिलालेखसंग्रह ६५ कु।
 शिवकोटि १६२ प्र।
 शिवपुराण १६९ प्र १७० प।
 शुक्रपञ्चमुद्यापन १५८ प।
 शुभकीर्ति १२४ प।
 शुभचन्द्र २०, २१ प्र।
 शुभचन्द्र या शुभचन्द्राचार्य (ज्ञानार्थ के कर्ता)
 २१ प २१ कु १९१, १९७ प।
 शुभचन्द्र भट्टारक २१ प।
 शुभचन्द्र (पाण्डवपुराण के कर्ता) २१, ११९,
 १६८, १७८ प।
 शुभचन्द्र (सशशिवदनविदारण के कर्ता) २१ प।
 शुभचन्द्र (करकण्डुचरित्र के कर्ता) २१ प।
 शुभचन्द्र (गणधरवल्लयपूजा के कर्ता) ९८ प।
 शुभचन्द्र १५२ प्र।
 शुभचन्द्र (जिनचन्द्र के गुरु) १७८ प।
 शुभचन्द्रदेव २२ प।
 शृङ्गारार्थचन्द्रिका ७३, ७५, ७६ प्र ७८,
 १५४ प।
 शैलराज ७ प्र।
 शोलापुर १५४ प।
 श्रवणवेलगोल १२, २२, २७, ३८, ४६, ५३ प
 ६३ प्र ६४ कु -६४, ६५, ७१, १०१, १२३,
 १४४, १७८, १८१ प।
 श्रावकाचार १५४ प।
 श्रीकुमार ८०, १६४ प।
 श्रीकृष्ण १४२ प।
 श्रीचन्द्र (श्रीनदी के शिष्य) ५३ प।
 श्रीचन्द्र (श्रुतसागर के शिष्य) १७५, १९१ प।

- श्रीधर १३३ प।
 श्रीधरदेव ४५ कु ४६ प।
 श्रीधरदेव (वेद्यामृत के कर्ता) ५६ प।
 श्रीधराचार्य १३३ प।
 श्रीनन्दि (उद्यादित्य के गुरु) ५२ प्र ५३, ५४,
 ५६ प।
 श्रीनामा १६३ प्र।
 श्रीपति (कवि) १३५ कु।
 श्रीपाल ११, १२ प।
 श्रीपाल १२४ प।
 श्रीपालचरित्र १८५, १९७ प।
 श्रीपुर २१ प।
 श्रीपुराण ११७ प्र ११९, १२० प।
 श्रीपुरुष ६५ प।
 श्रीयलादेवी ३६ प।
 श्रीरग या श्रीरगपट्टण १२६, १२८, १४७ प।
 श्रीराय ७८ प।
 श्रुतकीर्ति ५५ प।
 श्रुतकीर्ति (प्रथम) ५६, ५७ प।
 श्रुतकीर्ति (द्वितीय) ५७, १२९, १३१ प।
 श्रुतकीर्ति १३४ कु।
 श्रुतकीर्ति त्रैविद्यचक्रेश्वर १४७ प।
 श्रुतकीर्ति (हरिवंशपुराण के कर्ता) १५१, १५३ प्र।
 श्रुतकीर्तिदेव १३३ प १३६ कु।
 श्रुतसागर १७३, १७४ प्र १७४, १७५, १८५ प
 १८८, १८९ प्र १८९, १९०, १९१, १६२,
 १९३ प।
 श्रुतसागरी १९१ प।
 श्रुतस्कंधावतार १७५, १९३ प।
 श्रेणिक ९ प्र।
- प
- पट्टर्शनप्रमाणप्रमेयानुप्रवेश २० प्र २२ प।
 पट्टपाहुड १८९ प।
 पट्टपाहुडटीका १९३ प।
 पट्टप्रावृत्त १७४ प।

पद्मामृतटीका १७५ प।
 पद्मामृतदिलसंग्रह १७४ कु १८९ प।
 पद्मवाद् २२ प।
 पद्मवसिष्ठेन्द्रपालयान्ति १६० प।

स

संशयिष्यदनविदारण २१ २२ प।
 संस्कृतसाहित्य का सक्षिप्त इतिहास ६४ कु।
 सकलकीर्ति ११७ म ११९, १२० १९४, १९५
 १९६ १९७ प १९७ कु।
 सकलकवि १३२ प।
 सकलचन्द्र १३३ प।
 सकलभूगण्य ११९, १९७ प।
 संक्षय १३६ १४९ प।
 सगरस १३७ १४८ प।
 संगिराय १४३ १४५, १४८ प।
 संगीतनगर १३२, १३९ १४८ प।
 संगीतपुर १२३ प १३५ कु १३६, १४५, १४७ प।
 सख्यमरिनायक या सख्यारिनायक १३९ प १३९ कु
 १४८ प।
 सत्यवाक्य ८० १६४ प।
 सत्यशालनपरीक्षा १०१ १७५ प।
 सदाशिव १४२ १४५, १४८ प।
 सदाशिवनाथक १२४ प।
 सद्भावितानवली १९७ प।
 सस्यपिप्ला १५८ प।
 समन्तभद्र ९ म ११ प ३४ ५३ म ५५ प
 ७४ म १२४ १२८ १४४ १५० प १५५,
 १६२ १८८ १८९ म।
 समन्तमन्त्र १३६ १४८ प।
 समननाथ १०१ प।
 समोद्देशिकर १२३, १२४ प।
 सारयवापुर १ ७ प १६३ म।
 सरस्वती-स्मर ८५ म ८७ प।
 सरस्वतीगण्य १५३ १७४ १८५, १९० प।
 सख्यन्द्री ११४ ११५ म ११६ प।

सर्वाभिसिद्धि १४ प।
 सख ८१, १६४ प।
 सहस्रनामाराधना ९२ म।
 सागर १५४ प।
 सागरदत्त १२३ प।
 सागारधम्मयुक्त १ ३ प।
 साधुगुराड १८७ म।
 साधुगोदा १८७ म।
 साधुमहादासु १८७ म।
 साधुसिंह १८७ म।
 साधुसोमन १८७ म।
 सारस्वतीविद्यतिका १५७ प।
 सारसग्रह १४९ म १५० प।
 साह्यदेवराय १३० १३२ प १३९ कु १३९, १४०,
 १४८ प।
 साङ्ख्यमहिराय या साङ्ख्यमहिराय १२८, १३५,
 १४५, १४९ प।
 साङ्ख्यव्या १४५ प।
 साङ्गतोष्ठा १८७ म।
 सिंहकीर्ति १२४ १२५ १४४ प १४५ कु १४६ प
 १४६ कु।
 सिंहनन्दी (नमस्कारमन्त्रकथ्य के कर्ता) ४९ प।
 सिंहनन्दी (श्रीनन्द के शिष्य) ५३ प।
 सिंहनन्दी (गगनाय के स्थापक) ६५ प।
 सिंहनन्दी (श्रीकेशवविभाग के संस्कृत भाषा-सर
 कार) ११६ प।
 सिंहनन्दी भट्टारक १७५ प १८४ १८५ म १८५,
 १९० १९१, १९२ प।
 सिंहनाथ ५३ म ५५ प।
 सिंहपुर ६३ म ६४ प।
 सिंहसिंह १३३ १३४ प।
 सिंहवमा ११५ म ११६ प।
 सिंहसागर ९ म।
 सिंहपुर (श्रीकेशवविभाग के कर्ता) ११२ ११४ म
 ११६ ११७ प।
 सिन्धु १२५ प १४६ कु १४६ प।

सिंगवरम् ६४ प।
 सिद्धचक्रपूजा १०८ प्र १११ प।
 सिद्धनागार्जुनकल्प ५५ प।
 सिद्धराशि १९ प।
 सिद्धसेन ५३ प्र ५५ प।
 सिद्धान्तकीर्ति १२४ प।
 सिद्धान्तमुक्तावली १९७ प।
 सिद्धान्तरसायनकल्प ५५ प।
 सिद्धान्तसार १९७ प।
 सिद्धान्तसारदीपक १७९ प।
 सिद्धान्तसारादिसंग्रह ४४ प ४६, १७८ कु।
 सिद्धिचिनिश्चयटीका १७९ प।
 सीद् १८७ प्र०।
 सुकरयोगरत्नावलि ५६ प।
 सुकुमालचरित्र १९७ प।
 सुदर्शनचरित्र १९७ प।
 सुधर्म ६ प्र।
 सुधर्मा १६२ प्र।
 सुन्दरपाण्ड्य १०६ प।
 सुभद्रनाटिका १०७ प।
 सुरेन्द्रकीर्ति ७ प्र ९३ प।
 सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक ११९ प।
 सुलतान महमूद १४५ प १४५ कु।
 सुल्तान सिकन्दरसूर १४६ कु।
 सुश्रुत १५० प।
 सूरत १७५, १९१ प।
 सेनाय ५५, ५६ कु १०५ प १५७ प्र १५८ प।
 सोजिना १७५, १९१ प।
 सोमदेव भट्ट २०० प।
 सोमनाथ ५६ प।
 सोमभूषाल १३८ कु १४८ प।
 सोमसूर्यकुल २३ प्र २४ प।
 सोमसेन १२९ प।
 सोमसेन (रामपुराण के कर्ता) १५५, १५६,
 १५७ प्र १५७, १५८ प।
 सोमसेन (त्रिवर्णाचार के कर्ता) १६८ प।

सौलापुर ५६, १०१ प।
 सौषयनन्दी (भास्करनन्दी के प्रणय) १७८ प।
 स्थाण्डिल्यहोमपूजा १५८ प।
 स्थानाग ८५ प्र।
 स्थिरकदम्ब (नगर) १०२ प।
 स्वस्थारिष्टनिदान १३ प्र।

ह

हणसोगे १९ प।
 हनुमत् ६ प्र।
 हनुमच्चरित्र ५, ७ प्र।
 हयशास्त्र ५६ प।
 हरवेग्राम १३८ कु।
 हरि भट्ट १३४ प।
 हरियण १३८ कु।
 हरिवंश १५१, १८१ प्र।
 हरिवंशपुराण ११९ प १५१, १५३ प्र १५३,
 १५४ प १७९, १८१ प्र १८२, १९७ प।
 हरीत मुनि १५० प।
 हलेबीह १२३ कु।
 हस्तिमल्ल १० प्र ११, ६०, ८०, ८१, ९८, १०१ प
 १०३ प्र १०४, १०६, १०७ प १६२, १६३ प्र
 १६४ प।
 हाडहलि १२३, १४५, १४७, १४८ प।
 हिन्दीविरवकोप १२ कु ३६, ५४ प।
 हिमशीतल १, ६९ प्र।
 हिरिय भैरवदेव श्रोत्रेय ३७ प।
 हिस्त्री आफ इण्डियन लिटरेचर १९६ कु।
 हीरप २ प्र०।
 हुम्बुच्च १४४ प।
 हेमचन्द्र ८४, १७० प।
 हेमदेव १२३ प।
 हेमप्रभ १८ प्र।
 हेमाचल ८१ प १६३ प्र १६५ प।
 हैवणनायक १३९ प १३९ कु १४८ प
 होन्नपनायक १३९ प १३९ कु १४८ प।

होयसल या होयसल ७७, ८१ प १२४ कु १३३
 प १३३ कु १३४ १६३ प्र १६४ प।
 होयसलदेश या होयसलदेश ८० प १६३ प्र
 २६४ प।

होयसलराजवंश ८० प।
 होयसलराज्य १४७ प।
 होयसलवंश १२३ प।



नोट इस अनुक्रमणिका' को तैयार करने में श्री पं शुभाचन्द्र जैन, 'विशारद' से भी मुझे सहायता मिली है इसलिये मैं उनका भी आभारी हूँ।